आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक समस्या के बदलते आयामों का अध्ययन

(राजस्थान के विशेष संदर्भ में)

Study of Changing Dimensions of Communal Problem in Modern India

(With Special reference to Rajasthan)

सत्र्–2020–21

शोध–प्रबंध

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा से राजनीति विज्ञान में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. (प्रो.) करण सिंह
आचार्य (राजनीति विज्ञान)

शोधार्थी
सरोज मीना
(राजनीति विज्ञान)
Reg/VMOU/Ph.D./Pol.Sc./2015/76

राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा
रावतभाटा रोड़, कोटा–324010

डॉ. (प्रो.) करण सिंह
आचार्य
राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सरोज मीना** ने **"आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक समस्या के बदलते आयामों का अध्ययन (राजस्थान के संदर्भ में)"** विषय पर मेरे निर्देशन एवं मार्गदर्शन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (एम. फिल / पीएच.डी. / उपाधि के लिए न्यूनतम मानक एवं प्रक्रिया) विनियम, 2009 में वर्णित दिशा–निर्देशों की पालना करते हुए अपना शोधकार्य पूर्ण किया है। यह इनका मौलिक कार्य है। यह शोध प्रबंध राजनीति विज्ञान में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा को प्रेषित किया जा रहा है।

दिनांक: **डॉ. (प्रो.) करण सिंह**

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मेरे (सरोज मीना) द्वारा राजनीति विज्ञान में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जिसका विषय "आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक समस्या के बदलते आयामों का अध्ययन (राजस्थान के संदर्भ में)" है। यह शोध कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (एम.फिल/पीएच.डी. उपाधि के लिए न्यूनतम मानक एवं प्रक्रिया) विनियम, 2009 में वर्णित दिशा–निर्देशों की पालना करते हुए किया गया है। यह मेरे व्यक्तिगत अनुसंधान पर आधारित मौलिक कार्य है तथा यह शोध कार्य प्रो. (डॉ.) करण सिंह, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के निर्देशन एवं मार्गदर्शन में पूर्ण किया गया है। मेरी जानकारी में इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं किया गया है।

दिनांकः

सरोज मीना

पंजीयन संख्या VMOU/Ph.D./Pol.Sci./2015/76

वर्क पूर्णता प्रमाण–पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है, कि **सरोज मीणा**, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा ने अपना शोध कार्य को संतोषजनक ढंग से पूरा कर लिया है जो पीएच.डी. यूजीसी नियम–2009 के अनुसार है। यह शोध ग्रन्थ यूजीसी विनियम–2009 का भी अनुपालन करती है।

दिनांकः

स्थान : कोटा **शोध निदेशक**

पूर्व प्रस्तुत संगोष्ठि आवश्यकता प्रमाण–पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है, कि **सरोज मीणा**, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा ने अपने शोध कार्य को संतोषजनक ढंग से पूरा कर लिया है। इन्होंने पूर्व प्रस्तुत संगोष्ठि आवश्यकता (Pre-Submission Completion) को सन्तोषपूर्वक पूर्ण कर लिया है जो यूजीसी नियम–2009 के अनुसार है। यह शोध ग्रन्थ यूजीसी विनियम–2009 का भी अनुपालन करती है।

दिनांकः

स्थान : कोटा

शोध निदेशक

आभार

प्रस्तुत शोध **"आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक समस्या के बदलते आयामों का अध्ययन (राजस्थान के संदर्भ में)"** है। इस शोध कार्य को पूरा करने में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जिन लोगों की प्रेरणा एवं सहयोग मुझे मिला है, मैं उनके समक्ष नतमस्तक हूँ। ऐसे सभी श्रद्धेय जनों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस शोध कार्य को प्रस्तुत करते हुए सर्वप्रथम मैं अपने शोध पर्यवेक्षक **प्रो. (डॉ.) करण सिंह** के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं निरन्तर मार्गदर्शन के कारण यह शोध पूर्ण हो सका। पत्रकारिता विभाग की संयोजक एवं शोध निदेशक **श्रीमती क्षमता चौधरी** तथा पत्रकारिता विभाग के पूर्व संयोजक एवं शोध निदेशक **डॉ. सुबोध कुमार** का मैं सदैव ऋणी रहूँगी, जिन्होंने शोध कार्य में मेरा मार्गदर्शन किया है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो. (डॉ.) आर.एल. गोदारा**, **पूर्व कुलपति प्रो. विनय कुमार पाठक** और **प्रो. अशोक शर्मा** के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनकी प्रेरणा इस शोध कार्य को दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण रही है।

प्रो. पी.के. शर्मा जी, **प्रो. एच.बी. नंदवाना**, **प्रो. एल.आर. गुर्जर**, **प्रो. दिनेश कुमार गुप्ता**, **प्रो. अरूण कुमार**, **डॉ. अनिल कुमार जैन**, **डॉ. क्षमता चौधरी**, **डॉ. अनुरोध गोधा**, **डॉ. अकबर अली**, **डॉ. कीर्ति सिंह**, **डॉ. आलोक चौहान** के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगी, जिन्होनें शोध कार्य से जुड़े विभिन्न आयामों एवं बुनियादी

तथ्यों से परिचय कराया। शोध कार्य की रूपरेखा और शोध प्रविधि के निर्धारण में निरन्तर सहयोग और मार्गदर्शन के लिए मैं वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय (कोटा) के शोध विभाग के उप–निदेशक **डॉ. पतंजलि मिश्रा**, **डॉ. अखिलेश कुमार** और लखनऊ स्थित **डॉ. शकुंतला मिश्रा** राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय के **प्रो. रजनी रंजन सिंह** का मैं सदैव आभारी रहूंगी।

इस अध्याय के दौरान **श्री अभिषेक नागर**, **श्री सौरभ पाण्डेय**, **श्री मयंक गौड़** शोध विभाग के कर्मचारी **श्री सुरेश सैनी** और पुस्तकालय के समस्त कर्मचारियों के अविस्मरणीय सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इसके अलावा मैं उन सभी प्रतिभागियों और साक्षात्कारदाताओं के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके सुझाव और अभिमत इस शोध में शामिल किये गए हैं।

इस शोध कार्य के दौरान कई मित्र व सहयोगियों से समय–समय पर विभिन्न विषयों पर चर्चा मेरे लिए काफी उपयोगी साबित हुई हैं। इसके लिए मैं **श्री बी.एल. मीना, श्रीमती मीरा गुप्ता, श्रीमती शुभा जी** (प्रधानाचार्या), **श्रीमती किरन मीना** (व्याख्याता), **श्री नरेन्द्र बड़गुजर** (व्याख्याता) का विशेष तौर पर आभार व्यक्त करती हूँ।

इस कठिन कार्य को पूरा करने में पारिवारिक सहयोग बेहद अहम होता है। इस संदर्भ में मेरे परिजनों की भूमिका उत्साहवर्द्धक करने वाली रही है। मेरे पति **श्री अमर चन्द मीना**, मेरी पुत्री **निशा व ईशा** और पुत्र **सचिन** के प्रति सप्रेम आभारी हूँ, जिन्होनें यह शोध कार्य करने में मेरा विश्वास, धैर्य और उत्साह बढ़ाया तथा मुश्किल परिस्थितियों में सदैव मेरे साथ खड़े रहे। यह शोध कार्य मैं अपने परमपिता परमेश्वर, **स्व. पिता श्री रामकृपाल मीना**, **स्व. माता श्रीमती भौती देवी** और **स्व. ससुर श्री नोन्दाराम मीना** एवं सास **स्व.**

श्रीमती भौरी देवी को समर्पित करती हूँ जिनके आशीर्वाद से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका।

मैं कम्प्यूटर टाईपिंग कार्य के लिए **खण्डेलवाल टाईपिंग इन्स्टीट्यूट जयपुर** के समस्त स्टाफ के प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने शोध कार्य को न केवल स्वच्छता से पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया अपितु कार्य को शीघ्रता से पूर्ण करने का प्रयास किया।

अन्त में, मेरे अपने समस्त प्रयासों एवं सभी विदज्जनों और मित्रों के सहयोग के बाद भी प्रस्तुत शोध में कुछ कमियाँ रह जाना स्वाभाविक है। अतः जो कमियाँ रह गई हैं उनके लिए मैं स्वयं को उत्तरदायी मानती हूँ।

दिनांकः .... शोधार्थी

(सरोज मीना)

अनुक्रमणिका

	विवरण	पृ.सं.
अध्याय–प्रथम	**साम्प्रदायिकता का अर्थ, स्वरूप एवं क्षेत्र**	**1–26**
1.1	प्रस्तावना	
1.2	साम्प्रदायिकता का विकास	
1.3	धर्म, धार्मिकता एवं सम्प्रदायवाद	
1.4	साम्प्रदायिकता का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र	
1.5	वर्तमान साम्प्रदायिक वीभत्स स्वरूप	
1.6	सम्प्रदायवाद का अभिजात्य स्वरूप	
1.7	लोकतांत्रिक राष्ट्रवाद एवं सम्प्रदायवाद	
1.8	संदर्भ सूची	
अध्याय–द्वितीय	**अल्पसंख्य, बहुसंख्य समस्या एवं सम्प्रदायवाद के प्रकार**	**27–42**
2.1	समस्या का स्वरूप अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य	
2.2	साम्प्रदायिकता के रूप	
2.3	हिन्दू सम्प्रदायवाद	
2.4	मुस्लिम सम्प्रदायवाद	
2.4	ईसाई सम्प्रदायवाद	
2.5	सिक्ख सम्प्रदायवाद	
2.6	अन्य सम्प्रदाय	
2.7	संदर्भ सूची	

अध्याय–तृतीय सामप्रदायिकता की प्रक्रिया, मापन एवं शोध उपकरण 43–64

3.1 साम्प्रायिकता की अवस्थाएँ

3.2 साम्प्रदायिकता के प्रकार

3.3 गर्भस्थ सम्प्रदायवाद

3.4 प्रारम्भिक सम्प्रदावाद

3.5 पृथकतावादी सम्प्रदायवाद

3.6 शोध के उद्देश्य

3.7 साहित्य अवलोकन

3.8 शोध प्रकल्पना

3.9 शोध का मापन/प्रविधि/उपकरण

3.10 संदर्भ सूची

अध्याय–चतुर्थ राजस्थान में ''साम्प्रदायिकता'' के आयाम एवं संदर्भ 65–89

4.1 भारतीय राजव्यवस्था की विशेषताएँ

4.2 प्रधानमंत्री व्यवस्था

4.3 सिद्वांततः समाजवादी

4.4 पूंजीवादी अर्थतंत्र

4.5 धर्म निरपेक्ष व्यवस्था

4.6 लोकतंत्रात्मक शासन

4.7 नौकरशाही पर निर्भरता

4.8 राजस्थान राज्य का गठन

4.9 राजस्थान का भारत में महत्व

4.10 भौगोलिक विशेषताएँ

4.11 आर्थिक विशेषताएँ

4.12 सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ

4.13 राजनीतिक स्थिति

4.14 राजस्थान में साम्प्रदायिकता की स्थिति

4.15 संदर्भ सूची

अध्याय–पंचम साम्प्रदायिकता के आनुभाविक प्रतिमान की खोज 90–152

5.1 अध्ययन क्षेत्रों के चयन की पृष्ठभूमि

5.2 जयपुर व भरतपुर : क्षेत्र परिचय

5.3 जयपुर का क्षेत्र

5.4 पृष्ठभूमि व परम्परा

5.5 जयपुर : सामाजिक जीवन

5.6 जयपुर : आर्थिक जीवन

5.7 पारिश्रमिक

5.8 व्यापार

5.9 भरतपुर का क्षेत्र परिचय

5.10 भरतपुर : सामाजिक जीवन

5.11 भरतपुर : आर्थिक जीवन

5.12 जयपुर व भरतपुर में राजनीतिक सामाजीकरण एवं सांस्कृतिक मूल्य अर्थ एवं महत्त्व

5.13 परिवार

5.14 शिक्षण संस्थाएँ

5.15 मित्र मण्डली

5.16 अन्य द्वितीयक समूह एवं संस्थाएँ

5.17 वर्तमान संदर्भ में 'साम्प्रदायिकता की खोज

5.18 साम्प्रदायिकता की स्थिति

5.19 साम्प्रदायिकता की सीमा का स्वरूप

5.20 साम्प्रदायिकता का क्रियात्मक रूप

5.21 वर्तमान शिक्षा प्रणाली एवं साम्प्रदायिकता

5.22 साम्प्रदायिकता एवं धर्म

5.23 अल्पसंख्यकों की स्थिति एवं साम्प्रदायिकता

5.24 संदर्भ सूची

अध्याय–षष्ठम सारांश एवं सैद्धांतिक निष्कर्ष 153–175

6.1 'अल्पसंख्य'–'बहुसंख्य' विषयक एवं भ्रान्त धारणाएँ

6.2 आधुनिक समय में साम्प्रदायिकता के विकास की अवस्थाएँ

6.3 सम्प्रदायवाद का प्रति संतुलन एवं धर्मनिरपेक्षता

6.4 समष्टि संदर्भ : राजस्थान में साम्प्रदायिकता

6.5 व्यष्टि संदर्भ

6.6 अध्ययन क्षेत्र के रूप में जयपुर एवं भरतपुर

6.7 जयपुर–भरतपुर में 'साम्प्रदायिकता' का प्रतिमान

6.8 भरतपुर–जयपुर में 'साम्प्रदायिक संघर्ष' के कारकों की स्थिति

6.9 जयपुर–भरतपुर प्रतिमान की सीमाएँ

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **176–186**

सारणियों का विवरण

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
1.	जयपुर व भरतपुर के उत्तरदाताओं का धर्मानुसार वर्गीकरण	113
2.	जयपुर व भरतपुर में स्वतंत्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता के विषय में उत्तरदाताओं के विचार	115
3.	पिछले दस वर्षों में इन नगरों में साम्प्रदायिकता की स्थिति की समस्या	117
4.	साम्प्रदायिकता का आर्थिक आधार	118
5.	विभिन्न धर्मावलम्बियों के साथ निवास करने की कठिनाइयाँ	120
6.(i)	जयपुर में साम्प्रदायिक विद्वेष की वरियताएँ	121
6.(ii)	जयपुर में साम्प्रदायिक विद्वेष विषयक वरियताएँ	122
7.	पास–पड़ौस व नगर में साम्प्रदायिकता की स्थिति	124
8.	जयपुर एवं भरतपुर में साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित स्थिति का स्वरूप	126
9.	जयपुर तथा भरतपुर में विभिन्न धर्मों के लोगों में सहयोग	128
10.	अपने धर्म से संबंधित उत्सवों, प्रदर्शन आदि को जयपुर तथा भरतपुर में संगठित करने में कठिनाइयाँ	129
11.	साम्प्रदायिकता में शिक्षा प्रणाली का योगदान	132
12.	साम्प्रदायिक समस्या बढ़ाने में आधुनिक शिक्षा व सुविधाओं का योगदान	133
13.	साम्प्रदायिकता धर्म का अभिन्न अंग	135

14.	वर्तमान राजनीति में साम्प्रदायिकता की समस्या की भूमिका	136
15.	जयपुर के राजनैतिक दलों में साम्प्रदायिकता का स्वरूप	138
16.	सम्प्रदायों के मध्य कार्य करने वाले नेताओं का सम्मान	140
17.	चुनावों के कारण साम्प्रदायिकता में वृद्धि	141
18.	बहुसंख्य धर्मों के मतावलम्बियों से बनी सरकार अल्पसंख्यकों के हितों के पक्ष में	143
19.	नौकरशाही का आचरण	144

अध्याय–प्रथम

साम्प्रदायिकता का अर्थ, स्वरूप एवं क्षेत्र

अध्याय–प्रथम

साम्प्रदायिकता का अर्थ, स्वरूप एवं क्षेत्र

प्रस्तावना

साम्प्रदायिक हिंसा, दंगों, सामूहिक हत्याओं अथवा आतंकवाद के रूप में एक नाटकीय ढंग से हमारा ध्यान खींचती है परंतु यह हिंसा का मूल कारण साम्प्रदायिकता का प्रसार है। हमारे विचार में, विशेष रूप से जहाँ इसके विरुद्ध एक लम्बी कार्यवाही की आवश्यकता है, वही बुनियादी तौर पर साम्प्रदायिकता को पहले समझना चाहिए और फिर एक विचारधारा के रूप में इसका विरोध करना चाहिए। साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए एक विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता का अध्ययन अति–आवश्यक है। अपने विभिन्न रूपों में उग्र साम्प्रदायिकता तथा भय और घृणा की भावनाओं पर आधारित साम्प्रदायिक हिंसा एक विचारधारा के रूप में पूर्व–प्रचारित साम्प्रदायिकता के तार्किक विस्तार की कुरूप तथा पाश्विक अभिव्यक्ति होती है। क्योंकि साम्प्रदायिक दंगें, साधारण व्यक्तियों में मूल साम्प्रदायिक वैचारिक सिद्धांतों की विश्वसनीयता को कायम रखने तथा साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञों के लिए समर्थन भी जुटाते हैं। लेकिन वास्तव में ये साम्प्रदायिक विचारधारा तथा राजनीति ही है, जिनका साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञ तथा विचारक सामान्य समय में प्रचार करते हैं, यही वह आधार जिस पर साम्प्रदायिक तनाव तथा हिंसा फैलती है। दूसरे शब्दों में, साम्प्रदायिक विचारधारा एक राजनीतिक बीमारी है, साम्प्रदायिक हिंसा केवल इसका बाहरी लक्षण है।

साम्प्रदायिक हिंसा में राजनैतिक शक्ति तथा सामाजिक एवं धार्मिक मुद्‌दे भी सम्मिलित होते हैं। परंतु साम्प्रदायिकता निश्चित रूप से एक ऐसी

राजनीति का विकास है जिसका सामाजिक मुद्दों से कोई संबंध नहीं होता है। यहाँ यह सुझाव दिया जा सकता है कि साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक हिंसा में भी वही संबंध है जैसा कि प्रजातिवाद का प्रजातीय दंगों से, नाजीवाद का नाजी हिंसा से तथा यहूदी–विरोध का यहूदियों की सामूहिक हत्याओं से है।

साम्प्रदायिकता को एक आधुनिक विचाराधारा के रूप में ही देखना चाहिए न कि उपनिवेशी अतीत से पहले के एक अवशेष के रूप में, जिसकी जड़ें मध्यकालीन युग में है। उपनिवेशी शासन से पहले भारत में साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक हिंसा, कमोबेश नदारद थी। निःसंदेह धर्म उस समय लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। लोग धर्म के नाम पर लड़ते थे। धार्मिक उत्पीड़न भी होता था, परंतु शासन वर्गों की राजनीति का आधार साम्प्रदायिकता अथवा हिन्दू बनाम मुस्लिम नहीं था। जैसाकि राष्ट्रवाद के संबंध में कहा जाता है। साम्प्रदायिकता भी उपनिवेश के प्रभाव के तहत् भारत के परिवर्तन का एक उत्पाद थी। यह आधुनिक राजनीति को एक नये दृष्टिकोण से देखने के कारण उत्पन्न हुई। यह धर्म की पुरानी पहचान का प्रयोग करने तथा नई राजनीति में भागीदारी करने के लिए लोगों को व्यापक पैमाने पर संगठित करने का प्रयास था।

साम्प्रदायिकता का संबंध, किसी प्रकार भी राष्ट्रवाद से न तो था और न है। यह राष्ट्रवाद के एक विकल्प के रूप में उत्पन्न हुई और कार्य करती रही है। जैसा कि इंडोनेशिया और अधिकांश पश्चिमी एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी देशों में हुआ। भारत में साम्प्रदायिकता धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद भी नहीं थी। भारत में साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद के विरोध के रूप में विकसित हुई परन्तु इसमें साम्राज्यवाद विरोधी विषय–वस्तु का अभाव था।

साम्प्रदायिकता जन–चेतना का प्रतिबिंब भी नहीं थी। पूरे मध्यकालीन युग में विशेष रूप से गाँवों में सामान्य व्यक्ति एक जैसा सामाजिक जीवन व्यतीत करते थे। उनकी समान संस्कृति थी, आज भी है। लोकप्रिय धर्मों के स्तर पर भी उनकी आस्थाएँ तथा आचरण समान थे क्योंकि लोकप्रिय धर्म अत्यंत उदार थे। पंजाब में उत्पन्न हुई उग्र हिंदू तथा सिक्ख साम्प्रदायिकता से यह स्पष्ट हो गया कि निश्चित रूप से हिंदुओं और सिक्खों में पारस्परिक विरोध की कोई लोक भावना नहीं थी। हिन्दू और सिक्ख एक साथ खाते हैं और एक–दूसरे से विवाह भी करते हैं तथा दोनों एक–दूसरे की धार्मिक पुस्तकों, ग्रंथों, देवी–देवताओं का आदर करते हैं।

साम्प्रदायिक दंगे तथा साम्प्रदायिक हिंसा के दूसरे रूप समाज और राजनीति से साम्प्रदायिकरण की एक ठोस संयुक्त अभिव्यक्ति है। साम्प्रदायिकता धार्मिक आधार पर राजनीत, मनोवैज्ञानिक विभेदीकरण, अलगाव तथा प्रतिस्पर्धा की ओर ले जाती है। वह कभी न कभी पारस्परिक डर घृणा की ओर अंत में हिंसा की ओर ले जाती हैं। प्रत्येक साम्प्रदायिक दंगों के पीछे एक शक्तिशाली सामूहिक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होती है।

साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में देखने का एक प्रमुख लाभ है। तब हमें सम्प्रदायवादियों में 'नरमपंथी' तथा 'कट्टरपंथी' नजर आते हैं। उनमें ही हम साम्प्रदायिकता के प्रचारकों तथा घृणा और हिंसा अभियानों के संगठनकर्ताओं को भी देख सकते हैं। इस प्रकार हम उग्रवाद तथा हिंसा की विभिन्न श्रेणियों में भी भेद कर सकते हैं।

हिंसक रूप धारण करने से पूर्व साम्प्रदायिकता वर्षों तक विकसित होती रहती है वास्तव में उसी समय जब साम्प्रदायिकता विकसित होती है तभी साम्प्रदायिक हिंसा को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिकता के विरुद्ध कार्यवाही की

जानी चाहिए। वर्तमान भारत में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जैसे 1938–46 के दौरान साम्प्रदायिक विचारधारा बड़ी तेजी से विकसित हुई, परन्तु यह बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक हिंसा 1946–47 के दौरान भी फैली। 1948–81 के दौरान पंजाब में भी साम्प्रदायिक हिंसा नहीं हुई, परंतु इसी दौरान 1982 के बाद हिंसा की बुनियाद पड़ी। दक्षिणी भारत में भी बड़ी तेजी से साम्प्रदायिकरण हुआ, लेकिन वर्तमान में वहाँ साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएँ कम ही होती हैं।

संभवतः नवम्बर 1984 के प्रारम्भ में, दिल्ली तथा उत्तरी भारत के दूसरे भागों में सिखों की तथा 1982 में पंजाब में हिंदुओं की पाश्विक हत्याएँ साम्प्रदायिक विचारों के भयानक परिणामों के सबसे नए उदाहरण हैं। यहाँ मेरा यह विचार है कि 1982 से पंजाब में हो रही हत्याओं के कारण उत्तरी भारत तथा दिल्ली के हिन्दुओं का बड़ी गहराई से साम्प्रदायिकरण हो चुका था, और धर्मनिरपेक्ष तत्वों ने इस प्रक्रिया को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया था।

साम्प्रदायिक हिंसा से जीवन तथा सम्पत्ति की हानि होती है, फिर भी यह उसका मुख्य परिणाम नहीं है और न ही शारीरिक विध्वंस तथा दमन उसके संगठनकर्ताओं के मुख्य उद्देश्य हैं। साम्प्रदायिक हिंसा का मुख्य परिणाम और इसका उद्‌देश्य वातावरण को अशांत बनाये रखना तथा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रचार करना है। साम्प्रदायिक हिंसा किसी क्षेत्र विशेष के सभी निवासियों को खतरे का आभास कराती है।

साम्प्रदायिकता का विकास

मानव इतिहास में धर्म के नाम पर सदैव विवाद उठते रहते हैं। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हतभाग्य रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के समय अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाये रखने के लिए धार्मिक भेदभावों का विशेष लाभ उठाया। अंग्रेजी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को

राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहाँ निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना था।

भारत में साम्प्रदायिकता का विकास अंग्रेजी शासनकाल के दौरान उनकी ''फूट डालो शासन करो'' की नीति का परिणाम था। उन्होंने सर्वप्रथम भारत परिषद अधिनियम 1909 (मार्ले–मिण्टो सुधार) में मुसलमानों को पृथक निर्वाचन देकर विभाजन की रेखा खींच कर साम्प्रदायिकता की शुरुआत की जिसे उन्होंने भारत परिषद अधिनियम 1919 (मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार) तथा भारत शासन अधिनियम 1935 में अन्य समुदायों सिक्ख, यूरोपीयन, आंग्ल भारतीयों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर विस्तृत रूप प्रदान किया।

भारत विभिन्न धर्मों मत–मनवन्तरों को मानने वाला देश है इसमें अनेक जाति, वर्ग, सम्प्रदाय व संस्कृति के लोग निवास करते हैं तभी तो भारत को 'विविधता में एकता' वाला देश कहा जाता है क्योंकि भारत प्राचीनकाल से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का पालन करता आ रहा है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि इन सबके होते हुए भी भारत में साम्प्रदायिकता का हिंसात्मक, विध्वंसात्मक रूप देखने को मिल रहा है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् साम्प्रदायिकता की भावना अधिकाधिक बढ़ती दिखाई पड़ती है। सिक्ख समुदाय जो कि हिन्दू समुदाय का एक भाग था न केवल पृथकता का आंदोलन छेड़ रखा है बल्कि खालिस्तान की मांग के रूप में राजनैतिक रूप भी धारण कर लिया।

भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिकता की खाई गहरी होती चली गई। इसमें अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल थी। भारतीय राजनीति में ब्रिटिश सरकार, कांग्रेस तथा लीग का एक

त्रिभुज बन गया जिसने साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर नये–नये गुल खिलाये।

संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, फिर भी भारतीय राजनीति में धर्म की एक विशेष भूमिका है। हम धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना तो कर पाये हैं, किंतु धर्मनिरपेक्ष समाज की नहीं।[1] यह अन्तर्विरोध अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न करता रहता है। धार्मिक विभिन्नताओं के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव पैदा होते हैं और इन तनावों को बढ़ाने में राजनीतिज्ञ प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। इससे अनेक स्वार्थ सिद्ध होते हैं। बी.जी. गोखले जैसे अनेक व्यक्तियों ने आशा व्यक्त की थी कि राजनीति से धर्म के अलग हो जाने से हिन्दू और मुसलमानों के पुराने विरोध कभी उत्पन्न नहीं होंगे।[2] किन्तु पिछले सत्तर वर्षों में गुजरात, बिहार, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश तथा वर्तमान में पंजाब राज्यों में हुई घटनाएँ इस बात का सबल प्रमाण है कि साम्प्रदायिक वैमनस्य अभी भी विद्यमान है, जो छोटी–छोटी घटनाओं से उत्पन्न होता है, और भारत की राजनीति एवं शासन उससे आक्रांत हो उठते हैं।[3]

स्वाधीनता के बाद शुरू हुई चुनावों की राजनीति ने धर्म और सम्प्रदाय के नकारात्मक महत्व को उभारा है। सतीश चन्द्र ने लिखा है कि "पहले लोग समझते थे कि राजनीतिज्ञ धर्म और सम्प्रदाय का शोषण करते हैं, लेकिन अब हालत यह हो गई है कि धर्म और सम्प्रदाय राजनीति का शोषण करने लगे हैं।[4] एक तरह से सम्प्रदाय राजनैतिक दलों के लिए वोट–बैंक बन गये हैं। राजनीतिक शक्ति के रूप में धर्म और सम्प्रदाय का खूब ही दुरूपयोग हो रहा है। राजनीति दल–सम्प्रदाय एवं जाति की घटती–बढ़ती निष्ठा के खिलौने बनकर रह गये हैं। इसलिए सम्पूर्ण समाज साम्प्रदायिक दिखाई पड़ता है।

मोइन शाकिर ने साम्प्रदायिकता के विषय में बताये जाने वाले परम्परागत कारणों से भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। उसके अनुसार, ''धार्मिक समुदाय एक साथ ही आर्थिक व सांस्कृतिक समुदाय नहीं होता, साम्प्रदायिकता में प्रमुख भूमिका धर्म व संस्कृति की न रहकर धर्मेत्तर (धर्म के अलावा) तथा संस्कृति से भिन्न, राजनीतिक एवं सामाजिक कारणों से निहित रहती है।''

शाकिर के अनुसार, राष्ट्रीय आंदोलन मूलतः धर्मनिरपेक्ष तो था, किंतु इतना अधिक शक्तिशाली नहीं था, कि वह साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को मिटा सके। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता साम्प्रदायिकता को न तो अच्छी तरह से समझ सके और ना ही उससे पूरी तरह जूझ सके।[5] वे साम्प्रदायिक नेताओं से ही उलझते रहे और उन्होंने अल्पसंख्यकों की आम जनता पर ध्यान नहीं दिया। इन अल्पसंख्यकों के बिचौलिये नेताओं के हित साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में थे, न कि घटाने में। कांग्रेस में हिन्दू महासभा के नेताओं का सम्मान भी उनकी धर्मनिरपेक्ष छवि के लिए घातक था। उन्होंने चुनावों में वोट प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारा।

मोइन शाकिर ने, साम्प्रदायिकता के भौतिक कारणों का विवेचन करते हुए बताया है कि भारत में पूंजीवाद के विकास के साथ–साथ परम्परागत सामन्तवादी शक्तियाँ भी जीवित रही, इसलिए असमान आर्थिक विकास ने राजनीतिक प्रक्रिया के धर्म निरपेक्षीकरण को रोक दिया। वर्तमान आर्थिक नीतियों का लाभ भारतीय जनता के एक छोटे से वर्ग को होता है। एक तरफ से परम्परागत सामाजिक असमानताओं का ध्यान तीव्रतर आर्थिक असमानताओं ने ले लिया है। इस तरह शाकिर के अनुसार, ''साम्प्रदायिकता की समस्या धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से निर्देशित वर्ग संघर्ष की एक मांग है, किंतु भारतीय श्रमजीवी अधिकांशतः भूमि और गाँव से जुड़ा हुआ होने के कारण अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों से अलग नहीं हो पाता। इसलिए वर्ग

सम्बन्धी एकता तथा जातीय, सम्प्रदाय तथा अन्य संकुचितता के मध्य द्वंद्व पैदा हो जाता है।[6]

धर्म, धार्मिकता एवं सम्प्रदायवाद

पहले यह बताया जा चुका है कि 'धार्मिकता' और 'साम्प्रदायिकता' में अंतर होता है। गाँधीजी धार्मिक व्यक्ति थे, लेकिन उन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति को नहीं अपनाया जबकि जिन्ना धार्मिक नहीं होते हुए भी साम्प्रदायिक राजनीति में लिप्त थे। इसलिए धार्मिक होना साम्प्रदायिक होने की पहचान नहीं है।[7] कट्टरपंथी व्यक्ति का भी साम्प्रदायिक होना आवश्यक नहीं होता। लेकिन एक कट्टरपंथी व्यक्ति के साम्प्रदायिक बनने की संभावना अधिक होती है। परंतु शुद्ध धार्मिकता व्यक्ति की साम्प्रदायिकता को कमजोर बनाती है। धर्म तब तक साम्प्रदायिकता का कारण नहीं बनता है, जब तक वह व्यक्तिगत रहे और उसे राजनीति से अलग रखा जाए। लेकिन यदि उसे राजनीति या अन्य किसी स्वार्थ से मिला दिया जाता है, तो वह साम्प्रदायिकता का हथियार बन जाता है।[8]

मेहता और पटवर्धन के शब्दों में, "अंग्रेजी शासकों ने अपने आपको हिन्दू–मुसलमानों के मध्य खड़ा करके ऐसे साम्प्रदायिक त्रिभुज की रचना का निश्चय किया जिसके आधार बिन्दु वे स्वयं रहे।"

मुसलमानों को खुश करने के लिए एवं उनकी राजभक्ति प्राप्त करने के लिए सन् 1905 में कर्जन द्वारा बंगाल विभाजन किया। यह विभाजन 'फूट डालो राज करो' की कुटिल नीति का परिणाम था। 1906 में 'ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग' की स्थापना, '1916 का लखनऊ समझौता' साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले कदम साबित हुए वहीं 1928 में जिन्ना भी साम्प्रदायिक राजनीति के खलनायक बन गये। जिन्होंने 1940 में 'द्विराष्ट्र सिद्धांत' का

प्रतिपादन कर साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत–पाकिस्तान नामक पृथक राष्ट्रों के जन्म के मसीहा बने।

यह साम्प्रदायिक समस्या जो हिन्दू–मुस्लिम को लेकर थी आज वही समस्या जाति, धर्म, वर्ग, भाषा, क्षेत्रवाद रूपी विषैले सर्प की तरह फन उठाये खड़ी है मानो जैसे वह समस्त सभ्यता को निगल ही जाएगी। 1947 के साम्प्रदायिक दंगों से लेकर 1965–66, 1977 एवं 1999 का कारगिल युद्ध इस के ज्वलंत उदाहरण हैं।[9]

यह ताण्डव यही तक समाप्त नहीं बल्कि आज भी पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा सीमा पर घिनौनी हरकतें देखने को मिलती हैं।

भारत के कुछ राज्यों में तो ये साम्प्रदायिक घटनाएँ आये दिन देखने को मिलती हैं। जैसे–उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र इत्यादि में सवर्णों एवं निम्न जातियों के बीच टकराव होता रहता है, जिससे क्षेत्र विशेष की समस्या विकट हो जाती है। तोड़फोड़, मारकाट, आगजनी आदि के कारण जन–धन की हानि उठानी पड़ी है जो कदम विकास की ओर बढ़ना चाहिए वही पीछे की ओर खिसकता नजर आता है। यही वैमनस्यता मानव–मानव के बीच कुण्ठा उत्पन्न करती है।

इसलिए साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है और किसी हद तक राजनीति इस विचारधारा के चारों ओर संगठित है। यह एक स्पष्ट तथ्य के बारे में अत्यन्त साधारण–सा कथन प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसका अर्थ बहुत गहरा है। 'विचारधारा' शब्द का प्रयोग यहाँ उस अर्थ में नहीं किया जा रहा है जिस अर्थ में मार्क्स ने इसका प्रयोग किया था, यहाँ इसका अर्थ एक विचार प्रणाली है। एक ऐसी विचार प्रणाली जो समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजव्यवस्थाओं से संबंधित कुछ परिकल्पनाओं पर आधारित है।[10]

साम्प्रदायिकता समाज तथा राजनीति को देखने–समझने का तरीका है। यदि ऐसा है तो इसके कुछ राजनैतिक तथा दूसरे परिणाम सामने आते हैं। आज हम अपने चारों तरफ साम्प्रदायिक विचारधारा के जिन तत्वों को देखते हैं, वे इस साम्प्रदायिक विचारधारा के पिछले सौ वर्षों से अधिक के अस्तित्व तथा प्रसार का परिणाम है। इसलिए केवल आज सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अर्थों में इसकी व्याख्या करना संभव नहीं है और जैसाकि मार्क्स ने कहा था, अपने स्थायित्व के कारण यह अपने आप ही एक भौतिक शक्ति बन चुकी है।

साम्प्रदायिकता का मुख्य कार्य साम्प्रदायिक विचार–प्रणाली अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करना है। सम्प्रदायवादी गतिविधियों के दूसरे पहलू गौण हैं और उसी का अनुकरण करते हैं। हमें साम्प्रदायिकता को साम्प्रदायिक हिंसा, दंगे इत्यादि के साथ नहीं उलझना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि साम्प्रदायिक हिंसा को साम्प्रदायिक–विचारधारा के प्रसार के एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है, यह भी सही है कि साम्प्रदायिक विचारधारा ही साम्प्रदायिक हिंसा की ओर ले जाती है। परन्तु किसी भी परिस्थिति में हमें दोनों को बराबर नहीं समझना चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार का परिणाम है। परन्तु यह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक स्थिति का मूल प्रश्न नहीं है। हिंसा का रूप धारण करने से पहले साम्प्रदायिक विचारधारा न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखती है, बल्कि दशकों तक विकसित भी होती रह सकती है।

अभी कुछ वर्षों में, बहुत से मध्यवर्गीय व्यक्ति, जो पहले धर्मनिरपेक्ष थे, हिन्दू साम्प्रदायिक नारों से प्रभावित हो रहे हैं। उदाहरण के लिए इस धारणा को लीजिए जनवरी–फरवरी, 2018 से प्रचारित किया जा रहा है कि एक मुस्लिम अपने आपको मुस्लिम कहता है और वह सम्माननीय है, एक सिक्ख

अपने आपको सिक्ख कहता है वह सम्माननीय है, परन्तु जब एक हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहता है तो उस पर सम्प्रदायवादी की छाप लगा दी जाती है। यह दृष्टिकोण एक पूर्व–प्रचलित धारणा पर आधारित है और अब इसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।[11]

भारत में साम्प्रदायिकता फासीवाद का एक रूप है। यदि हम साम्प्रदायिकता को केवल एक दूसरी अपर्याप्त अथवा हानिकारक विचारधारा के रूप में देखें तो हम उसे नहीं समझ पायेंगे। प्रादेशिक अथवा भाषाई विचारधाराएं, अपनी सीमाओं को लांघने के बाद भी, अपने चरित्र में साम्प्रदायिक विचारधारा से भिन्न होती है। यह कोई संयोग नहीं है कि शिवसेना ने दक्षिण भारतीयवाद के विरोध के आधार पर एक फासीवादी विचारधारा को विकसित करने का प्रयत्न किया, शीघ्र ही महसूस कर लिया कि वह निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ेगी। इसलिए उसने प्रादेशिकता को छोड़कर फासीवाद के भारतीय रूप अर्थात हिन्दू साम्प्रदायिक विचारधारा को अपना लिया। साम्प्रदायिकता तर्कहीन है और उसका आधार घृणा होती है और वह हिंसा का गुणगान करती है। इसलिए, हमें साम्प्रदायिकता को फासीवाद का भारतीय रूप ही समझाना चाहिए। जहाँ तक अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है फासीवादी रूप केवल अलगाववाद का ही रूप हो सकता है। पंजाब में सिख साम्प्रदायिकता भारत की विजय का रूप नहीं ले सकती। वह केवल एक पृथकतावादी रूप हो सकती है। दूसरी ओर, हिन्दू साम्प्रदायिकता पृथकतावादी रूप नहीं ले सकती, वह अनिवार्य रूप से फासीवादी रूप धारणा करेगी।[12]

साम्प्रदायिकता को आनुभाविक आधार पर परिभाषित नहीं करने के कारण इसे शैक्षिक जगत में अनेकार्थक अवधारणा मात्र तथा व्यावहारिक राजनीति में राजनीतिज्ञों के अस्त्र बनकर रह गये हैं। यह विचित्र विडम्बना है कि भारत में ज्यों–ज्यों धर्मनिरपेक्षता पर जोर दिया गया है, त्यों–त्यों

साम्प्रदायिकता आगे बढ़ी है। फिर भी मूर्त धरातल पर और वास्तविक घटनाओं के सम्बन्ध में यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि किसे 'साम्प्रदायिक' कहा जाए और किसे 'धर्मनिरपेक्ष' बताया जाए। प्रत्येक राजनीतिक दल एक दूसरे को सम्प्रदायवादी कहने से नहीं हिचकिचाते हैं और यहाँ तक कि सरकारें भी जैसे राजस्थान सरकार प्रगतिशील धर्म सुधारकों के विरूद्ध बोहरा समुदाय के कट्टरपंथी धर्मगुरूओं को समर्थन देती है तथा नाथद्वारा के मंदिर में हरिजनों को प्रवेश कराने का दायित्व अपने हाथ में लेती है।[13]

यदि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, तो शिक्षा का महत्व बहुत बढ़ जाता है चाहे वह औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक या उसे समाचार पत्रों से प्राप्त किया जाए। भारत में आज तक इस पहलू पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वैज्ञानिक विचारों पर आधारित सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने में बहुत समय लगता है परन्तु उनका भी कामोबेश सीमित प्रचलन है। उन्हें केवल थोड़े से केन्द्रीय और प्राइवेट स्कूलों में प्रयोग किया गया है।

यदि आधुनिक साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, तो उसका एक दूसरा पहलू भी सामने आता है जो राजसत्ता के प्रश्न से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे समझौता करना अव्यवहारिक है। 1948 तथा 1956 में, पंजाब में जब अकाली लेजिस्लेचर पार्टी भंग कर दी गई और उसका कांग्रेस में विलय हुआ था तब जवाहरलाल नेहरू ने साम्प्रदायिकता के साथ दो बार समझौता करने का प्रयास किया। जिसका परिणाम यह हुआ पंजाब में कांग्रेस पार्टी का एक तिहाई हिन्दू सम्प्रदायवादी, एक तिहाई सिख सम्प्रदायवादी और एक तिहाई धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति थे। इन एक तिहाई धर्मनिरपेक्ष व्यक्तियों की संख्या भी दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है।

इसलिए जब यहाँ–वहाँ थोड़ी बहुत राजनैतिक रियायतें देना जरूरी हो जाता है इसका यह अर्थ नहीं होता कि वे साम्प्रदायिकता समस्या से एक प्रभावपूर्ण ढंग से निपटने में सहायक होगी। यदि रियायतें दी भी जाएं तो उन्हें साम्प्रदायिकता के विरूद्ध संघर्ष में पहले कदम के रूप में ही देखना चाहिए। क्योंकि यदि अकालियों का कांग्रेस में विलय हो जाता और यदि 1947–48 में मुस्लिम लीगियों को कांग्रेस से जुड़ने की अनुमति दे दी जाती और राष्ट्रवादी मुस्लिमों की अप्रत्यक्ष रूप से अवहेलना कर दी जाती और यदि जनसंधियों को कांग्रेस में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी जाती तो इन कदमों को केवल तभी तर्कसंगत माना जा सकता था जब उन्हें साम्प्रदायिकता विरोधी वैचारिक अभियान की शुरूआत के रूप में देखा जाए।

साम्प्रदायिकता का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

सम्प्रदायवाद की जड़ें साम्प्रदायिकता में पाई जाती हैं। साम्प्रदायिकता के अंतर्गत वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं, जिसमें किसी धर्म, जाति अथवा भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाये और उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर प्राथमिकता दी जाए तथा उस समूह विशेष में पृथकता की भावना उत्पन्न हो जाए या उसको प्रोत्साहन दिया जाये। उदाहरण के लिए मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा जैसे संगठनों को 'साम्प्रदायिक' कहा जा सकता है क्योंकि वे धार्मिक अथवा भाषा–समूहों के अधिकारों तथा हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखते हैं।

विसेंट स्मिथ के शब्दों में ''एक साम्प्रदायिक व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह वह है, जो प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषाई समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक तथा राजनैतिक इकाई मानता है, जिसके हित अन्य समूहों से पृथक होते हैं

और उनके विरोधी भी हो सकते हैं। ऐसे ही व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को 'सम्प्रदायवाद' या 'साम्प्रदायिकता' कहा जाएगा।[14]

सामान्यतः सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण समाज विरोधी होता है। उनको समाज–विरोधी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि वह अपने समूह के संकीर्ण हितों को पूरा करने के लिए अन्य समूहों और सम्पूर्ण देश के हितों की अवहेलना करता है। साम्प्रदायिक संगठनों का उद्देश्य शासकों के ऊपर दबाव डालकर अपने सदस्यों के लिए अधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त करना है।

जब एक समुदाय समझ–बूझकर धार्मिक–सांस्कृतिक भेदों के आधार पर राजनीतिक मांग रखने का निर्णय करता है, जब सामुदायिक चेतना 'सम्प्रदायवाद' के रूप में एक राजनीतिक तथ्य बन जाती है। धीरे–धीरे राजनीतिक स्वायत्तता को सांस्कृतिक स्वायत्तता सुरक्षित रखने की अनिवार्य शर्त घोषित कर दिया जाता है, बहुसंस्कृति समाज में सामाजिक तनाव तथा टकराहट वास्तव में विभिन्न समूहों के बीच चल रहे सत्ता द्वंद्व के लक्षण होते हैं।

भारतीय महाद्वीप के बाहर साम्प्रदायिकता वास्तव में समुदाय से उत्पन्न 'साम्प्रदायिकता' होती है। उसका अर्थ ऐच्छिक प्रकृति की सामाजिक गतिविधियाँ होती हैं। जैसे सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, सामुदायिक लंगर, सामुदायिक शिक्षण संस्थाएँ इत्यादि।

भारतीय संदर्भ में 'कम्यूनल' शब्द का अर्थ 'सामुदायिक' के बजाय 'साम्प्रदायिक' बन जाता है। पश्चिमी विचारधारा में 'कम्यूनल' शब्द का अर्थ एकीकरणात्मक है उसका अर्थ व्यक्तिगत स्वार्थ एवं अन्य संकुचित सम्प्रदाय से ऊपर उठकर सबके कल्याण से सम्बन्धित होता है। वहाँ 'कम्यूनिटी' उसका

विशेषण ‘कम्यूनल’ अथवा ‘कम्यूनिटीरियन’ अपिरिवर्तित अर्थ देता है। इनका तात्पर्य सामाजिक सहयोग एवं सामाजिक एकता है। भारत में ‘कम्यूनल’ का अर्थ बिल्कुल उल्टा हो जाता है और वह विघटन, पृथकता, तोड़फोड़ की तरफ चला जाता है।[15]

यह निषेधात्मक अर्थ क्षैतिज (Horizental) तथा लम्बात्मक (Vertical) दोनों तरफ ही जाता है। इसका कारण एक समूह या समुदाय के हित या कल्याण का दूसरे समूह या समुदाय से टकराना हो जाता है, क्योंकि यहाँ उन सब में समन्वय स्थापित करने की कोई व्यवस्था नहीं पाई जाती। दूसरे शब्दों में, यहाँ उच्च स्तर पर मनोवैज्ञानिक एवं संस्थापक नियमों का अभाव पाया जाता है, तो सम्प्रदायों के अभिजन वर्गों के मध्य मध्यस्थता की भूमिका अदा करे और उन सबको अपने नेतृत्व के द्वारा समान नागरिकता अथवा राष्ट्र की भावना से जोड़े।

वस्तुतः साम्प्रदायिकता को लोग साम्प्रदायिक दंगों से जोड़कर देखते हैं। वे समझते हैं कि दंगे हो रहे हैं, अर्थात् साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। इसी मूल के कारण हम इतिहास में साम्प्रदायिकता की जड़े नहीं ढूँढ़ते बल्कि हम दंगों के तात्कालिक कारणों को साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति बढ़ाने वाले कारण मान लेते हैं। दंगे सिर्फ साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति होते हैं। उनके नहीं होने पर भी, साम्प्रदायिकता कई कारणों से कई रूपों में फलती–फूलती रहती है।

सम्प्रदायवाद को फासीवाद जैसा माना जा सकता है। विपिन चन्द्रा के अनुसार ‘‘साम्प्रदायिकता के दर्शन फासीवाद दर्शन से बहुत कुछ मिलता–जुलता है। फासीवाद की तरह ही यह अपनी जाति या सम्प्रदाय के पृथक अस्तित्व और श्रेष्ठता की बात करता है और उसे स्थापित करने के लिए

बल प्रयोग करता है। एक दर्शन या विचारधारा की तरह इसका जन्म और विकास धीरे–धीरे होता है।

ऐसा माना जाता है कि साम्प्रदायिकता को हवा देने में राजनैतिक अवसरवादिता की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिकता के प्रति उदार हो गये हैं। समस्त पार्टियों ने साम्प्रदायिक दलों से गठजोड़ कर लिया है। कई नेता गर्व से कहते हैं कि वह अमुक जाति व सम्प्रदाय के नेता है। साम्प्रदायिकता को हवा देने में इस मनोवृत्ति का भी काफी असर रहा है।

ए.एच. मेरियम के शब्दों में, "साम्प्रदायिकता अपने समुदाय के प्रति वफादारी की अभिवृत्ति की ओर संकेत करती है, जिसका अर्थ भारत में हिन्दुपन या इस्लाम के प्रति पूरी वफादारी रखना है।"[16]

साम्प्रदायिकता का समग्र स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा उसके पश्चात् हुए राजनीतिक विकास को ध्यान में रखना उपयोगी है। उससे पता चलता है कि सम्प्रदायवाद का विशेष स्वरूप भी कालान्तर में रूपान्तरित हो जाता है। प्रारम्भ में मुस्लिम लीग रक्षात्मक ढंग से अल्पसंख्य अधिकारों के लिए लड़ती हुई दिखाई दी परंतु बाद में वह पूरी तरह से भारतीय राजनीति में आक्रमक हो गई, इसी तरह मुस्लिम सम्प्रदायवाद 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्राप्त सफलताओं के बाद अप्रभावी हो गया है। जबकि ईसाई सम्प्रदायवाद ने प्रारम्भ में ही उग्र एवं आक्रामक परिस्थितियों से समझौता कर लिया। विभाजन से पूर्व भारत में विद्यमान सम्प्रदायवाद संसार में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायवादों से सर्वाधिक सफल कहा जा सकता है।[17]

स्वतंत्रता से पहले तथा बाद में भारत में पाये जाने वाला सम्प्रदायवाद मुख्यतः धर्म (Religion) तथा धार्मिकता तथा धर्मत्व के इर्द–गिर्द प्रचलित होता है। साम्प्रदायिकता विपिन चन्द्रा के अनुसार मूलतः 'झूठी चेतना' (Flase

Consiniousness) पर आधारित पाई जाती है।[18] जो भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् भी काफी मात्रा में दिखाई पड़ती है। सम्प्रदायवाद की संरचनाओं में भी केवल मात्रा का ही परिवर्तन हुआ है क्योंकि हिंदू व मुसलमानों को विभाजित करने वाली परिस्थितियाँ अभी भी बनी हुई हैं। केवल अंतर इतना ही हुआ है कि सन् 1947 से पूर्व मुस्लिम सम्प्रदायवाद प्रभावी था, किन्तु वर्तमान सम्प्रदायवाद में उसका स्थान हिन्दू सम्प्रदायवाद ने ले लिया है। अंग्रेजी शासकों को चुनाव लड़ने की कोई चिंता नहीं थी, किन्तु स्वतंत्र भारत के राजनेताओं को केवल पांच वर्ष के लिए सत्ता प्राप्त होती है, जिसे वे प्रायः साम्प्रदायिक तत्वों पर आधारित वोट बैंक के द्वारा प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि एक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बन जाने के बाद भी लगभग सभी समुदायों में सम्प्रदायवाद फल–फूल रहा है।[19]

प्रायः यह देखा गया है कि गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग ही सम्प्रदायवाद के शिकार होते हैं तथा उनमें सम्प्रदायवादी नेता यह 'झूठी चेतना' भर देते हैं कि उनकी गरीबी अन्य समुदायों के कारण है। दुर्भाग्य से यद्यपि राज्य एवं सरकार को दो समुदायों की साम्प्रदायिकता के मध्य तीसरा पक्ष नहीं बनना चाहिए, किन्तु वह स्वतंत्रता से पूर्व पाई जाने वाली विरासत से छुटकारा नहीं पा सकी है।[20] अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संविधान में लिखित मौखिक अधिकारों ने साम्प्रदायिकता का मार्ग प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए राज्य एवं प्रशासन तंत्र के लिए साम्प्रदायिकता को नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। विशेषतः जब उसे बाहर से वित्तीय सहायता तथा भारत विरोधी राज्यों से निर्देशन एवं प्रशिक्षण मिल रहा है। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया भारत में रहने वाले अन्य समुदायों की ओर से होती है, इस साम्प्रदायिक शक्तियों का नेतृत्व भी निहित स्वार्थों के कारण मध्यवर्गीय तत्वों की ओर से होता है। साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया का अवलोकन करने पर पता चलता है कि बहुल समाज की

उत्पत्ति तथा उसकी अनेक छवियाँ एवं रूप हैं। भारतीय सम्प्रदायवाद की प्रक्रिया को अच्छी तरह समझने के लिए परम्परागत 'अल्पसंख्य–बहुसंख्य' की रूढ़ धारणाओं को दूर किया जाना चाहिए। धार्मिक संदर्भ को छोड़कर भारत का कोई भी सम्प्रदाय बहुत अधिक सुदृढ़ समुदाय के रूप में नहीं पाया जाता। केवल एक बहुत छोटा समुदाय ही एक सुदृढ़ सामाजिक इकाई के रूप में, जो समान आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक हितों के लिए हुए धार्मिक आधार पर ही गठित पाया जाता है। बड़े समुदाय प्रायः इस प्रकार संगठित नहीं हो सकते। हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख समुदाय न केवल सामाजिक परिस्थिति, भाषा, सांस्कृतिक तथा रीति–रिवाजों के आधार पर बंटे हुए हैं, अपितु धार्मिक मामलों में भी उनके बीच विभेद पाया जाता है।

वर्तमान साम्प्रदायिक वीभस्त स्वरूप

यह बताया जा चुका है कि साम्प्रदायिकता भाषा, जाति, प्रजाति, धर्म आदि अनेक धाराओं पर टिकी हुई है। किन्तु यहां धर्म से जुड़ी हुई साम्प्रदायिकता को ही मुख्य विषय माना गया है। पहले दंगे प्रायः एक क्षेत्र या एक शहर के मुहल्ले तक सीमित रहते थे। उनके जनक मूलतः समाज में धार्मिक व्यक्ति एवं संस्थाऐं न होकर व्यक्तिगत द्वेष, दो समुदायों में धन्धे की प्रतिस्पर्धा, सामंतीय भावना रहती थी। वे अनायास फूट पड़ने वाले हुआ करते थे। बाद में राजनीतिक संगठन आते दिखायी पड़ते थे। राजसत्ता के सक्षम हस्तक्षेप के बाद वे शांत हो जाते थे और उपद्रव ग्रस्त क्षेत्र में जीवन फिर लौट जाता था। दंगों से सीधे प्रभावित न होने वाले लोगों के दिलों में इन दंगो के खिलाफ एक जज्बा था। कहीं दंगा होता था, तो दंगो के अवांछित होने, मनुष्य विरोधी एवं विकास विरोधी होने को लेकर विभिन्न दलों के बयान आते थे, बुद्धिजीवी एवं अनेक स्वयंसेवी संस्थाऐं दंगो की भर्त्सना करती थी। किन्तु वर्तमान में ऐसा नहीं होता।[21]

संक्षेप में, डब्ल्यू सी. स्मिथ ने "सम्प्रदायवाद को एक धर्म विशेष के अनुयायियों की ऐसी विचारधारा बताया है, जो कि अन्य सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक समूहों से विशिष्टता अथवा शत्रुता पर जोर देती है। इसमें धर्म पर आधारित समुदायों के मध्य सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक असमानताओं को जानबूझकर उभारा जाता है। सम्प्रदायवाद इस प्रकार एक सामाजिक शक्ति तथा एक सामाजिक प्रक्रिया है।[22] पूर्ण विकसित होने पर यह एक महान सृजनात्मक शक्ति भी बन सकती है और ध्वंस तथा अराजकता भी ला सकती है। किन्तु यह देखा गया है कि धार्मिक समुदाय, आर्थिक एवं राजनीतिक समुदाय भी होते हैं। किन्तु पश्चिमी देशों की तरह एशियाई देशों में धार्मिक, प्रजातीय अथवा वर्गीय आधारों पर समूह मिश्रित अथवा आर–पार ताने–बाने की तरह नहीं पाये जाते। सम्प्रदायवाद धर्म पर आधारित समूहों, संगठनों व व्यक्तियों के मध्य ही नहीं पाया जाता, अपितु वह जातिगत समूहों, वर्गो, भाषायी अथवा क्षेत्रीय समुदायों के मध्य भी पाया जाता है।

सम्प्रदायवाद का अभिजात्य स्वरूप

भारत में साम्प्रदायिकता की महत्वकांक्षा रखने वाले परम्परावादी अभिजन लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए सैद्धान्तिक जामा पहनाकर बढ़ावा दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों के सामाजिक ढाँचे के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि सत्ता, सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा पर अभिजात वर्ग का पहले से ही लगभग स्थायी एकाधिकार था। अपने सांस्कृतिक रूझान और जीवन शैली में यह वर्ग आम जनता से बहुत दूर था। दोनों समुदायों में सांस्कृतिक अन्तर और विशिष्टता की चेतना इस वर्ग के स्तर पर सबसे अधिक गहरी थी। जनसाधारण के स्तर पर अन्तर की यह चेतना अस्पष्ट और सूक्ष्म थी।[23]

धर्मान्तरित मुसलमान यदि देवी–देवताओं की पूजा अर्चना में लगे थे तो हिन्दुओं को पीरो की मजार और दरगाहों में जाने में कोई आपत्ति नहीं थी। दोनों के सामाजिक आदर्शो और रीति रिवाजों में नाममात्र का भेद था। अभिजात वर्ग की संस्कृति न केवल आपस में एक दूसरे से भिन्न थी अपितु अपने समुदाय के जनसाधारण की संस्कृति के साथ भी इसके कोई विशेष मिलन बिन्दु नहीं थे। अभिजात वर्ग के स्तर पर दो समुदायों के बीच जो आंशिक सांस्कृतिक आदान–प्रदान हुआ उसका स्वरूप पूर्ण रूप से उपयोगितावादी था। सामान्य रूप से दोनों समुदायों के ये वर्ग अपने–अपने समुदाय की 'उच्च संस्कृति' को सुरक्षित रखने में लीन थे। उनकी सांस्कृतिक–संकीर्णता और विशेष आग्रह उनके संरक्षण के बंटवारे की शैली में प्रकट है।[24]

लोकतंत्रिय राष्ट्रवाद एवं सम्प्रदायवाद

भारत में साम्प्रदायिक विचारधारा 'प्रतिनिधिमूलक' राष्ट्रवाद तथा समकालीन साम्प्रदायिकता अर्थात उल्टे ढंग से प्रक्षिप्त हिन्दू साम्प्रदायिकता तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रतिबिम्ब है।[25]

परन्तु यह यूरोपीय पूर्वाग्रह को भी जारी रखे हुए है। एक सीमा तक यूरोपीय इतिहास के भारतीय विद्यार्थी कैथोलिक–प्रोटेस्टेन्ट संघर्ष को भारत में हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय राज्यों के हिन्दू तथा मुस्लिम चरित्र, 18वीं शताब्दी तथा उसके पहले के हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष, 19वीं तथा 20वीं शताब्दियों में हिन्दू–मुस्लिम शत्रुता के सम्बन्ध में ब्रिटिश इतिहासकार तथा प्रचारक बहुत पहले ही सामान्यीकरण कर चुके थे। भारतीयों ने केवल उनका अनुसरण किया। ऐसा करना सरल था क्योंकि अंग्रेज अधिकारी इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्या अथवा प्राचीन तथा मध्यकालीन शासकों तथा 'वीरों' को महिमामण्डित करने पर कोई आपत्ति नहीं करते थे। वे

केवल अंग्रेजी साम्राज्यवाद की आलोचना के प्रयास को नियमित रूप से दबा देते थे।[26]

लोकतन्त्र पर आधारित राष्ट्रवाद के प्रति प्रतिबद्धता भारतीयों के लिए एक चुनौती की तरह आयी। धर्म, संस्कृति या इतिहास किसी भी प्रकार की 'अतिरिक्त क्षेत्रीय', 'निष्ठा' न होने के कारण हिन्दुओं का तादात्म्य इस नये राष्ट्रवाद के साथ होना अत्यन्त स्वाभाविक और सरल था। किन्तु मुसलमानों में धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रीय राष्ट्रवाद के प्रति निष्ठा नहीं थी क्योंकि उनमें नस्ल, धर्म, संस्कृति और भाषा के सूत्र उन्हें एक सामुदायिक एकता में बांधकर हिन्दुओं से अलग व्यक्तित्व नहीं प्रदान करते हैं। कुछ मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर आकर्षित हुये, किन्तु अधिकांश ने राजनीतिक अलगाव के मार्ग को अपनाया। अलगाव के आन्दोलन को भावात्मक और सैद्धान्तिक आधार देने के लिए उन्होंने मुसलमानों के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य पर जोर दिया। अल्पसंख्य होने के नाते उन्होंने लोकतन्त्रीय राष्ट्रवाद को अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा के लिए खतरनाक पाया। लोकतन्त्र ने तलवार के स्थान पर जनता की सत्ता को निर्णायक बनाकर मुसलमानों की स्थिति एक स्थायी अधिनस्थ समुदाय की कर दी। लोकतन्त्र के रहते हुये इस स्थिति में परिवर्तन सर्वथा असम्भव था। इस निश्चित क्षेत्र से बचने का एक मात्र मार्ग हिन्दुओं से अलगाव था। अलग सामुदायिक अस्तित्व से राष्ट्रवाद की तुलना में सम्प्रदायवाद मुस्लिम अभिजात वर्ग के लिए अधिक लाभकारी था।[27]

राष्ट्रवाद को लेकर उठी शंकाओं का समाधान साम्प्रदायिक विचारधारा में था। अतः मुसलमानों ने आरम्भ में एक धार्मिक अल्पसंख्य समुदाय के रूप में राजनीतिक मान्यता प्राप्त करने का प्रयास किया। उसमें सफल होने के बाद अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उन्होंने एक पृथक इस्लामी राज्य की मांग रखी। इसके विपरीत हिन्दू सम्प्रदायवाद का आविर्भाव मुस्लिम

सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया में हुआ है। मुसलमानों की दिन–प्रतिदिन बढ़ती माँगो और ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस द्वारा दी जाने वाली रियायतों ने हिन्दुओं के वर्ग में दुश्चिन्ता पैदा कर दी। उनको आशंका हुई कि रियायतों की इस नीति से बहुसंख्य समुदाय के रूप में मिलने वाले उनके अधिकारों और सुविधाओं को गहरा आघात पहुँचेगा। साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध, किसी प्रकार भी राष्ट्रवाद से न तो था और न है। यह राष्ट्रवाद के एक विकल्प के रूप भी उत्पन्न हुई और कार्य करती रही। जैसा कि इंडोनेशिया और बहुत से पश्चिमी एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी देशों में हुआ, भारत में साम्प्रदायिकता धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद भी नहीं थी। भारत में साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद के विरोध के रूप में विकसित हुई और इसमें साम्राज्यवाद विरोधी विषय वस्तु का अभाव था।

साम्प्रदायिकता जन चेतना का प्रतिबिम्ब भी नहीं थी। मध्यकालीन युग में विशेष रूप से गांवो में, सामान्य व्यक्ति एक जैसा सामाजिक जीवन व्यतीत करते थे, उनकी समान संस्कृति थी, आज भी है। लोकप्रिय धर्मो के स्तर पर भी उनकी आस्थाऐं तथा आचरण समान थे, क्योंकि लोकप्रिय धर्म अत्यन्त उदार थे।

वास्तव में, लोक चेतना साम्प्रदायिक प्रचार के रास्ते में एक मुख्य बाधा रही है और इसी के कारण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरों के अधिकांश भागों में अभी तक साम्प्रदायिकता की जड़े, अधिक गहरी नहीं है। जबकि साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में हो गया था।[28]

भारत में धर्म साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेदार नहीं है, न ही साम्प्रदायिकता धर्म से प्रेरित होती है और न ही धर्म साम्प्रदायिक राजनीति का एक उद्देश्य है।[29] यद्यपि सम्प्रदायवादी धार्मिक मतभेदों को अपनी राजनीति का

आधार बनाते हैं, धार्मिक पहचान को एक संगठनात्मक सिद्धान्त के रूप में प्रयोग करते हैं और साम्प्रदायिकता के इस दौर में सर्वसाधारण को लामबन्द करने के लिए धर्म का प्रयोग करते हैं। जिसका विभिन्न रूपों में साम्प्रदायिकता से सम्बन्ध है।

संदर्भ सूची

1. चन्द्रा, विपिन; "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस (1984), पृ.सं. 169.
2. मेहता एवं पटवर्धन; "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इंडिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान (1942), पृ.सं. 19.
3. कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988), पृ.सं. 241–253.
4. कृष्ण, गोपाल; "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली, एन.ए. पब्लिशर (1981), पृ.सं. 29.
5. श्रीनिवास, एम.एन.; "आधुनिक भारत में जातिवाद", भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (1987), पृ.सं. 159.
6. डी., स्मिथ विल्फ्रेड; "मॉर्डन इस्लाम इन इण्डिया", लाहौर, पेंगविन बुक हाउस, (1943), पृ.सं. 41.
7. दीक्षित, प्रभा; "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन (1980), पृ.सं. 41.
8. आजाद, मौलाना; "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली, ओरियन्टलोंगमैन प्रेस, (1958), पृ.सं. 131.
9. माथुर, पी.सी.; "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 201.
10. वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", नई दिल्ली, दी इण्डिया जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज (दिसम्बर 11, 1987), पृ.सं. 69–86.
11. माथुर, वाई.वी.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", न्यू दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिशिंग (1972), पृ.सं. 31–34.

12. पुंताम्बेकर; “दी सैक्यूलर स्टैट”, दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949), पृ. सं. 13–17.
13. गांधी, एम.के.; “दी वे टू कम्यूनल हारमनी”, अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958), पृ.सं. 69–70.
14. जैन, एम.एस.; “आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक”, दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 27.
15. खाँ, अहमद, सर सैय्यद; “दी कॉज ऑफ दी इण्डिया रिवोल्ट”, दिल्ली, कल्पाज पब्लिकेशन, (1972), पृ.सं. 32–36.
16. शर्मा, जी.एन.; “राजस्थान का इतिहास”, नई दिल्ली, कृष्णा प्रकाशन, (1983), पृ.सं. 12.
17. कालूराम; “राजस्थान का इतिहास”, जयपुर, पंचशील प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 226.
18. अवस्थी, अमरेश्वर; “आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन”, दिल्ली, नन्दा प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 313.
19. अमिसाज, अहमद; “परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम”, दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वाटेरटली, (अक्टूबर, 1972), पृ.सं. 22
20. चटर्जी, पी.सी.; “सेक्यूलर वेल्यू और सैक्यूलर इंडिया”, दिल्ली, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985), पृ.सं. 212.
21. सोमरा, करण सिंह; “साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना”, नई दिल्ली, प्रिन्टवैल, (1992), पृ.सं. 110–111.
22. मोहम्मद, चाँद; “राजस्थान में साम्प्रदायिकता ज़हर के विरूद्ध आह्वान”, आगरा, दैनिक नवज्योति, (मार्च 27, 1987)
23. सिन्हा, बी.के.; “सेक्यूलरिज्म इन इंडिया”, बम्बई, लालवानी पब्लिशिंग हाउस (1986), पृ.सं. 37.

24. राणदेवे, बी.टी.; "जाति और वर्ग", नई दिल्ली, नेशनल बुक सेन्टर, (1983), पृ.सं. 167.
25. चटर्जी, पी.सी.; "सेक्यूलर वैल्यू ऑर सेक्यूलर इण्डिया", दिल्ली, कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985), पृ.सं. 24.
26. अमिसाज, अहमद; "परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट, क्वार्टरली, (1972), पृ.सं. 67.
27. इम्तियाज, अहमद; "सैक्यूलर स्टेट, कम्यूनल सोसायटी", फैक्टशीट 2, कम्यूनीलज्म दी रेंजर्स एज, बम्बई फॉकिस्ट कलेक्टर वर्क, (1983), पृ.सं. 16—18.
28. अन्सारी, एम.ए.; "मुस्लिम एण्ड दी कांग्रेस", दिल्ली, विकास पब्लिशिंग, (1979), पृ.सं. 313
29. इंजीनियर, अली असगर; "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू ऑवर पेज", बम्बई, इस्लामिक स्टैडिज, (1984), पृ.सं. 115.

अध्याय–द्वितीय

अल्पसंख्य, बहुसंख्य समस्या एवं सम्प्रदायवाद के प्रकार

अध्याय–द्वितीय

अल्पसंख्य, बहुसंख्य समस्या एवं सम्प्रदायवाद के प्रकार

भारत विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा संस्कृति वाला देश है जिसमें हिन्दू–मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, आदि धर्म के लोग निवास करते हैं। भारत में सर्वाधिक संख्या हिन्दुओं की है जो वर्तमान में कुल जनसंख्या का सभी धर्मों से अधिक (96.63 करोड़) हैं वही अन्य धर्मों के अनुयायियों में मुसलमान सबसे बड़ा अल्पसंख्य गुट हैं। जो कुल जनसंख्या (17.22 करोड़) का (14.2 प्रतिशत) प्रतिशत है। इसमें सबसे कम प्रतिशत जैन व पारसी धर्म के अनुयायियों का है। परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इन सम्प्रदायों के मध्य प्राचीन काल से ही मैत्रिपूर्ण सम्बन्ध नहीं बन पाये, समय–समय पर इनके बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं।

भारत में यह सम्प्रदायिकता की समस्या मध्यकालीन मुस्लिम शासकों के आगमन से प्रारम्भ हुई थी यद्यपि सभी मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया बल्कि अकबर जैसे मुस्लिम शासक ने हिन्दुओं के प्रति धार्मिक सहनशीलता की नीति को अपनाया।[1]

यह समस्या मुख्यतः अंग्रेजी शासकों द्वारा उत्पन्न की गई है उन्होंने अपने राजनीतिक, आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए "फूट डालो तथा शासन करो" की नीति का अनुसरण किया था।[2] उन्होंने अपने स्वार्थ सिद्ध करने हेतु सर्वप्रथम 1909 का शासन परिषद अधिनियम के तहत मुसलमानों को पृथक

निर्वाचन की व्यवस्था को प्रारम्भ किया और मुस्लिम नेताओं ने अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु इस नीति का समर्थन किया। इस नीति में अपनी सफलता देखकर अंग्रेजों ने 1919 का भारत शासन अधिनियम व 1935 का भारत शाासन अधिनियम के तहत सिक्ख, हरिजन तथा अन्य जातियों के लिए भी पृथक निर्वाचन प्रणाली प्रारम्भ कर दी।[3]

इस प्रकार यह साम्प्रदायिकता की भावना ने धीरे–धीरे "दो राष्ट्रों के सिद्धांत" का रूप ले लिया। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान करने हेतु पृथक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर सार्वजनिक मताधिकार की व्यवस्था की गई, जिसके अन्तर्गत सभी नागरिकों को धर्म, जाति, भाषा, मूलनिवास के आधार पर बिना किसी भेदभाव के मतदान देने का अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही सभी नागरिकों को किसी भी धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता दी गई। राजकीय शिक्षण संस्थाओं में किसी भी धर्म की धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की मनाही की गई। नागरिकों के लिए यह भी व्यवस्था की गई कि किसी भी नागरिक को अपने या किसी विशेष धर्म प्रचार के लिए 'कर' (Tax) देने अथवा धन जुटाने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

संविधान की इस व्यवस्था से देश में एकता व अखण्डता का वातावरण बना परन्तु धीरे–धीरे धर्म ने राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू कर दिया जिससे देश में अनेक राजनीतिक दल धर्म के आधार पर गठित होने लगे। जैसे जनसंघ, मुस्लिम लीग, जमायते इस्लामी, अकाली दल, शिवसैना इत्यादि इन दलों ने मत प्राप्त करने हेतु लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काने का कार्य किया इस प्रकार राजनीति ने धर्म का साम्प्रदायिकरण कर दिया।[4]

इसके परिणामस्वरूप संविधान निर्माताओं के भरसक प्रयास के बावजूद भारत में साम्प्रदायिकता की भावना ज्यों की त्यों बनी हुई है।[5] सम्प्रदायवाद की यह अवधारणा का विस्तार तो यहाँ देखने को मिलता है जब दो सम्प्रदायों के बीच ही सीमित न रह कर एक ही धर्म के अलग–अलग गुटों के बीच में हिंसात्मक दंगे हुए है जैसे सवर्ण हिन्दुओं व अनुसूचित जाति व जनजाति के बीच, निहंग अकाली व निरंकारियों के बीच, सुन्नी तथा शिया मुसलमानों के बीच झगड़े साम्प्रदायिक हिंसा का प्रमाण है।

सर्वप्रथम 1961 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दू व मुसलमान छात्रों के मध्य टकराव, 1963 में पैगम्बर मोहम्मद के बाल की चोरी और कश्मीर में दंगे 1969 में अहमदाबाद में दंगे, 1974 में नई दिल्ली में 2013 में यू.पी. के मुज्जफर नगर की घटना साम्प्रदायिकता का घिनौना रूप देखने को मिला जिसमें अमनवीयता की सभी हदों को पार कर दिया।[6]

इसके अलावा आज भी भारत के किसी न किसी भाग में हिंसात्मक दंगे होते रहते है। जैसे चुनावी प्रक्रिया के दौरान तो विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके बचाव हेतु सरकार को भारी सुरक्षा व्यवस्था करनी पड़ती है।

वर्तमान में यह स्थिति भयानक रूप लेकर उभरी है। यह किसी सम्प्रदाय विशेष हिन्दू–मुस्लिम, हिन्दू–सिक्ख के बीच न रह कर विभिन्न धर्म, जातियो, वर्गों के बीच फैल गई है।[7]

साम्प्रदायिक समस्या से क्षति की आशंका के चलते केवल अल्पसंख्य वर्ग ही अपने हितों के संरक्षण हेतु प्रयास किया करते थे परन्तु वर्तमान ने हिन्दू मुस्लिम, सिख, जैन, पारसियों ने भी अपने हितों को संगठित होकर रक्षा उपाय शुरू कर दिया यही नहीं बल्कि जातियों में उपजातिया, वर्गों में भी उपवर्गों ने भी अपने हितों का संरक्षण हेतु गुट बना लिये है। इस संरक्षण की

भावना ने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया तथा इसी कारण अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य के बीच भय व तनाव बना हुआ है। लोकतन्त्र के संदर्भ में 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' की धारणा परिवर्तनशील घटते बढ़ते आकार वाले समुदायों से सम्बन्ध रखती है, किन्तु विश्व के सभी देशों में अल्पसंख्य व बहुसंख्य स्थाई रूप से पाये जाते हैं, यह हो सकता है कि किसी देश में बहुसंख्य अधिकतम मात्रा में अथवा आधे से अधिक मात्रा में रहते हैं और शेष जनसंख्या एक अधिक अल्पसंख्यकों में बंटी है। अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य समुदायों का स्थायी अनुपात विविध कारणों से घटता–बढ़ता रहता है, जैसे सन्तानोत्पति, निष्क्रमण, धर्म परिवर्तन, युद्ध आदि। अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य गुणात्मक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, किन्तु लोकतन्त्र में संख्या का महत्व होता है।[8]

समस्या का स्वरूप–अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य

साम्प्रदायिकता का सीधा सम्बन्ध 'अल्पसंख्य' एवं बहुसंख्य समुदायों की वास्तविकता के साथ जुड़ा हुआ है। केवल अल्पसंख्य ही समस्या उत्पन्न नहीं करते बल्कि बहुसंख्य भी साम्प्रदायिकता का स्रोत बन जाते हैं। वस्तुतः यह समस्या सापेक्ष दृष्टिकोण, हितों तथा स्वार्थों से सम्बन्ध रखती है। क्योंकि जहाँ अल्पसंख्यों की अवधारणा को जान लेना आवश्यक है। यह समस्या तब उत्पन्न होती है जब बहुसंख्य समुदाय अल्पसंख्य समुदायों के प्रति घृणा, द्वेष एवं प्रतियोगितावादी धारणाऐं रखते है और वे उन पर अपनी समस्याओं को थोपते है उसी तरह अल्पसंख्य समुदाय भी बहुसंख्य समुदायों के प्रति पूर्वाग्रह रखते है।[9]

अल्पसंख्य के विषय में जॉन स्टुअर्ट मिल ने "रिप्रजेन्टेटिव गर्वमेन्ट"[10] में कहा कि "इसे अधिक और कोई निश्चित नहीं है कि अल्पसंख्यको को मिटा

देना न तो आवश्यक होगा और न ही स्वतंत्रता का स्वाभाविक परिणाम, अपितु ऐसा करना लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धांत के पूर्णतः विपरित है।"[11]

माइनॉरिटी (Minority) लैटिन भाषा के माइनर (Minor) तथा आइटी (Ity) का यौगिक शब्द है, जिसका अर्थ है समग्र को बनाने वाले दो समूहों में संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटा समूह। लोकतंत्र में जनमत के आधार पर अल्पसंख्य व बहुसंख्य की संख्या घटती, बढ़ती रहती है। वस्तुतः अल्पसंख्य लोकतंत्र की उपज है लोकतंत्र के अभाव में अल्पसंख्य राजनीतिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण है क्योंकि ये प्रजातिय, संस्कृति, भाषा धर्म आदि पर आधारित हो सकते हैं। इन्हें अल्पसंख्य–बहुसंख्य की विचारधारा के अलोकतन्त्रीय आधार माना जा सकता है।[12]

भारत में अल्पसंख्य की अवधारणा को विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है। सामान्यतः अल्पसंख्य दूसरों की तुलना में संख्यात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटे समूहों का नाम है।

- **इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका** के अनुसार, "अल्पसंख्य" ऐसे समूहों को कहते है, जो समान रक्तवंश, भाषा अथवा धार्मिक विश्वास के बन्धनों से बंधे हुए हो तथा किसी एक राजनीतिक समुदाय के बहुसंख्य निवासियों से इन आधारों पर अपने को पृथक मानते हो।"[13]
- **हमर बुक ऑफ हमैन राइट्स** के अनुसार, "अल्पसंख्य शब्द में केवल उन्हीं अप्रभावी समूहों को शामिल किया गया है जो शेष जनता से पूर्णरूप से भिन्न विशेषताएँ अथवा स्थाई प्रजातीय, धार्मिक अथवा भाषायी परम्पराओं को रखती है तथा उन्हें बनाये रखती है।"
- **लोफोन्स** के अनुसार, "वह ऐसे लोगों का समूह है जिसमें उनकी सामान्य प्राजातीय, भाषायी, धार्मिक तथा राष्ट्रीय परम्परा के कारण

राजनीतिक दृष्टि से प्रभावी सांस्कृतिक समूह द्वारा पृथक कर दिया जाता है।"[14]

इस प्रकार समान समस्याओं के प्रति जागरूकता अल्पसंख्य समूह को बनाये रखती है जिसकी निरन्तरता पैतृक एवं वंश परम्परागत के आधार पर चलती रहती है।

चार्ल्स बैगले एवं मॉर्विन हैरीसन ने अल्पसंख्यों की निम्नलिखित विशेषताऐं बतायी हैं –

(1) अल्पसंख्य राज्य समाज के अधिनस्थ भाग होते हैं।
(2) समाज में प्रभावी भागों की दृष्टि से अल्पसंख्यों की विशिष्ट अथवा सांस्कृतिक विशिष्टताओं को नीची दृष्टि से देखा जाता है।
(3) अल्पसंख्य की सदस्यता उत्तराधिकार में चलती है जो बिना सांस्कृतिक अथवा शारीरिक विशेषताओं के होते हुए भी बनी रहती है।

➢ **वधवा** के अनुसार, "नागरिकों का कोई एक वर्ग जो भाषा, धर्म अथवा किसी आधार पर एक निश्चित क्षेत्र में रह रहा हो तथा संख्या में छोटा हो अपनी पहचान बनाये रखने अथवा बहुसंख्यों में विलिन होने के लिए समानता अथवा प्राथमिकता चाहता हो, उसे अल्पसंख्य कहते है।"[15]

इस परिभाषा में अनुसूचित जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यों को भी शामिल कर लिया गया हैं–

कानूनी दृष्टि से भारतीय संविधान में नागरिकों के किसी भाग (Section) शब्द का प्रयोग करके अल्पसंख्य की अवधारणा को व्यापक बना दिया संविधान की धार 29 में भी सर्वोच्च न्यायालय ने बताया कि राज्य की सम्पूर्ण जनसंख्या के संदर्भ में अल्पसंख्य का निर्णय किया जाना चाहिए क्योंकि एक समुदाय जो

राज्य के किसी क्षेत्र में अल्पसंख्य है, किन्तु उस समग्र राज्य में बहुसंख्य है तो उसे धारा 30 के अन्तर्गत अल्पसंख्य नहीं माना जाएगा।

भारतीय संविधान में "अल्पसंख्य" शब्द की कहीं भी व्याख्या नहीं की गई केवल उस समय सिक्खों, जैनों, मुस्लिमों व एंग्लो इण्डियन तथा क्रिश्चियनों को "अल्पसंख्य" माना गया था। संविधान में कुछ विशेष प्रकार के अल्पसंख्यों का भी वर्णन किया गया है इन सबको "पिछड़े वर्ग" (Backward Classes) रखा गया है। जिसमें तीन वर्ग आते है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा दूसरे पिछड़े वर्ग।

इस तरह नागरिकों को कोई भी समूह जो किसी निश्चित क्षेत्र में संख्या में अल्प है, धर्म, भाषा या किसी अन्य आधार पर अपनी पहचान बनाये रखने के लिए अथवा बहुसंख्य में आत्मसात होने के लिए समानता अथवा वरीयता का बर्ताव चाहता है तो वह अल्पसंख्य है।

अल्पसंख्य साम्प्रदायिकता बहुत अधिक खतरनाक है क्योंकि वह निरन्तर धार्मिक अल्पसंख्यकों को साम्प्रदायिक नेताओं के हाथ की कठपुतली बना देती है। वास्तव में, साम्प्रदायिकता केवल राष्ट्र की ही नहीं बल्कि व्यक्तियों के उन वर्गों की शत्रु है जो उसमें विश्वास करते हैं। यदि हम हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोध करते है तो इसलिए नहीं कि वह सिखों अथवा मुसलमानों के लिए खतरनाक है बल्कि इसलिए कि वह स्वयं हिन्दुओं के लिए भी खतरनाक है। सिखों को ही सिख साम्प्रदायिकता का विरोध करना चाहिए; इसलिए नहीं कि वह राष्ट्र विरोधी अथवा हिन्दू विरोधी हैं बल्कि इसलिए कि जहाँ तक सिखों का सम्बन्ध है, सिख साम्प्रदायिकता का अर्थ फासीवाद ही होगा। दूसरे शब्दों में, साम्प्रदायिकता सबसे अधिक उन लोगों की दुश्मन है जो इसमें विश्वास रखते है और जिनका प्रतिनिधित्व करने का वह दावा करती हैं।[16]

अल्पसंख्य जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा कानूनी स्तरों पर अलग–अलग टिके हुए रहते हैं। उन्हें व्यवसाय, व्यापार, उद्योग धन्धों, नौकरियों आदि में घाटे के स्थान दिये जाते हैं अर्थात् सामाजिक दृष्टि से घृणित समझा जाता है।

अल्पसंख्य साम्प्रदायिकता, जब तक कि हम उसके विरूद्ध संघर्ष न करे, बहुसंख्य साम्प्रदायिकता के विरूद्ध संघर्ष को बहुत कठीन बना देती है हमारा मुख्य संघर्ष बहुसंख्य साम्प्रदायिकता के विरूद्ध है यदि हम अल्पसंख्य साम्प्रदायिकता के विरूद्ध नरम रूख अपनाते है तो बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता से सफलता–पूर्वक लड़ना असंभव हो जाएगा।

साम्प्रदायिकता के रूप

साम्प्रदायिकता के प्रकारों की बात करे तो आज हमें साम्प्रदायिकता कई रूप में दिखाई देती है।

हिन्दू सम्प्रदायवाद–भी अपने समुदाय के भीतर साम्प्रदायिकता की लड़ाई लड़ रहा है, विशेष रूप से अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जन–जातियों तथा दूसरे पिछड़े वर्गों, जो संविधान का सहारा पाकर काफी संख्या में आगे आ रहे है, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान में आरक्षण विरोधी आन्दोलन इसी बात के प्रतीक है।

मुस्लिम सम्प्रदायवाद–यह भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्य समुदाय है, उसके नेता पृथक प्रतिनिधित्व, विशेषाधिकार, नौकरियों आदि में विशेषाधिकारों की अनुसूचित जातियों के नमूने के आधार पर मांग कर रहे है, कई बार इसे पाकिस्तान तथा अरब देशों से नैतिक तथा भौतिक समर्थन प्राप्त होता है।

अपने ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि के कारण कभी–कभी वह बड़ा भयानक प्रतीत होता है।

ईसाई सम्प्रदायवाद–यह मूलरूप में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक स्तर पर दिखाई देता है तथा सरकारी सेवाओं में अपना प्रभाव बनाये हुए है।

अपने संगठित रूप से धर्मान्तरण नीति को अपनाने के कारण भारत के कई राज्यों में रहने वाली आदिम जातियों एवं निम्न वर्गों को यह ईसायत में धर्मान्तरित करता जा रहा है। यह क्षेत्र एवं राज्य विशेषतः मिजोरम, नागालैण्ड, केरल, बस्तर तथा छोटा नागपुर, गोवा आदि है।[17]

सिक्ख सम्प्रदायवाद–इसके कई रूप–रंग है जो साधारण मांगों के साथ–साथ पृथक खालिस्तान राज्य की स्थापना चाहते है इनका देश की कुल जनसंख्या का 1.7 प्रतिशत है (यानि 2.08 करोड़) इनमें से उग्रवादी सभी राजनीतिक युक्तियों का सहारा ले रहे है तथा उग्रवादी निर्दोष हिन्दुओं एवं उनसे सहानुभूति रखने वाले सिक्खों को मारकर सम्प्रदायवाद फैला रहे है। उनका उद्देश्य हिन्दुओं को पंजाब से भगाना तथा खालिस्तान की स्थापना करना है।[18]

अन्य सम्प्रदाय–अन्य सम्प्रदाय भी है जो अल्पसंख्य के रूप में जाने जाते है। जैसे– बौद्ध, जैन तथा अन्य सम्प्रदाय जिनकी संख्या क्रमशः 0.84 करोड़ (0.7 प्रतिशत) 0.45 करोड़ (0.4 प्रतिशत) 0.79 करोड़ (0.7 प्रतिशत) है। ये सम्प्रदाय भी समय–समय पर अपनी मांगों को लेकर उग्र रूप में दिखाई देते हैं।

इस प्रकार साम्प्रदायिकता के इन पाँच प्रमुख आधारों में सबसे अधिक कट्टर, विनाशकारी एवं अपरिवर्तनीय रूप जाति एवं प्रजाति से उत्पन्न होता है क्योंकि उसका स्वरूप अधिकांशतः जीवशास्त्रीय, भौतिक, बाह्य, हिंसात्मक है।

इसके बाद भाषायी सम्प्रदायवाद आता है जो प्रायः सामाजिक एवं अर्थव्यवस्था से जुड़ा हुआ होता है तथा व्यवहार में राजनैतिक रूप धारण कर लेता है जिसका परिणाम भाषायी आधार पर पृथक राज्यों की मांग के रूप में दिखाई देता है। यही से एक और रूप क्षेत्रीय सम्प्रदायवाद के रूप में मुखर होता जा रहा है इसी के साथ 'भूमि पुत्र की धारणा' का जन्म हुआ। इसका ज्वलंत रूप हमें महाराष्ट्र में देखने को मिला।[19]

किन्तु जब धार्मिकता से हटकर धर्म सम्प्रदायवाद का रूप धारण कर लेता है और वह जाति एवं प्रजाति सम्प्रदायवाद अथवा भाषायी व क्षेत्रीय सम्प्रदायवाद को अपनाकर भौतिकवादी हो जाता है तथा अपने आपको राजनीतिक, सामाजिक तथा अर्थव्यवस्था से जोड़ लेता है तो उसके समक्ष संसार की कोई भी शक्ति नहीं टिक सकती।

भारत में अल्पसंख्य की अवधारणा सापेक्ष अथवा सम्बन्धात्मक है क्योंकि अल्पसंख्य होने के कुल मिलाकर तीन आधार माने गये है–1. धार्मिक, 2. भाषायी, 3. जनसंख्यात्मक एवं क्षेत्रीय[20]

भाषायी अल्पसंख्यों का आधार मुख्यतः भाषा को माना गया है। संविधान की आठवी अनुसूची में 14 भाषाओं को मान्यता दी गई है परन्तु वर्तमान में 22 भाषाओं को मान्यता मिल चुकी है। इसका प्रमुख कारण समय–समय पर भाषा के आधार पर होने वाले आन्दोलन है।

संविधान की धारा 30 में भी राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार अल्पसंख्यों की शैक्षणिक, सामाजिक तथा अन्य किसी भी प्रकार की संस्थाओं पर कोई नियम लागू नहीं कर सकती जो कि विधानमण्डल तथा संसद में विधिवत स्वीकार किये गये हैं।

भारतीय संविधान की धारा 29 व 30 का लक्ष्य है कि लिपि व भाषा पर आधारित अल्पसंख्य परिस्थितियों व अन्य किसी दबाव से अपनी भाषा, संस्कृति व लिपि छोड़ने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अल्पसंख्य को संरक्षण देने का मूल आधार ही यह है कि राजनीतिक दृष्टि से कमजोर समूहों को उनकी संस्कृति बहुसंख्यों से बचाया जाये। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने अल्पसंख्यों के लिए राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता बतायी थी।[21]

अम्बेडकर ने अल्पसंख्यकों के संरक्षण की आवश्यकता को संस्थापक दृष्टि से ही नहीं बल्कि दूसरे सत्ता तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण माना ताकि वे आर्थिक, राजनीतिक दबावों में आकर सांस्कृतिक अधीनता को प्राप्त नहीं हो जाए। इस प्रकार सम्पूर्ण जनसंख्या का 50 प्रतिशत से कम होना अल्पसंख्यक कहना उचित नहीं होगा।[22]

भारत में अल्पसंख्यकों की यथास्थिति तो यह है कि यहाँ अल्पसंख्य व बहुसंख्य देश के विभिन्न भागों में निवास करते है तथा संख्यात्मक बहुसंख्य को प्रभुत्व और सत्ता से जोड़ दिया जाता है जबकि अल्पसंख्यों के उनके समाज, प्रशासन और राजनीति में प्रभाव रखते हुए भी अनदेखा कर दिया जाता है। भारत में बहुसंख्य हिन्दू समुदाय अनेकानेक अल्पसंख्यकों के समूहों के समान है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए तो भारत में आन्तरिक दृष्टि से कोई भाषा व कोई एक संस्कृति भी नहीं है। इन विभिन्नताओं को बतलाकर कोई समुदाय अपने आप को अल्पसंख्य कहने लगे तथा अपने को दूसरों से

श्रेष्ठ मानना प्रारम्भ कर दें और इस प्रकार धार्मिक प्रभुत्व को समुदाय विशेष की संख्यात्मक शक्ति से जोड़ने की बजाय राजनीतिक शक्ति से जोड़ दिया जाता है और यही कारण है कि राजनीतिक दृष्टि से जागरूक सभी धार्मिक अल्पसंख्य धार्मिक अधिकारों के बजाय राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा की मांग करने लगे है जिससे वे राजनीतिक लाभों को प्राप्त करने हेतु किसी क्षेत्र विशेष में कम संख्या में होने के कारण वे राज्य से समान एवं अनुकूल सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अपनी पृथक पहचान बनाये रखना चाहते है।[23]

ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन की जड़े मजबूत करने तथा स्थायित्व प्रदान करने हेतु भारत के विभाजन के उद्देश्य से अल्पसंख्य, बहुसंख्य का खुलकर बार–बार प्रयोग करना प्रारम्भ किया यही नहीं बल्कि उन्होंने हिन्दू–मुसलमान, सिक्ख आदि सभी धार्मिक समूहों तथा उनके अन्दर भी विभिन्न वर्गों, धर्मों, उपधर्मों, जातियों, उपजातियों, सांस्कृतिक समूहों आदि को उभारना शुरू कर दिया।[24]

सर्वप्रथम ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों के विरूद्ध हिन्दुओं को प्राथमिकता दी परन्तु 1909 में मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर मुसलमानों को हिन्दुओं के विरूद्ध कर दिया तथा इस नीति की सफलता देख कर अन्य अल्पसंख्य वर्गों को भी शामिल कर इस खाई को गहरा कर दिया। (जैसे–1919 व 1935 के भारत शासन अधिनियम के तहत देखा जा सकता है।)

मुस्लिम नेता जो पहले हिन्दू–मुस्लिम एकता व राष्ट्रीयता के समर्थक थे धीरे–धीरे कांग्रेस से अलग होकर राष्ट्रवादी से पृथक्तावादी बन गये जिसका परिणाम 1947 में भारत–पाकिस्तान विभाजन के रूप में सामने आया। आज तक यह समस्या विघटन के रूप में उभर रही है।[25]

कुछ वर्षों में भारत की साम्प्रदायिकता की समस्या के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है क्योंकि ये साम्प्रदायिक दंगे कुछ विशेष शहरी क्षेत्र तक सीमित थे परन्तु अब ये साम्प्रदायिकता की भावना ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंच गई है तथा इससे साम्प्रदायिक भावना को क्षति पहुँचाई है।

राजस्थान के संदर्भ में अल्पसंख्य व बहुसंख्य समस्या को देखे तो इसका विशेष प्रभाव यहाँ नहीं पड़ा परन्तु राजस्थान के एकीकरण से भारत में मिलने के बाद यहाँ साम्प्रदायिकता की समस्या उभरने लगी। पहले राजस्थान साम्प्रदायिक दंगों से मुक्त शांत क्षेत्र माना जाता था परन्तु अब आये दिन यहाँ भी साम्प्रदायिक हिंसा दंगे होते रहते है। पाली जिले के जैतारण में, नाथद्वारा में जातिय दंगों, उदयपुर की घटना, अभी हाल में जयपुर, भरतपुर (गोपालगढ़) की घटना इसके ज्वलंत उदाहरण है जिससे देश की एकता व अखण्डता में गिरावट आई है।

वर्तमान समय में राजस्थान में साम्प्रदायिकता की समस्या के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। अब से पूर्व तक साम्प्रदायिक दंगे कुछ शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित थे, परन्तु अब साम्प्रदायिकता की भावना धीरे–धीरे कस्बों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँच गई है।

संदर्भ सूची

1. खान, रशीउद्दीन; "माईनॉरिटी सेगमेन्ट इन इण्डिया पॉलिटी", इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, (सितम्बर 2, 1978), पृ.सं. 570.
2. बघवा, के.के.; "माईनॉरिटी सेकगार्ड इन इण्डिया", न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, (1979), पृ.सं. 3–4.
3. मिल, जॉन स्टूअर्ट; "रिप्रेजेन्टेटिव गर्वमेन्ट", लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (1947), पृ.सं. 18.
4. कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1998), पृ.सं. 241–253.
5. वैगल एण्ड हैरीसन; "माईनरिटीज इन दी न्यू वर्ल्ड, सिक्ख केस स्टेडिज", न्यूयॉर्क, कोलिम्बया यूनिवर्सिटी प्रेस, (1958), पृ.सं. 347.
6. लेपोन्स, जे.ए.; "दी प्रोटेक्शन ऑफ माईनॉरिटीज", बेकली, यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफोर्निया प्रेस, (1960), पृ.सं. 7.
7. कोठारी, रजनी; "भारत में राजनीति", मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, (1979), पृ. सं. 129.
8. जैन, पी.एम.; "सेफगार्डस टू माईनॉरिटीज कान्सटीट्यूशनल प्रिंसीपल पॉलीसीज एण्ड फ्रेमवर्क इन.एम. इमाम माईनॉरिटीज एण्ड दी लॉ", न्यू दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 20–21.
9. पीरजादा, सैयद; "सोल्यूशन ऑफ पाकिस्तान", लाहौर, पेंग्विन बुक हाऊस, (1963), पृ.सं. 18.
10. दीक्षित, प्रभा; "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 41.
11. आजाद, मौलाना; "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली, ओरियन्ट लोगमैन, प्रेस, (1958), पृ.सं. 131.

12. कृष्णा, के.वी.; "द प्रोब्लम ऑफ माईनॉरिटीज", दिल्ली, स्टकलिंग प्रेस, (1969), पृ.सं. 31.
13. माथुर, पी.सी.; "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिपिन्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 131.
14. कोठारी, रजनी; "पॉलिटिकल सिस्टम", बम्बई, अलीइ पब्लिशर्स, (1979) पृ.सं. 57–58.
15. श्रीनिवास, एम.एन.; "आधुनिक भारत में जातिवाद", भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987), पृ.सं. 159.
16. पीरजादा, सैयद; "सोल्यूशन ऑफ पाकिस्तान", लाहौर पेंग्विन बुक हाऊस, (1963), पृ.सं. 18.
17. वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", दी इण्डिया जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज, (दिसम्बर 11, 1987), पृ.सं. 23–24.
18. रूश्दी, सलमान; "द सेटेनिक वसैज", इण्डिया टूडे, (जून, 1989), पृ.सं. 67–68.
19. माथुर, वी.वाई.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इंडिया", न्यू दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिशिंग (1972), पृ.सं. 58.
20. पुताम्बेकर; "दी सेक्यूलर स्टैट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949), पृ. सं. 60–67.
21. तैय्यब, बहरूद्दीन; "दी सैल्फ इन सेक्यूलरिज्म, नई दिल्ली, ओरियन्ट लोंगमैन पब्लिशिंग लिमिटेड, (1972), पृ.सं. 88.
22. कश्यप, सुभाष; "दल बदल और राज्यों की राजनीति", मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, (1970), पृ.सं. 112.
23. नारायण, प्रकाश; "अपना राजस्थान", जयपुर, पिंकसिटी पब्लिशर्स, (1988), पृ.सं. 159.

24. गाँधी, एम.के.; "दी वे ऑफ कम्यूनल हॉरमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958), पृ.सं. 69–70.

25. वर्मा, एस.एल.; "राजनीति विज्ञान में अनुसंधान–प्रतिनिधि", जयपुर, हिन्द ग्रंथ अकादमी, (1980), पृ.सं. 80.

अध्याय–तृतीय

साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया, मापन एवं शोध उपकरण

अध्याय–तृतीय

साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया, मापन एवं शोध उपकरण

प्रथम अध्याय में साम्प्रदायिकता की व्याख्या, स्वरूपों तथा साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया के बारे में बताने का प्रयास किया गया है तथा साम्प्रदायिकता की विचारधारा को भी वर्णित किया है।

दूसरे अध्याय में अल्पसंख्य एवं बहुसंख्य के विषय में परम्परागत एवं यथार्थ स्थितियों का विश्लेषण किया गया है तथा दूसरे शब्दों में, परम्परागत धारणा के अनुसार, हिन्दू बहुसंख्य तथा मुसलमान, सिक्ख आदि अल्पसंख्य है, किन्तु वास्तविक दृष्टि से हिन्दू अनेक वर्ग उपवर्ग, जाति–प्रजाति, उपजाति, भाषा–उपभाषा आदि में बंटे हुये होने के कारण 'अनेक अल्पसंख्यो का समूह' है। उन्हें स्थानीय दृष्टि से तथा विभिन्न आधारों से किसी एक आधार विशेष की दृष्टि से सापेक्षता से ही 'अल्पसंख्या या बहुसंख्या' कहा जा सकता है। परन्तु विशेष कारणों तथा स्वार्थो के आधार पर विरोधापूर्ण आधारों पर अल्पसंख्य–बहुसंख्य धारणाओं को फैलाया जाता है। ऐसे प्रयासों से ही साम्प्रदायिकता फैलती है तथा भारत में ज्यों–ज्यों धर्म निरपेक्षता पर जोर दिया गया है, त्यों–त्यों साम्प्रदायिकता आगे बढ़ी है।[1]

भारत में साम्प्रदायिकता को आनुभाविक आधार पर परिभाषित नही करने के कारण यह शैक्षिक जगत में अनेकार्थक अवधारणाऐं तथा व्यावहारिक राजनीति में राजनीतिज्ञों के अस्त्र बनकर रह गयी। प्रत्येक एक–दूसरे को सम्प्रदायवादी कहने से नही हिचकाते है। राजस्थान सरकार प्रगतिशील धर्म सुधारको के विरूद्ध बोहरा समुदाय के कट्टरपंथी धर्मगुरूओं को समर्थन देती

है तथा नाथद्वारा के मंदिरों में हरिजनों को प्रवेश कराने का दायित्व अपने हाथों में लेती है।[2]

इसलिए आनुभाविक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि साम्प्रदायिकता की अवधारणाओं को स्पष्ट करने, उनके स्वरूपों को समझने तथा उनसे सम्बन्धित प्रक्रियाओं का विवेचन करना आवश्यक है। ऐसा करने के लिए एक शोधमापन (Measuring scale) विकसित किया जाना चाहिए, जिसके आधार पर यह बताया जा सके कि विभिन्न राजनीतिक दलों, समूहों, गांवो, शहरों अथवा राज्यों में साम्प्रदायिकता की स्थिति क्या है, साम्प्रदायिकता का कौनसा प्रकार है तथा उसकी मात्रा, तीव्रता तथा घनत्व का फैलाव कितना है ऐसा करके उनके कारणों का पता लगाया जा सकता है।[3]

साम्प्रदायिकता के इन रूपों का पता लगाने के लिए केवल धर्म केन्द्रित साम्प्रदायिकता का संकुचित स्वरूप ही ध्यान में नही रखा जाये, बल्कि उसके अतित एवं वर्तमान के व्यापक स्वरूप को आधार बनाया जाये।

साम्प्रदायिकता का समग्र स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके पश्चात् हुये राजनीतिक विकास को ध्यान में रखना उपयोगी है। सम्प्रदायवाद का विशेष स्वरूप भी कालान्तर में रूपान्तरिक हो जाता है। प्रारम्भ में मुस्लिम लीग रक्षात्मक ढंग से अल्पसंख्य अधिकारों के लिए लड़ती दिखायी दी, किन्तु बाद में वह पूरी तरह से भारतीय राजनीति में आक्रमक हो गयी, 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक प्राप्त सफलताओं के बाद मुस्लिम साम्प्रदायिकता अप्रभावी हो गई जबकि ईसाई सम्प्रदायवाद ने जो कि प्रारम्भ में उग्र एवं आक्रमक थी, परिस्थितियों से समझौता कर लिया। विभाजन से पूर्व भारत में विधमान सम्प्रदायवाद संसार में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों से सर्वाधिक सफल कहा जा सकता है।[4]

भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व तथा बाद में पाया जाने वाला सम्प्रदायवाद मुख्यतः धर्म तथा धार्मिकता या धर्मत्व के ईद–गिर्द प्रचलित था। साम्प्रदायिकता विपिन चन्द्रा के अनुसार मूलतः ''झूठी चेतना'' पर आधारित पायी जाती है, जो भारत में स्वतन्त्र होने के पश्चात् काफी मात्रा में दिखायी दी गई। स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिक शक्ति निहित स्वार्थों में अधिक जुड़ी दिखाई दी। भारत में साम्प्रदायिक आन्दोलनों एवं दंगों से जुड़े हुए नेता अधिकतर भौतिकवादी तथा धार्मिक कम पाये जाते हैं। लेकिन उनके साधन कार्य पद्धति एवं शैलियाँ लगभग समान है। सम्प्रदायवाद की संरचनाओं में भी केवल मात्र का ही परिवर्तन हुआ लगता है, क्योंकि हिन्दू एवं मुसलमानों को विभाजित करने वाली परिस्थितियाँ अब भी बनी हुयी है। क्योंकि स्वतन्त्रता से पूर्व मुस्लिम सम्प्रदायवाद प्रभावी था, किन्तु अब उसका स्थान हिन्दू सम्प्रदायवाद ने ले लिया है।

वर्तमान भारत में राजनीतिक दलों को केवल पाँच वर्ष के लिए सत्ता प्राप्त करना है, जिसे वे प्रायः साम्प्रदायिक तत्वों पर आधारित वोट बैंक के द्वारा प्राप्त करते है। यही कारण है कि भारत एक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बन जाने के बाद भी लगभग सभी समुदायों में सम्प्रदायवाद फल–फूल रहा है।[5] पंजाब में सिक्ख सम्प्रदायवाद है तो जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र के कुछ भागों में मुस्लिम सम्प्रदायवाद हावी है। भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में तथा बस्तर, छोटा नागपुर व केरल में ईसाई सम्प्रदायवाद दिखाई पड़ता है। हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दू सम्प्रदायवाद का न्यूनाधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया बहुल समाज की उत्पति तथा उसकी प्रक्रिया का रूप है। धार्मिक संदर्भ को छोड़कर भारत का कोई भी सम्प्रदाय बहुत अधिक सुदृढ़ समुदाय के रूप में, जो समान आर्थिक, राजनीतिक तथा

सांस्कृतिक हितों के लिये हुये धार्मिक आधार पर ही गठित पाया जाता है, क्योंकि बड़े समुदाय प्रायः इस प्रकार संगठित नही हो सकते है। हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख समुदाय न केवल सामाजिक परिस्थिति, भाषा, सांस्कृतिक तथा रीति रिवाजों के आधारों पर बंटे हुये है, बल्कि धार्मिक मामलों में भी वे भिन्न है। राजनीति में दिखायी देने वाला साम्प्रदायिक विभेद उतना अधिक वास्तविक नहीं है, जितना की अन्य आधारों पर भारतीय जनता का वास्तविक विभेद।

धार्मिकता अथवा धर्मत्व अपने आप में साम्प्रदायिकता का स्त्रोत नही होती, केवल राजनीतिक स्तर पर ही धार्मिकता सम्प्रदायवाद के उदय का कारण बनती है। धार्मिकता अथवा धर्मत्व दूसरे धर्मों अथवा धार्मिक समुदायों के अस्तित्व को स्वीकार करने में कोई बाधा नही मानता, किन्तु धार्मिकता जब राजनीतिक स्तर पर स्थित हो जाती है तो वह धर्म को राजनीतिक, आर्थिक मामलों तथा सामाजिक जीवन से पृथक नहीं कर पाती, ऐसी धार्मिकता धर्म को सांसारिक लाभों से जोड़ देती है, किन्तु व्यवहार में वह क्रमशः धर्म के वास्तविक लक्ष्यों से परे होती जाती है।[6]

सम्प्रदायवादी नेता अपने सहधर्मियों के समान सम्बोधन, मूल्य, लक्ष्यों आदि के आधार पर विशेष कार्य करने तथा निर्दिष्ट दिशा में जाने की प्रेरणा प्रदान करते है। आम जनता धीरे–धीरे उनके साम्प्रदायिक प्रभाव में आ जाती है तथा ''झूठे शत्रुओं'' से लड़ने के लिए तैयार हो जाती है। जनता को उनकी विविध समस्याओं एवं असमर्थता के सहारे उनकी दुरावस्था के कारण को दूसरे कारण में रूपान्तरित किया जा सकता है। यह कार्य मध्यवर्गीय नेतृत्व द्वारा किया जाता है। इन दिशाओं में किया गया प्रभाव धीरे–धीरे उनके शांतिपूर्ण सहअस्तित्व एवं सामंजस्य को भंग करता हुआ उनको एक दूसरे से अलग कर देता है।

साम्प्रदायिकता की अवस्थाएँ

प्रथम अवस्था में, कुछ समय तक इन सम्प्रदायों के सदस्य साथ–साथ रहते हैं किन्तु कालान्तर में उनके दूसरे समुदायों से अलगाव हो जाता है और वे अपने ही समुदाय के लोगों के साथ विशिष्ट क्षेत्रों में रहने लगते है। उनके मन में दूसरे सम्प्रदायों के प्रति भय, घृणा तथा हीनता का भाव भर जाता है। यही से धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता का प्रादुर्भाव होता है।

द्वितीय अवस्था में, जब अलगाव उत्पन्न हो जाता है तो सम्प्रदायवादी अपने आप को अधिक से अधिक सुरक्षित करने का प्रयास करते है। समूहों के प्रति प्रभावपूर्ण निष्ठाएँ, अभाव वाली अर्थव्यवस्था में, अनिवार्य रूप से समूह के मध्य प्रतिद्वन्द्विता एवं संघर्ष को जन्म देती है।

सम्प्रदायवाद प्रायः नये–पुराने मध्यवर्गीय नेताओं द्वारा अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति के लिए पनपाया जाता है नेता वास्तव में अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए (विशेष प्रतिनिधित्व, भारी मतदान, आरक्षण आदि के रूप में) अतिवादी मांग करने लगते है तथा इनके लिए अनेक संगठन व संस्थाएँ बनाते है।

तृतीय अवस्था में, ऐसी विचारधारा, लक्ष्य, पद्वतियों, शैलियों एवं रणनीतियों को अपनाते है कि मानव को उनके ऐसे धर्म रक्षा प्रयत्नों के द्वारा लाभ हो रहा हो। इससे धार्मिक कट्टरता बढ़ती जाती है और उधर वे झूठ–सच, छल–बल आदि सभी औछी हरकतों से साम्प्रदायिकता की ओर बढ़ जाते है। ऐसी अवस्था में साम्प्रदायिक घृणा बढ़ती जाती है।[7]

चौथी अवस्था जब साम्प्रदायिक संघर्षो के लिए राजनीतिक दलों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठनों के द्वारा जनता को तैयार कर लिया जाता है, तो छोटे–छोटे मामलों पर झगड़े किये जाते है तथा लोगों की

धार्मिक भावनाओं को भड़काया जाता है। ये कार्य असामाजिक तत्वों द्वारा किया जाता है। ऐसे में शासक दल अन्य सम्प्रदाय हिंसा, हत्याकाण्ड, आगजनी आदि से बचने के लिए इन साम्प्रदायिक तत्वों से बातचीत समझौता आदि करने के लिए विवश हो जाते है। परन्तु वे अपनी साम्प्रदायिक शक्ति को प्रभावी बनाये रखने के लिए समझौता करने के बाद भी बायकाट, बहिष्कार, प्रदर्शन आदि करते रहते है।

पाँचवीं अवस्था में निरपराध लोगों की हत्याएँ की जाने लगती है, ऐसे दंगों में असामाजिक लोग भाग लेते है और इनका शिकार प्रायः गरीब एवं निचले तबके के लोग होते है। प्रारम्भ में दंगे यत्र–तत्र और कभी–कभी होते है, किन्तु बाद में आम राजनीतिक का एक भाग बन जाते हैं, इनके मूल स्त्रोत मध्य एवं उच्च वर्गों के हाथों में साम्प्रदायिक तत्वों का नियन्त्रण खिसक जाता है।

छठीं अवस्था का नया रूप पंजाब की हिसात्मक राजनीति में प्रकट हुआ है। यह एक नये प्रकार का पूर्वाभासित सम्प्रदायवाद है, जिसके द्वारा कट्टर धर्मान्ध लोगो के द्वारा धार्मिक स्थानों पर किशोर एवं युवाओं को लोगों की हत्या करने वाले दलों के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है ये हत्या दल डाका डालते है बम फैंकते है, रेल की पट्रियों को उखाडते है तथा निरपराध लोगों को गोली का शिकार बना देते है, ताकि प्रताडित धर्मो के लोग भड़के और साम्प्रदायिकता फैलायें।

सांतवीं अवस्था में कभी–कभी सम्प्रदायवादी पड़ौस अथवा दूर के शत्रु राष्ट्रों से आर्थिक एवं शस्त्र सहायता तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने लग जाते है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में सम्प्रदायवाद को ऐसी विदेशी सहायता और समर्थन

प्राप्त नही था, किन्तु वर्तमान समय में यह सम्प्रदायवाद बाहर से धन एवं अस्त्र–शस्त्र, प्रशिक्षण आदि प्राप्त कर रहा है।

आठवीं अवस्था में, सम्प्रदायवाद प्रभावी बन जाने पर स्थायी रूप से सत्ता व शक्ति प्राप्त करने की दिशा में सोचने लगता है। वह अपने आपको ''पृथक राष्ट्रीयता'' के बजाय ''पृथक राष्ट्र'' बताने लगता है, जिसका उद्देश्य अन्ततोगत्वा स्वतंत्र राज्य का निर्माण करना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यापक तैयारियाँ की जानी लगती है। ऐसे सम्प्रदायवादी लोग मानसिक रूप से अपने देश तथा लोगों से दूर हो जाते है। उसके बाद उन्हें पुनः एकता की दिशा की ओर नहीं मोड़ा जा सकता है।

नवीं अवस्था में वे अपने लक्ष्य में हिंसा एवं साम्प्रदायिक दंगों के माध्मय से खुले एवं गुप्त रूप से जुड़ जाते है। परिणामस्वरूप गृह–युद्व की स्थिति आरम्भ हो जाती है इसके व्यापक रूप से फैल जाने के कारण राज्य रोकने मे सफल नही हो पाते है। अतः इसे रोकने हेतु अंत में राजनैतिक समझौता करके देश का पूर्ण या अधूरा बटवारा करना पडता है।

अन्तिम **दसवीं अवस्था** में, साम्प्रदायिकता एक पृथक सम्प्रदाय राज्य अथवा धर्मतन्त्र के रूप में दिखाई देती है जिसमें वैसी ही समस्या बनी रहती है। इस अवस्था में विभाजन से पूर्व वाली समस्या दिखायी पड़ती थी इन नये धर्मतन्त्रों में जो पहले अल्पसंख्य थे, अब बहुसंख्य बन जाते है तथा बचे–खुचे अल्पसंख्यों पर अत्याचार करने लग जाते है। इन अल्पसंख्यों के पास कोई सुरक्षा नही होती और वे द्वितीय श्रेणी के नागरिक माने जाते थे। इनके पास इनके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह जाता, कि वे अपना धर्म परिवर्तन कर लें या उस देश को छोड़कर अन्यत्र चले जाये।[8]

वर्तमान साम्प्रदायिकता की वीभत्स स्वरूप देखे तो साम्प्रदायिकता भाषा, जाति, प्रजाति, धर्म आदि अनेक आधारों पर टिकी हुई है, किन्तु यहाँ धर्म से जुड़ी साम्प्रदायिकता को ही मुख्य विषय माना गया है। पहले दंगे प्रायः एक क्षेत्र या एक शहर के मुहल्ले तक सीमित रहते थे। उनके जनक मूलतः समाज में धार्मिक व्यक्ति एवं सस्थाएँ न होकर व्यक्तिगत द्वेष, दो सम्प्रदायों के धंधे की प्रतिस्पर्धा, सामंतीय भावना रहती थी। वे अनायास फूट पडने वाले हुआ करते थे। जो कि राज्य सत्ता के सक्षम हस्तक्षेप के बाद वे शांत हो जाते थे और उपद्रव ग्रस्त क्षेत्र में जीवन फिर से लौट आता था परन्तु अब तो डर लगता है कि अगर किसी ने साम्प्रदायिकता के विरूद्ध कुछ बोला तो उसी सम्प्रदाय के लोग उसे ठिकाने लगा देंगे। क्योंकि धर्मो के बढ़ते हुए कट्टरतावाद ने साम्प्रदायिकता के फैलाव और साम्प्रदायिक उन्माद के प्रभाव क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन कर दिया गया है। सम्प्रदायवाद के इन बढ़ते हुये रूपों अथवा अवस्थाओं के रूप में दिखाया गया है। सम्प्रदायवाद के विभिन्न रूपों को देखकर उन्हें इन बिन्दुओं अथवा अवस्थाओं के स्तरों के आस–पास रखा जा सकता है। सम्प्रदायवाद का स्वरूप और अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित अवस्थाओं में न्यूनीकरण करके विशिष्ट किया जा सकता है।

साम्प्रदायिकता के प्रकार

1. **गर्भस्थ सम्प्रदायवाद**–इस अवस्था में सम्प्रदायवाद का लोगो, सरकारों और राजनेताओं को पता नहीं पड़ता और वे अधिक चिन्तित नहीं होते। इसके बीज धर्म तथा धार्मिकता के आधार पर काफी लम्बे समय से डाल दिये जाते है, जिसे कानून, नियम व प्रशासन उसे सहन करते हैं, क्योंकि उस पर धर्म का मुखौटा लगा होता है।

2. **प्रारम्भिक सम्प्रदायवाद**–इस अवस्था में सम्प्रदायवाद मुख्यतः राजनैतिक स्तर पर कार्य करता है, राजनीतिक नेता ऐसे सम्प्रदायवाद के साथ उसकी कुछ मांगो को स्वीकार करके चाहे वे राज्य विरोधी ही क्यों न हो समझौता कर लेते हैं। तुष्टिकरण, मिलीभगत तथा सहयोग की नीति अपनायी जाती है, इस अवस्था तक राज्य भी निष्क्रिय बना रहता है और कोई कार्यवाही नहीं करता है।

3. **पृथक्तावादी सम्प्रदायवाद**–यह अवस्था देश को खण्ड–खण्ड हो जाने से बचाये रखती है, किन्तु साम्प्रदायिकता और भी अधिक प्रोत्साहित होकर पृथक राज्य का रूप लेने लगती है और जिसमें राज्य को सेना के हाथों में सौंप दिया जाता है।[9]

साम्प्रदायिकता के मापन के लिए जो अवस्थाऐं प्रस्तावित की गयी हैं, उसमें साम्प्रदायिकता के विकास या ह्रास को मापा जा सकता है। साम्प्रदायिकता में भी घटत या बढ़त होती रहती है। भारत में विभिन्न समुदायों में पाये जाने वाले सम्प्रदायवाद को संख्या के आधार पर अल्पसंख्यक सम्प्रदायवाद तथा बहुसंख्य सम्प्रदायवाद के रूप में ही देखा जाता है।

इस प्रकार साम्प्रदायिकता मानव जीवन के सामाजिक जीवन की दिशा में प्रचलित समाजी प्रक्रिया है, जो अलगाव, पृथकता, धर्म, धार्मिकता, अल्पसंख्य और बहुसंख्य समुदाय एवं पृथक राज्य विरोधी प्रक्रिया है, जो समाज, राज्य एवं राष्ट्र को अविकाशीलता की ओर ले जाती है। इसलिए इस अध्ययन के द्वारा साम्प्रदायिकता यथार्थ बोध कराने के लिए उपर्युक्त अवधारणाओं, शोध उपकरणों का चयन तथा उपयोग आवश्यक माना गया है।

प्रस्तुत शोध गवेषणा प्रधान है। इसके लिए उपलब्ध साहित्य एवं पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त उन

व्यक्तियों से अनौपचारिक साक्षात्कार किये गये हैं, जिन्हें प्रस्तुत विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान, अभिरूचि, अनुभव होने की सम्भावना थी। अध्ययन विषय के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति हेतु प्रश्नावली को प्रमुख आधार बनाया गया है, और यह भी निश्चित किया गया है कि अपनी कमियों को दूर करने के लिए सीमित मात्रा में सहभागी अवलोकन को भी अपनाया जायेगा।

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के लिये निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राथमिकता प्रदान की है–

शोध के उद्देश्य

- साम्प्रदायिकता का समग्रस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके पश्चात हुये राजनीतिक विकास को ध्यान में रखना उपयोगी है। उससे पता चलता है कि सम्प्रदायवाद का विशेष स्वरूप भी कालान्तर में रूपान्तरित होता जा रहा है। प्रारम्भ में मुस्लिम लीग रक्षात्मक ढंग से अल्पसंख्यक अधिकारों के लिए लड़ती हुई दिखाई दी, किन्तु बाद में वह भारतीय राजनीति में आक्रामक हो गई।
- स्वतंत्रता से पूर्व तथा बाद में भारत में पाया जाने वाला सम्प्रदायवाद मुख्यतः धर्म तथा धार्मिकता तथा धर्मत्व के इर्द–गीर्द प्रचलित था। परन्तु बदलती परिस्थितियों में हिन्दू सम्प्रदायवाद ने मुस्लिम सम्प्रदायवाद का स्थान ले लिया है। वास्तविक दृष्टि से हिन्दू अनेक जाति–उपजाति, वर्ग–उपवर्ग, भाषा–उपभाषा आदि में बंट जाने के कारण ''अनेक अल्पसंख्यकों का समूह'' मात्र बन गया है।
- इन सब की जानकारी प्राप्त करके प्रस्तुत शोध अध्याय में साम्प्रदायिक समस्या का अवलोकन कर उद्देश्यों का निर्धारण करना है। जिससे शोध को सार्थकता प्रदान की जा सके तथा समकालीन साम्प्रदायिक समस्या

का निदान हेतु प्रयास किये जा सके इसके लिए शोध के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

1. साम्प्रदायिकता के प्रत्यय को अन्तर विषयात्मक दृष्टि से समझना,
2. साम्प्रदायिकता की समस्या को भारत में तथा विशेषतः राजस्थान के संदर्भ में उसके ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से विवेचित करना,
3. साम्प्रदायिकता तथा समसामयिक राजनीति के पारस्परिक समीकरणों को विवेचित करना,
4. साम्प्रदायिकता की समस्या के निवारण हेतु किये गये सांविधिक तथा कानूनी उपायों को विश्लेषित करना,
5. सम्प्रदायवाद की समस्या के निकारण हेतु कार्यरत प्रशासनिक तंत्र को रेखांकित करना,
6. साम्प्रदायिक दंगो के दौरान हुई राष्ट्रीय क्षति का आकलन करना तथा इस कार्य हेतु कैमरे की आंख से देखे गये सत्यों का विश्लेषण कर यथास्थिति की विवेचना करना।

साहित्यावलोकन

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था लोकतंत्र अथवा समाज मनुष्यों की सामूहिक चेतना का पुंज होती है। यह सामूहिक चेतना किसी सामान्य इच्छा, इतिहास द्वारा निर्धारित होती है। सम्प्रदायवाद की जड़ साम्प्रदायिकता में पायी जाती है। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी भावनाऐं व क्रियाकलाप आ जाते है जिनमें किसी भाषा, धर्म अथवा जाति के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाता है। इन सब के बारे में विस्तृत विवेचना विभिन्न विद्वानों के द्वारा लिखित लेख, साहित्य में की गई है जो हमारे शोध अध्ययन में सहायक सामग्री के रूप में सहायक होती है।

1. निम्नलिखित पुस्तक में लेखिका ने साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं ऐतिहासिक परिपेक्ष्य प्रस्तुत करते हुए उद्‌गम, विकास और वर्तमान स्थिति का विवेचन किया है। इस पुस्तक में लेखिका ने साम्प्रदायिकता के कारण और परिणाम को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दीक्षित, प्रभा : "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन प्रेस, (1990)

2. निम्नलिखित पुस्तक के माध्यम से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि राष्ट्रीय एकीकरण में साम्प्रदायिकता प्रमुख समस्या है तथा राष्ट्रीय विकास में आने वाली चुनौतियों का विश्लेषात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इस बिन्दु पर प्रकाश डाला है कि साम्प्रदायिकता एक चुनौती के रूप में राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधा है।

सारस्वत, आनंद प्रकाश : "साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीय एकीकरण", सत्य एण्ड सन्स, अंसारी रोड, नई दिल्ली, प्रकाशन, (1991)

3. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक द्वारा भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है तथा भारतीय राजनीति को जातिवाद ने किस प्रकार प्रभावित किया है का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। जाति की भूमिका भारतीय राजनीति में किस प्रकार अपना प्रभाव बढ़ाकर एक चुनौति के रूप में सम्मुख खड़ी हो गई है। इस विचारणीय तथ्य को उजागर किया है।

कोठारी, रजनीः ''कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स'' ओरियन्टल लोगमैन लिमिटेड, नई दिल्ली, (1970)

4. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने वर्तमान समय में बढ़ती हुई साम्प्रदायिक समस्या एवं आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता के भयावह प्रभाव को समझाने का प्रयास किया है।

चन्द्रा, विपिन "कम्यूनलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया", विकास पब्लिकेशिंग हाऊस, नई दिल्ली, (1984)

5. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक द्वारा भारतीय संदर्भ में साम्प्रदायिकता को प्रमुख समस्या के रूप में विश्लेषित करते हुए राष्ट्रीय एकीकरण एवं विकास में बाधा को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त लेखक द्वारा यह बताने का प्रयास किया गया है कि साम्प्रदायिकता प्रमुख चुनौति का रूप लेती जा रही है।

वर्मा, एस.एल. ''प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया' दी इण्डियन जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज, दिसम्बर, (1987)

6. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देने एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास करने तथा अल्पसंख्य–बहुसंख्य समस्या का विवेचन करते हुए साम्प्रदायिक सद्भावना के स्वरूप, तत्व, मापन व शोध उपकरण प्रतिमानों की खोज का विस्तृत विवेचन किया है एवं साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ाने वाले तत्वों को स्पष्ट रूप से समझाया है।

सिंह, करण, "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राष्ट्रीय चेतना", रूपा पब्लिशर्स, तिलक नगर, जयपुर (1992)

7. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने संवैधानिक सरकार का स्वरूप एवं विशेषताओं का वर्णन करते हुए भारत में सरकार का प्रारूप, प्रशासनिक ढाँचे

का विवेचन किया है। साथ ही लेखक द्वारा सरकार के कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

पायली, एम.वी. ''कान्सटीट्यूशनल गर्वमेनट इन इण्डिया'' बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाऊस (1977)

8. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने 'साम्प्रदायिक सद्‌भाव' के मार्ग में आने वाली चुनौतियों का वर्णन करते हुए इन सबके बीच सद्‌भावना को बढ़ावा देने वाले तत्वों का विवेचन किया है। लेखक ने साम्प्रदायिक सद्‌भावना किस राष्ट्र निर्माण की आवश्यक शर्त बताया है।

अब्बास, सैयद, अहत "साम्प्रदायिक सद्‌भावना" लखनऊ युनिवर्सिटी प्रेस (1963)

9. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने समकालीन समय में इस्लाम का महत्व व प्रासांगिकता का विस्तृत विवेचन किया है। लेखक ने साम्प्रदायिक सद्‌भावना किसी राष्ट्र निर्माण की आवश्यक शर्त बताया है।

अली असगर "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेन्स टू ऑवर ऐज" बम्बई इन्स्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टेडिज, (1984)

10. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक द्वारा भारत में जाति व वर्ग का उद्‌गम व विकास का विवेचन एवं भूमिका का विश्लेषण किया गया है। इसके अलावा लेखक ने जाति के बीच अन्य जाति का विकास और वर्ग के बीच वर्गों के उदय को समझाने का प्रयास किया है।

रणेदवे, बी.टी. ''जाति और वर्ग'', नई दिल्ली नेशनल बुक सेन्टर, (1983)

11. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने राजनीति विज्ञान में अनुसंधान/शोध में प्रयुक्त प्रविधियां एवं साधनों का प्रयोग करने की विधि का विवेचन किया है एवं लेखक ने अनुसंधान में प्रविधियों के उपयोग के महत्व को बताया है।

वर्मा, एस.एल. ''राजनीति विज्ञान में अनुसंधान प्रविधि'' जयपुर, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1980)

12. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने राजस्थान का प्राचीन इतिहास से लेकर एकीकरण का विस्तृत विवेचन किया है एवं राजस्थान का गौरव पूर्ण इतिहास की गाथाओं का उल्लेख करते हुए वर्तमान में राजस्थान के एकीकरण की अनिवार्य पर बल दिया।

शर्मा, गोपीनाथ ''राजस्थान का इतिहास'' दिल्ली, विकास पब्लिकेशन, (1983)

13. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने भारतीय शासन व्यवस्था तथा राजनीति के बारे में विस्तृत विवेचन करते हुए सरकार के रूप, प्रकार व प्रशासनिक व्यवस्था को प्रस्तुत किया है।

अरोड़ा एवं आनंद ''भारतीय शासन और राजनीति'' दिल्ली, सुल्तान चन्द्र संस, (1986)

14. निम्नलिखित पुस्तक में लेखक ने आधुनिक भारत में विचारधारा व राजनीति को स्पष्ट करते हुए साम्प्रदायिकता का अर्थ, समस्या व समाधान, मार्क्सवाद व संशोधन की आवश्यकता कृषिगत ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता एवं पंजाब में किसान आन्दोलन को स्पष्ट किया है।

चन्द्रा, विपन ''आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति'' नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड

15. इस पुस्तक में सामाजिक समस्याओं की अवधारणा, अपराध एवं जनसंख्या की समस्याऐं, गरीबी, अशिक्षा, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा, अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ एवं राष्ट्रीय एकीकरण, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद एवं क्षेत्रियतावाद आदि समस्याओं का वर्णन किया है।

नाटाणी प्रकाश "भारत में सामाजिक समस्याऐं, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2000

16. इस पुस्तक में साम्राज्यवाद के सिद्धान्त में औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत राष्ट्रीय विद्रोह, रियासतों में जनतान्त्रिक आन्दोलन में धर्मो व वर्गो की भूमिका उपनिवेशवाद के परिणाम और राष्ट्रवाद के उदय का विवेचन किया है।

राय सत्याएम, "भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद", हिन्दी–माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, दिल्ली, 2011

16. इस पुस्तक में लेखक ने राष्ट्रवाद का स्पष्ट विवेचन किया है। जिसमें भारतीय जीवन शैली की तुलना पाश्चात्य जीवन शैली से करते हुये कहा कि पाश्चात्य देशों में आर्थिक मापदण्ड के आधार पर ही व्यक्ति का विश्लेषण किया गया है, लेकिन भारत में मानव का विश्लेषण मानवीयता के मापदण्ड के आधार पर किया जाता है।

अवस्थी, ब्रह्मदत्त, राष्ट्रवाद, लोकहित प्रकाशन संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, 1992

17. लेखक ने बताया कि राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा का सुविचारित प्रयोग करते हैं और विशेषकर भय को अत्यधिक मात्रा में फैलाने का कृत्य करते हैं जो कि साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देता है। यह प्रकार साम्प्रदायिकता राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए हानिकारक सिद्ध होती है।

सहगल, विनोद : "भारतीय साम्प्रदायिकता" (2004)

18. लेखक ने साम्प्रदायिकता के द्वारा यह स्पष्ट किया कि किसी व्यक्ति स्थान समूह या देश विदेश के लिए जो सम्प्रदावादी या अलगाववादी है वे हिंसक या देशद्रोही है वहीं दूसरे व्यक्तियों समूह या देश के लिए देशभक्त या स्वतन्त्रता सेनानी की श्रेणी में आ सकते हैं। लेकिन जिन्दा या मुर्दा ये सम्प्रदायी किसी विशेष दृष्टिकोण वाले समूहों में घृणा के पात्र होते हैं।

गौड़, विरेन्द्र कुमार : "साम्प्रदायिकता" (2004)

19. हॉफमेन द्वारा रचित पुस्तक में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद एवं साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित मुख्य ऐतिहासिक परिवर्तनों को स्पष्ट उजागर किया है। उन्होंने राजनीतिक साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरपन के लिए अभिप्रेरित करने वाले कारकों को स्पष्टतः परिभाषित किया है तथा धार्मिक साम्प्रदायिकता के उत्पत्ति के कारणों की विवेचना की है।

हॉफमेन : "इनसाइड टेरेरिज्म ब्रस" (2008)

19. असगर अली इन्जीनियर, को जो बोहरा समुदाय के प्रगतिशील धर्मसुधारक विचारक है, उन्हीं के समुदाय के धर्मगुरू के एजेन्टों द्वारा उनको निर्दयतापूर्वक पीटा गया, तथा उन पर प्राणघातक हमले किये गये।

20. जवाहरलाल नेहरू से लेकर राहुल गाँधी तक कांग्रेस, जनसंघ व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को साम्प्रदायिक कहती आयी है, जबकि उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने भारत को विभाजन करने वाली मुस्लिम–लीग तथा अकालियों से बार–बार समझौते किये है। यह कहना कठिन है कि कौन अधिक सम्प्रदायवादी और कौन कम है।

असगर अली इन्जिनीयर (इलेस्ट्रेड वीकली) अप्रेल, 15–1984

अतः उक्त शोध विषय पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं, इसलिए उपर्युक्त साहित्यों के अध्ययनों का उपयोग लिया गया है और मुख्यतयाः वास्तविक अध्ययन के लिए अनुसूची एवं सहअवलोकन के द्वारा अध्ययन को तथ्यात्मकता की दिशा में रखा गया है।

शोध प्राकल्पना

भारत एक विविधता वाला देश है जहाँ विभिन्न धर्म, भाषा, संस्कृति, नस्ल के लोग निवास करते हैं। कई बार धर्म, भाषा, संस्कृति और नस्ल के आधार पर विभिन्न सम्प्रदायों में तनाव उत्पन्न हो जाता है जो हिंसात्मक कार्यवाही का रूप धारण कर लेता है जिससे विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य वैमनस्यता व्याप्त हो जाती है, जो राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए चुनौती उत्पन्न करती है। इन सबसे बचने के लिए संविधान द्वारा विभिन्न उपबन्धों में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को समाहित किया। ये सब होते हुए भी समय–समय पर साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं। ये साम्प्रदायिक दंगे जन–जीवन को अशांत व अस्त–व्यस्त कर देते हैं। इन साम्प्रदायिक दंगों के पीछे कौन–कौनसे कारण विद्यमान है यह दक्ष प्रश्न हैं। इन सबको देखकर मुझे यह जानने के लिए विवश व आकृष्ट होना पड़ा कि सम्प्रदायवाद के कारण क्या है किन

परिस्थितियों में ये भीषण दंगो का रूप लेते है और साम्प्रदायिकता के इन खतरो से किस प्रकार बचा जा सकता है।

मुझे साम्प्रदायिकता के इस बदलते हुए रूप ने भी सोचने पर विवश किया कि प्रारम्भ में जो सम्प्रदायवाद था वह दो सम्प्रदायों के मध्य था। जैसे–हिन्दु–मुस्लिम, हिन्दू–सिक्ख, हिन्दू–ईसाइ। लेकिन आज एक ही सम्प्रदाय की विभिन्न जातियों के मध्य हिंसात्मक दंगे हो रहे है जो साम्प्रदायिकता का बदलता हुआ रूप है। अतः यह निश्चित हो गया कि मुझे साम्प्रदायिकता की अवांछनीय और अस्थायी घटनाओं को अपना अनुसंधान क्षेत्र बनाना चाहिए ताकि इस क्षेत्र में किया गया अनुसंधान समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी हो।

शोध का मापन/प्रविधि/उपकरण

प्रस्तुत शोध मध्ययन के मापन हेतु शोध प्रविधियों व उपकरणों का प्रयोग करते हुए इस शोध अध्ययन को विश्लेषात्मक तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जायेगा। किन्तु शोध प्रबन्ध के आकार समय एवं वित्तीय सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए ''राजस्थान में साम्प्रदायिक समस्या'' का अध्ययन जयपुर व भरतपुर जिलों के परिप्रेक्ष्य में किया जाएगा।

प्रारम्भ में सभी सम्प्रदायों के लोग साथ–साथ रहते हैं किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके बीच अलगाव की भावना उत्पन्न होने लगती है उनके मन में एक–दूसरे सम्प्रदाय के प्रति भय, घृणा तथा हीनता भरने लगती है ऐसे में प्रत्येक सम्प्रदाय अपने को सुरक्षित करने के प्रयत्न करने लगता है। इस प्रकार ये झूठ–छल, बल आदि सभी तरीको से साम्प्रदायिकता की ओर बढ़ने लगते हैं। निरपराध लोगों की हत्याएँ होने लगती है। साम्प्रदायिकता का रूप स्थायी तथा सत्ता व शक्ति प्राप्त करने की दिशा की ओर अग्रसर होता जाता है वे

अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु वैद्य व अवैद्य तरीकों तथा हिंसा व दंगो के माध्यम से गुप्त व खुले रूप में अंजाम देने लगते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिकता के बढ़ते स्वरूपों के रूप में मुखरित होने लगता है जैसे–गर्भस्थ सम्प्रदायवाद–प्रारम्भिक, सम्प्रदायवाद–पृथकतावादी सम्प्रदायवाद–ध्वन्सात्मक सम्प्रदायवाद और अंतिम अवस्था पृथक राज्य–सम्प्रदायवाद।

प्रस्तुत शोध गवेषण प्रधान है इसलिए साम्प्रदायिक समस्या का यथार्थ बोध करने या कराने हेतु शोध उपकरण व प्रविधियों का चयन कर उपयोग किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में उपलब्ध पुस्तकालय सामग्री, संदर्भ साहित्य, पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन को शामिल किया जा सकता है। स्थान (घटना स्थल) विशेष से सम्बन्धित व्यक्तियों के अनौपचारिक साक्षात्कार लिये जा सकते है इसके अलावा क्षेत्र विशेष के लोगों से प्रश्नावली के द्वारा सम्पर्क स्थापित कर समस्या के सम्बन्ध में स्त्रोतों का अर्जन करने का प्रयास किया जा सकता है।

इस शोध अध्ययन हेतु संस्तरित देव–निदर्शन पद्धति का प्रयोग करके समग्र को निर्धारित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में धर्म, जाति, भाषा आदि सम्प्रदाय से सम्बन्धित ''साम्प्रदायिक समस्या'' को ही केन्द्रीय विषय बनाया गया है इसलिए राजस्थान के दो शहरों के चयन कर अध्ययन के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के मोहल्लों व मतदाता सूची का सहारा लेकर सामान्य सूची बनाई जा सकती है। इससे सम्प्रदायों के समूह का अनुपात निर्धारित करके लॉटरी प्रणाली में दैव–निदर्शन का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रश्नावली विधि द्वारा प्रश्नावली तैयार की जा सकती है इसमें प्रश्नावली को चार भागों में बांटा जा सकता है।

1. परिचयात्मक
2. उद्देश्यों की जानकारी के लिए
3. विचार व अभिमत को बनाने वाले
4. सुझाव व निष्कर्षो से सम्बन्धित प्रश्न

इस प्रकार प्रश्नावली का चयनित उत्तरदाताओं से पूर्व सम्पर्क करके उनकी सुविधानुसार समय व स्थान का निर्देशन लिया जा सकता है।

इसके अलावा अनुसूचियाँ भी बनाई जा सकती है। अनुसूचि में प्रतिबन्धित व खुले दोनों प्रकार के प्रश्नों का समावेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शोधकर्ता द्वारा सम्बन्धित स्थान विशेष पर रहकर यथा स्थिति का अध्ययन कर शोध अध्ययन की त्रुटियों, कमियों को दूर किया जा सकता है इस प्रकार उपरोक्त विधियों को अपना कर अपने शोध को तार्किक, यथार्थ और उपयोगी बनाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शोधकर्ता ने ''साम्प्रदायिक समस्याओं की सेमीनारों तथा सम्मेलनों में उपस्थित होकर ''साम्प्रदायिकता'' विचार विमर्श, पत्र–पाठन, प्रश्नों एवं परिप्रश्नों को सुना एवं भाग लिया जिससे शोध कर्ता को विभिन्न विचारों को जानने का लाभ मिल सके। अगले अध्याय में इन सभी अनुसंधान प्रयासों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण किया जायेगा।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिजम इन इण्डिया", दी इण्डियन जनरल ऑफ पॉलीटिकल स्टेडिज, दिसम्बर 1887, पृ. 69–86.
2. सिंह, करण; "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", नई दिल्ली, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, (1992), पृ.सं. 22–30.
3. चन्द्रा, विपिन; "कम्युनलिज्म इन मॉर्डर्न इण्डिया", दिल्ली, विकास प्रकाशन (1984), पृ.सं. 69–74.
4. डूसाल्ट, लुईस; "कलेक्टेड पेपर्स इन इण्डियन सोसोयोलॉजी", पेरिस, मैकमिलन पब्लिशर्स, (1970), पृ.सं. 90–91.
5. स्मिथ, डब्ल्यू.सी.; "मॉडर्न इस्लाम इन इण्डिया", लाहौर, (1963), पृ. 203–204.
6. मिश्रा, बी.बी.; "दी इण्डियन मिडिल क्लासेज, पेपर ग्रोथ इन मॉर्डन टाइम्स", लंदन (1961), पृ. 90–91.
7. मेहता, बी.आर.; "आइडोलोजी मॉर्डनाइजेशन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन (1983), पृ. 71.
8. माथुर, वाई.बी.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", नई दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिकेशन, (1972), पृ.सं. 31–34.
9. पुंताम्बेकर; "दी सेक्यूलर स्टेट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिन्टिंग प्रेस (1949), पृ. 13–17

अध्याय–चतुर्थ

राजस्थान में 'साम्प्रदायिकता' के आयाम एवं संदर्भ

अध्याय – चतुर्थ

राजस्थान में 'साम्प्रदायिकता' के आयाम एवं संदर्भ

किसी भी सामाजिक–राजनीतिक यथार्थ की विशिष्ट दशाएं, आयाम तथा सन्दर्भ होते हैं। प्रत्येक राजनीतिक यथार्थ का विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में होता है। एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक यथार्थ का सम्बन्ध अनेक वर्गों और संगठनों से रहता है, तथा राजनीतिक दल, दबावसमूह, चुनाव तन्त्र, लोकमत, साम्प्रदायिक और गैर–साम्प्रदायिक गुट, बुद्धिजीवी, नौकरशाही आदि ये मिलकर देश विशेष की राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। राजनीतिक प्रक्रिया का सामाजिक ढांचें और मूल्यों को बदलने में बड़ा हाथ होता है। राजनीतिक व्यवस्था जनता को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रेरित करती है।

वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक प्राचीन और विविधतापूर्ण समाज का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। भारतीय सामाजिक ढांचें में नीवन राजनीतिक संस्थाओं, मूल्यों और विचारों का प्रवेश हो रहा है। समाज के विविध वर्गों को राज–व्यवस्था में स्थान दिया जा रहा है। राजनीतिकरण की बढ़ती हुई प्रवृति के कारण अब तक जो गांव, समाज, वर्ग और सम्प्रदाय राजनीतिक व्यवस्था से दूर रहे हैं, वे भी वर्तमान में इसके निकट आ रहे हैं। 'भारतीय राज–व्यवस्था' का अभिप्राय है शासन का स्वरूप, नीति–निर्माण, राजकार्यों में जनता की हिस्सेदारी, मूल्य संरचनाऐं आदि। राज–व्यवस्था न तो पदों का विन्यास होता है और न कोरा संवैधानिक कानून। किसी संविधान और राजनीतिक व्यवस्था में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। संविधान की विशेषताऐं राज–व्यवस्था को न केवल प्रभावित करती हैं, अपितु उसे

औपचारिक आधार भी प्रदान करती हैं, जिससे व्यवस्थित परिवर्तन भी सम्भव तथा साकार होते हैं। भारतीय राज व्यवस्था की कतिपय विशेषताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

भारतीय राजव्यवस्था की विशेषताएँ

1. **प्रधानमंत्री व्यवस्था**–संविधान निर्माता भारत में संसदात्मक तंत्र की स्थापना करना चाहते थे, किन्तु धीरे–धीरे संसदात्मक व्यवस्था संवैधानिक प्रावधानों के उपरान्त भी प्रधानमंत्रीय व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी है। भारत में संसद की तुलना में प्रधानमंत्रीय सत्ता और राजनीति के मुख्य बिन्दु है।

2. **सिद्धान्ततः समाजवादी**–भारतीय संविधान को समाजवाद, साम्यवाद या पूंजीवाद जैसे किसी विशिष्ट राजनीतिक दर्शन का अनुयायी नहीं बनाया। वर्तमान भारत में सरकार पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा लोकतांत्रिक समाजवाद की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर है। जिसका लक्ष्य एक जातिविहीन, वर्गहीन समाज की स्थापना है जो लोकतन्त्रीय विचारधारा पर आधारित है, जिसमें वैयक्तिक गरिमा व सामाजिक न्याय अक्षुण रहे।

3. **पूंजीवादी अर्थतन्त्र**–ब्रिटिश शासन के अपने हितों के कारण भारत में परम्परागत सामन्तवादी व्यवस्था के स्थान पर एक नयी व्यवस्था की स्थापना हुई। नयी आर्थिक व्यवस्था ने नये सामाजिक एवं राजनीतिक ढांचे को जन्म दिया। इन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सम्बन्धों ने भारत में विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनों को जन्म दिया और नई राजनीतिक चेतना का विकास किया। इस राजनीतिक चेतना के कारण भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों ने साम्राज्यवादी विरोधी आन्दोलनों में भाग लिया फिर भी भारत का नेतृत्व वर्तमान में पूंजीवादी वर्ग के हाथों में पहुंच गया।

4. धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था–संविधान में ''धर्मनिरपेक्ष'' शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है लेकिन धर्मनिरपेक्षता भारतीय राज–व्यवयस्था की मुख्य विशेषता बन गयी है। राजनीति में हिस्सा लेने का आधार धर्म नहीं हैं और न ही धर्म के आधार पर शासन में ही कोई भेदभाव किया जाता है। अल्पसंख्यक समुदाय का व्यक्ति राष्ट्र के बड़े से बड़े पद को धारण कर सकता है।

5. लोकतन्त्रात्मक शासन–भारतीय राज–व्यवस्था का शासन–सूत्र जनता के हाथ में है। बहुमत के आधार पर चुने हुये जनता के प्रतिनिधि संसद एवं मंत्रीमण्डल के माध्यम से शासन चलाते हैं। भारत में राजनीतिक शक्ति पर किसी वर्ग, जाति या धर्म विशेष का एकाधिकार नहीं है। यहाँ वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है और सभी लोगों को आत्मविकास के समान अवसर उपलब्ध कराये गये हैं।

6. नौकरशाही पर निर्भरता–भारतीय राज–व्यवस्था को बनाये रखने में प्रशासन तंत्र का बड़ा हाथ है। राजनीतिक परिवर्तन के समय नौकरशाही देश को स्थिरता प्रदान करती है। राजनीतिक नेताओं को उच्चस्तरीय नीति निर्माण में नौकरशाही का विशिष्ट परामर्श प्राप्त होता है।

भारतीय राज व्यवस्था में अनेक प्रकार के दबाव समूह भी क्रियाशील हैं। परम्परावादी समूह जैसे जाति, सम्प्रदाय, धर्म, क्षेत्रीयता आदि राजनीति को अपने नये परिवेश में प्रभावित कर रहे हैं। राजनीतिक दलों के संगठनों और चुनावों में इन पुरातन संस्थाओं का प्रभाव दृष्टव्य है। जातिगत गुटों का भारतीय राजनीति में ''बेताज का बदशाह'' माना गया है। भारतीय राजव्यवस्था को प्रभावित करने वाले तत्व देश की विशालता, प्राचीनता, जाति, भाषा, धर्म संस्कृतिगत विविधता आदि तत्व है।

भारत में अब नयी समाज व्यवस्था का निर्माण हो रहा है। पुरातन व्यवस्था, जिसमें प्रत्येक जाति या समूह के कार्य, अधिकार या मान–मर्यादा निश्चित थी, वो नष्ट हो गयी और उसके बजाय हजारों लाखों समूहों व समुदायों को सरकार, चुनाव, राजनीतिक दल और शासन के अधिकारी वर्ग में शामिल होने का मौका मिला है। गांवों का एकाकीपन या राष्ट्रीय जीवन से अलगाव दूर हुआ है।

7. केन्द्राधीन संघ–व्यवस्था–भारतीय संविधान का बहिरंग संघात्मक है, परन्तु अन्तरंग एकात्मक। संविधान में भारत को ''राज्यों का संघ'' कहा गया है और संविधान में जहां कुछ संघवाद के मान्य लक्षण पाये जाते हैं, वहां एकात्मक राज्य के लक्ष्णों का प्रभुत्त्व भी जहां–तहां दिखता है। भारतीय संविधान में लगभग वे सभी विशेषताऐं पायी जाती हैं जो कि एक संघात्मक संविधान में पायी जाती हैं। जिसमें संघीय सरकार तथा राज्य सरकारों में एक लिखित संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन किया गया है, जिसमें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार दोनों अपने–अपने क्षेत्र में एक दूसरे से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती है।

राजस्थान सरकार की शक्ति का स्त्रोत भी संविधान है। संविधान की धारा 354 के अनुसार राजस्थान सरकार द्वारा निर्मित कानून न्यायपालिका द्वारा संविधान विरोधी अथवा असंवैधानिक घोषित कर रद्द किया जा सकता है। प्रत्येक सरकारी संस्था तथा अधिकारी संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का ही प्रयोग करते हैं। संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों में सत्ता का विभाजन होता है। संविधान के अध्याय ग्यारह में धारा 249, 250, 252 तथा 254 के अन्तर्गत केन्द्र और राजस्थान राज्य के मध्य शक्तियों का विभाजन किया गया है। केन्द्र सरकार राजस्थान राज्य में शक्तियों के विभाजन एवं राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों में हस्तक्षेप नहीं करती है।

राजस्थान राज्य का गठन–

राजस्थान का निर्माण विभिन्न रियासतों और ठिकानों से मिलकर हुआ है। भारत की स्वाधीनता से पूर्व राजस्थान में 18 रियासतें, 2 ठिकानों तथा अजमेर–मेवाड़ अंग्रेज शासित प्रदेश थे। उस समय इस सम्पूर्ण राजस्थान को राजपूताना कहा जाता था। राजस्थान का गठन छः चरणों में किया गया था–

पहला चरण–मत्स्य संघ–अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली के तत्कालीन राजाओं ने 18 मार्च 1948 को मत्स्य संघ का गठन किया। जिसमें अलवर एवं धौलपुर के महाराज प्रमुख बने।

द्वितीय चरण–राजस्थान संघ–बांसवाड़ा, बूंदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, व टोंक की रियासत तथा कुशलगढ़ ठिकाने को मिलाकर राजस्थान संघ का निर्माण किया। इसका उद्घाटन 25 मार्च, 1948 को हुआ। कोटा के महाराव इसके राज प्रमुख बने।

तृतीय चरण–संयुक्त राजस्थान–राजस्थान संघ में मेवाड़ के सम्मिलित हो जाने पर इसे 'संयुक्त राजस्थान' का नाम दिया गया, इसकी राजधानी उदयपुर तथा इसके राजप्रमुख उदयपुर महाराणा को बनाया गया। 18 अप्रैल, 1948 को इसका उद्घाटन हुआ।

चतुर्थ चरण–विशाल राजस्थान–संयुक्त राजस्थान में बीकानेर, जयपुर, जोधपुर व जैसलमेर के सम्मिलित हो जाने पर 30 मार्च, 1949 को संयुक्त राजस्थान का नाम 'विशाल राजस्थान' कर दिया गया। उदयपुर के महाराणा इसके महाराज प्रमुख, जयपुर के महाराजा राजप्रमुख तथा कोटा के महाराव उपराजप्रमुख बनाये गये। पंडित हीरालाल शास्त्री इसके मुख्यमंत्री बनाये गये।

पंचम चरण–संयुक्त विशाल राजस्थान–10 अप्रैल, 1949 को मत्स्य संघ के विलय विशाल राजस्थान में हो जाने पर विशाल राजस्थान का नाम 'संयुक्त विशाल राजस्थान' रखा गया।

षष्ठम चरण–राजस्थान–राज्य पुनर्गठन आयोग कि सिफारिश पर अजमेर, मेवाड़ को संयुक्त विशाल राजस्थान में मिला दिया गया। इसके साथ ही आबू तहसील एवं मंदसौर जिले का एक क्षेत्र सुनेलटप्पा का विलय भी राजस्थान संघ में हुआ तथा दूसरी और कोटा का सिंरोज क्षेत्र मध्य–भारत में मिला दिया गया तथा राजस्थान संघ का नामकरण 'राजस्थान' किया गया। इस प्रकार 30 अप्रैल, 1949 को राजस्थान के रूप में राजस्थान की मौलिक एवं महत्वपूर्ण इकाई का स्थापना दिवस मनाया जाता है।

राजस्थान का भारत में महत्व–

राजस्थान गौरवपूर्ण इतिहास एवं परम्पराओं की वह वीर भूमि है, जहां की राजपूतानी और शौर्य की कीर्ति भारत में बेजोड़ है। पहाड़–पहाड़ियों पर निर्मित दुर्गम दुर्गों, प्रासादों, सुरम्य झीलों, गहन वनों, पहाड़ों एवं विस्तृत मन्न भूमि आदि प्रवृत्ति के विभिन्न रूपों में शृंगारित यहाँ की भूमि विश्व के लोगों का ध्यान अपनी और आकर्षित करती है। इसके साथ ही साहित्य के क्षेत्र में राजस्थान सबसे प्रसिद्ध रहा है।

भौगोलिक विशेषताएँ–

भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान एक विशाल राज्य है। यहाँ विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है। अत्यधिक उपजाऊ, समतल मैदान और पठारी व असमान क्षेत्र हैं तो 'थार' का रेगिस्तान भी है, जहां वर्षा बहुत कम होती है। अत्यधिक गर्म क्षेत्र हैं तो अत्यधिक ठंडे क्षेत्र भी हैं, फिर भी राजस्थान अरावली

पर्वत और रेतीले टीबों से सुसज्जित भौगोलिक इकाई है। यह प्रदेश 53.3^0 एवं 30.12^0 उत्तरी अंक्षाश तथा 60.30^0 एवं 78.17^0 पूर्वी देशान्तर के बीच अवस्थित है। पश्चिम–उत्तर में पाकिस्तान, उत्तर–पूर्व में पंजाब एवं हरियाणा, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण–पूर्व में मध्यप्रदेश तथा दक्षिण में गुजरात राज्यों से घिरा हुआ है। राजस्थान की आकृति विषमकोणीय चतुर्भुज के समान है। इसकी पूर्व से पश्चिम की लम्बाई 869 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण की लम्बाई 821 किलोमीटर है। यह 3,42,239 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल का प्रदेश है, जिसमें क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत के राज्यों में राजस्थान का द्वितीय स्थान है।

आर्थिक विशेषताएं–

राजस्थान में कृषि योग्य भूमि का अभाव है, क्योंकि इसका एक बड़ा भू–भाग थार का रेगिस्थान है, इसलिए इस भाग में रेतीली मिट्टी है जो अपने अन्दर पानी को सोख नहीं पाती। अतः यह कृषि के उपयोगी नहीं है।इसके अतिरिक्त राजस्थान में पानी का भी अभाव है, क्योंकि यहां वर्षा भी बहुत कम होती है। राजस्थान की तीन–चौथाई जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है। सरकार द्वारा सिंचाई के लिए विभिन्न परियोजनाऐं चलाई जाने से तथा बिजली के उत्पादन होने से कृषि क्षेत्रों में विकास किया जा रहा है।

राजस्थान औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा राज्य रहा हैं ऊर्जा शक्ति के अभाव में, संकुचित बाजार तथा यातायात के साधनों की कमी से राजस्थान का भारत के कुल औद्योगिक उत्पादन 0.5 प्रतिशत भाग था।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ–

राजस्थान में अनेक जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों तथा भाषाओं के लोग है। इनकी अपनी विविधता प्रतीत होती है। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी

धार्मिक सहिष्णुता यहां की विशेषता है। यहाँ लोगों की अधिकांश धार्मिक स्थलों के प्रति समान श्रद्धा रखते हैं, और इन धार्मिक स्थलों की यात्रा करते हैं। धार्मिक विश्वास प्रायः समान मान्यताओं पर आधारित है। राजस्थान में विभिन्न भाषाएं पायी जाती है। इनमें उर्दू को छोड़ कर प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत के समीप है। अनेक रीति–रिवाज, त्योहार आदि सभी लोग समान रूप से मानते है। जीवन दर्शन एवं विचारधाराओं की विभिन्नता होते हुये भी वे सामाजिक जीवन में एक दूसरे का सम्मान करते है।

राजनीतिक स्थिति–

राजस्थान में अनेक राजनैतिक दल है, जिनमें कांग्रेस (आई), भारतीय जनता पार्टी, जनता पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी, बहुजन समाजवादी पार्टी तथा जनता दल आदि प्रमुख है। इन सभी राजनीतिक दलों के अपने अलग–अलग संगठन एवं कार्यालय है। इन सभी राजनैतिक दलों में न्यूनाधिक मात्रा में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख तथा अन्य सभी धर्मों के लोग सम्मिलित है, लेकिन कुछ विशिष्ठ दलों में कुछ जातियों एवं धर्मो के लोग अधिक पाये जाते है। ये राजनैतिक दल जनता के बीच में प्रचार करते है और वोट प्राप्त करके निर्वाचित होते है।

राजनीतिक दलों का प्रादुर्भाव राजस्थान में मुख्यतः राजस्थान निर्माण के बाद की घटना है। राजाओं के काल में मुख्यतः इस सदी के तीसरे दशक से राजनीतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गयी थी। परन्तु नागौर, सीकर, झुन्झुनू जहाँ किसान सभा विशेष सक्रिय रही है, को छोड़कर शेष सम्पूर्ण राजस्थान में ये गतिविधियाँ शहरों और कस्बों तक सीमित थी। सामान्यतः ग्रामीण जनता जन–जागरण की ज्वार तरंगों से स्वतन्त्रता से पूर्वकाल में अछूती ही रही।[1]

इसके अलावा राजस्थान में सभी प्रमुख दल राष्ट्रीय दल रहे है तथा क्षेत्रीय दल पनप नही पाये है, यद्यपि उनके लिए माँग उठती रही है। इसके अतिरिक्त राजस्थान में दल व्यवस्था की विशेषता यही रही है कि राजस्थान निर्माण काल से ही यहाँ कांग्रेस और दक्षिणी पंथीदल राजनीति में प्रभावी रहे है। वामपंथी दलों के प्रभाव क्षेत्र यत्र–तत्र और स्थायी रहे हैं। वर्तमान में राजस्थान में कांग्रेस (आई) तथा भारतीय जनता पार्टी प्रमुख बड़े राजनीतिक दल है, जो शासन सत्ता में कार्यरत रहते है।[2]

भारतीय गणराज्य के प्रारम्भिक वर्षो में केवल भाषायी सीमाओं को राज्यों के गठन का आधार न मानने वाली कांग्रेस को बाद के वर्षों तथा वर्तमान में परिस्थितियों ने स्वतन्त्रता पूर्व की नीति पर लौटने को विवश करा दिया।[2] कांग्रेस राज्यों के कार्य क्षेत्र के बारे में वर्तमान संविधान व्यवस्था को पर्याप्त मानती है। भारतीय जनता पार्टी भी इस स्थिति को मौटेतोर पर स्वीकार करती है तथा द्विभाषायी आधार को यह दल जहाँ केन्द्र द्वारा निष्पक्ष और उदार दृष्टिकोण अपनाये जाने पर बल देते है। भारतीय जनता पार्टी कुछ संस्थागत युक्तियों की व्यवस्था पर बल देती है।[3]

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तदर्थ संविधान में संशोधन की उत्सुक है। कुछ अधिक प्रबल आग्रह के स्वरों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी राज्यों को अधिक स्वायतता दिये जाने के पक्ष में हैं। भारतीय जनता पार्टी में इस दृष्टि से सर्वाधिक परिवर्तन हुए है।

संघात्मक स्वरूप की जनमानस में प्रतिष्ठा के संदर्भ में विभिन्न राजनीतिक दल राष्ट्रीय परिपेक्ष्य के प्रति अधिक सचेष्ठ रहते है। इस कारण एकीकृत इकाई के रूप में राजस्थान के अपने 'तादातम्य' के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न राजनीतिक दलों की योजनाओं में स्थान नहीं पा सका है। विधायिका,

कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसी संस्थाओं की कार्यविधि के बारे में जनता को सूचित करने का कार्य राजनीतिक दलों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में ही अधिक सम्पादित किया जाता है।[4]

राजनीतिक विकल्पों के प्रस्तुतीकरण के ढंग पर भी लोकतंत्रवाद के जनसामान्य द्वारा अंगीकृत किये जाने का प्रकार निर्भर रहता है। राजस्थान में विभिन्न चुनावों के जो अध्ययन प्रकाशित हुऐ है, उनके आधार पर कतिपय निष्कर्ष इस प्रकार निकाले जा सकते है–

1. राजस्थान में चुनाव प्रचार मुख्यतः व्यक्ति अभिमुख होता रहता है। यह उग्रविचारधारा वाले दलों के लिए भी उतना ही सही है, जितना कि नरमविचारधारा वाले दलों के लिए।
2. प्रतिनिध्यात्मक शासन प्रणाली की कार्यविधि की जानकारी बहुत कम लोगों को होती है, क्योंकि 5 वर्ष की अवधि के उपरान्त भी आधे से अधिक मतदाता नहीं जानते कि उनके क्षेत्र से निर्वतमान विधायक और संसद सदस्य कौन है।
3. राजनीतिक दलों का जन–सम्पर्क अपने कार्यक्रमों और कार्यकर्त्ताओं के माध्यम से कम तथा स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों के माध्यम से अधिक होता है।
4. दलीय अभिमुखता के स्थान पर व्यक्ति का प्राधान्य इससे भी स्पष्ट होता है कि मतदाता एकबार में लोकसभा के लिए एक दल को और विधानसभा के लिए दूसरे दल को मत देते है।[5]

अन्तिम लोकतांन्त्रिक विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के बारे में जनजागृति की दिशा में किसी भी दल के विशेष प्रयास नहीं रहे है। प्रारम्भ के वर्षो में

पंचायतीराज को कांग्रेस ने विश्वास की वस्तु कहा था, लेकिन वर्तमान में यह स्थिति नही है क्योंकि अन्य दल भी अब कांग्रेस से अधिक सक्रिय हो रहे है।[6]

राजस्थान में साम्प्रदायिकता की स्थिति –

साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है और किसी हद तक राजनीतिक इस विचारधारा के चारों ओर संगठित है। यह स्पष्ट है कि इस तथ्य के बारे में अत्यन्त साधारण सा कथन प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसका अर्थ बहुत गहरा है। 'विचारधारा' शब्द का प्रयोग यहाँ उस अर्थ में नहीं किया जा रहा है जिस अर्थ में मार्क्स ने इसका प्रयोग किया था, यहाँ इसका अर्थ एक विचार प्रणाली है एक ऐसी विचार प्रणाली जो समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजव्यवस्था से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं पर आधारित है।[7]

साम्प्रदायिक समाज तथा राजनीति को देखने समझने का एक तरीका है। यदि ऐसा है तो इसके कुछ राजनैतिक तथा दूसरे परिणाम सामने आते है। वर्तमान में हम अपने चारों ओर साम्प्रदायिक विचारधारा के जिन तत्वों को देखते है, वे इस साम्प्रदायिक विचारधारा के पिछले सौ वर्षो से अधिक के अस्तित्व तथा प्रसार का परिणाम है। इसलिए आज की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अर्थों में इसकी व्याख्या करना सम्भव नहीं है और जैसा कि मार्क्स ने कहा था, अपने स्थायित्व के कारण यह अपने आप ही एक भौतिक शक्ति बन चुकी है।[8]

साम्प्रदायिकवादियों का मुख्य कार्य साम्प्रदायिक विचार प्रणाली अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करना है। सम्प्रदायवादी गतिविधि के दूसरे पहलू गौण है और उसी का अनुकरण करते है। हमें साम्प्रदायिकता को साम्प्रदायिक हिंसा, दंगे इत्यादि के साथ नही उलझना चाहिए। इसमें कोई संदेह नही है कि साम्प्रदायिक हिंसा को साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार के

एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है, यह भी सही है कि साम्प्रदायिक विचारधारा ही साम्प्रदायिक हिंसा की ओर ले जाती है। परन्तु किसी भी परिस्थिति में हमें दोनों को बराबर नही समझना चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार का परिणाम है। हिंसा का रूप धारण करने से पहले साम्प्रदायिक विचारधारा न केवल अपना अस्तित्व बनाए रखती है, बल्कि दशकों तक विकसित भी होती रह सकती है।[9]

जैसाकि 1830 के दशक में भारत में साम्प्रदायिकता की विचारधारा का प्रसार एक हल्के ढंग से किया गया था, परन्तु 1870 तथा 1880 दशकों में वह एक सुव्यवस्थित विचारधारा के रूप में उभर कर सामने आई। एक अथवा दो स्थानों पर छोटी–मोटी हिंसक झड़पों, जैसे पूना और कलकत्ता को छोड़कर भारत में साम्प्रदायिक हिंसा एक शक्ति केवल 1920 के दशक में बन पायी। इसी प्रकार 1939 से 1945 तक, दूसरे महायुद्ध के दौरान व्यावहारिक रूप में साम्प्रदायिक हिंसा का कोई अस्तित्व नहीं था, फिर भी निश्चित रूप से यही वह समय था, जब भारत में बड़ी तेजी से हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिखों में साम्प्रदायिकता विकसित हो रही थी। पंजाब इस समस्या का एक बहुत अच्छा उदाहरण है।[10]

साम्प्रदायिक विचारधारा तथा साम्प्रदायिक हिंसा में अन्तर किया जाना चाहिए क्योंकि उनके राज्य से अलग ढंग के सम्बन्ध होते है। साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए तात्कालिक राजनैतिक तथा प्रशासनिक कार्यवाही की आवश्यकता होती है। सम्भवतः इसके लिए शांति यात्राओं, शांति कमेटियो तथा इसी प्रकार दूसरी बातों की आवश्यकता होती है। जब साम्प्रदायिक हिंसा फैलती है तब वैचारिक संघर्ष का बहुत कम महत्व रह जाता है। साम्प्रदायिक विचारधारा से लड़ने के लिए एक लम्बे संघर्ष की आवश्यकता होती है।[11]

जैसाकि पहले कहा गया है एक बार जब साम्प्रदायिक विचारधारा एक लम्बे समय तक अपने पैर जमाये रहती है तो वह एक भौतिक शक्ति बन जाती है, इसलिए इसका मुकाबला भी बडा ही सावधानी से किया जाना चाहिए। 1947 के पश्चात् भी बहुत से लोगों का विश्वास था कि आर्थिक विकास अथवा शिक्षा के प्रसार के साथ ही साम्प्रदायिक विचारधारा लुप्त हो जायेगी, लेकिन तथ्य यह है कि साम्प्रदायिक विचारधारा स्पष्ट रूप में उभर आए, तो इसके विरूद्ध सचेत साम्प्रदायिकता विरोधी वैचारिक संघर्ष छेड़ना आवश्यक हो जाता है। चाहे आप दूसरे कोई कदम उठाएं, साम्प्रदायिकता समाप्त नही होगी।

इस सम्बन्ध में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि वह साम्प्रदायिक विचारधारा को बढ़ावा दे सकता है या फिर उसके विरूद्ध वैचारिक संघर्ष का समर्थन कर सकता है, अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा के मुकाबले में कमजोर साबित हो सकता है। इसलिए साम्प्रदायिक विचारधारा भी बहुत से साम्प्रदायिक तत्वों से मिलकर बनती है। यह तथ्य किसी विचारधारा के सम्बन्ध में सही है कि वे साम्प्रदायिक तत्व विशेष रूप से जब वे एक लम्बी अवधि तक एक समाज में रहें है तो वे हम में से अधिकांश लोगों में मौजूद रहते है।[12]

इसलिए यह सोचना गलत होगा कि केवल एक अथवा थोड़े से साम्प्रदायिक तत्व साम्प्रदायिक विचारधारा के बराबर होते है। जिन्हें हम धार्मिकता और रूढ़िवाद कहते है, वे भी साम्प्रदायिकता जैसी नहीं होते। जब एक विशेष साम्प्रदायिक तत्वों को एक विशेष तरीके से जोड़ दिया है अथवा संगठित कर दिया जाता है। तभी एक सम्पूर्ण साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म होता है।

वर्तमान के वर्षो में बहुत से मध्यवर्गीय व्यक्ति जो पहले धर्मनिरपेक्ष थे, हिन्दू साम्प्रदायिक नारों से प्रभावित हो रहे है। जनवरी–फरवरी, 1978 में प्रचारित किया जा रहा है कि एक मुस्लिम अपने आप को मुस्लिम कहता है और वह सम्माननीय है, एक सिख अपने आपकों सिख कहता है और वह सम्माननीय है, परन्तु जब एक हिन्दू अपने आप को हिन्दू कहता है तो उस पर सम्प्रदायवादी की छाप लगा दी जाती है। यह दृष्टिकोण एक पूर्व प्रचलित धारणा पर आधारित है और अब इसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

साम्प्रदायिकता तथा अवसरवाद में भेद करना आवश्यक है। इसका उस तरीके से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है जिससे साम्प्रदायिकता विकसित की जा रही है और भारतीय राज्य के ढांचे को प्रभावित करने लगी है। साम्प्रदायिक विचारधारा पर आधारित साम्प्रदायिक दलों तथा साम्प्रदायिकता के प्रति अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाने वाले धर्मनिरपेक्ष अथवा कमजोर धर्मनिरपेक्ष दलों में गहरा अन्तर है।

जवाहर लाल नेहरू के लिए यह मानना था कि वे मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में मुस्लिम तथा 'ब्राह्मण–प्रमुख' वाले क्षेत्रों में ब्राह्मण उम्मीदवारों को खड़ा करते थे, इसलिए वे भी सम्प्रदायवादी अथवा जातिवादी माने जाते थे और वे लोग भी सम्प्रदायवादी अथवा जातिवादी है जो ऐसा करते है। वास्तविकता यह है कि यह केवल चुनावी अवसरवाद है, लेकिन अवसरवाद के रूप में ही न कि साम्प्रदायिकता के रूप में। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अवसरवाद सभी राजनैतिक दलों में पाया जाता है, जिनमें वामपंथी दल भी सम्मिलित है।[13]

साम्प्रदायिकता तथा राज्य सत्ता की समस्या एक महत्त्वपूर्ण है साम्प्रदायिक दलों तथा गुटों को राज्य सत्ता के निकट नहीं आने देना चाहिए,

क्योंकि राज्य सत्ता, उनका पुलिस तथा अफसरशाही पर नियन्त्रण हो जाता है, लेकिन वर्तमान में राजसत्ता का अर्थ है शिक्षा पर नियन्त्रण, उसका अर्थ है समाचार पत्रों पर नियन्त्रण तथा वैचारिक राज्य उपकरणों पर नियन्त्रण।

वास्तव में राज्य सत्ता पर नियन्त्रण रखने वाले सम्प्रदायवादी कुछ समय तक हिंसा को प्रोत्साहित नहीं होने देते है। वे हिंसा को बढ़ावा भी नहीं देते है और ऊपरी सतह पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जहाँ सम्प्रदायवादियों का शासन है वहाँ साम्प्रदायिक दंगे तथा साम्प्रदायिक हिंसा कम होती है, साम्प्रदायिक हिंसा केवल कांग्रेस शासित अथवा जनता दल शासित राज्यों में ही होती है और इसलिए भारतीय जनता पार्टी नहीं बल्कि कांग्रेस साम्प्रदायिक है। क्योंकि हिंसा साम्प्रदायिकता का लक्ष्य नहीं है।[14] सम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक हिंसा के स्तर को कम करते है और विभिन्न उपायों द्वारा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करते हुए साम्प्रदायिक हिंसा के विरूद्ध कार्यवाही भी कर सकते है। सम्प्रदायवादी सामूहिक हत्याकाण्डों और नजरबंदी शिविरों का सहारा न लेकर स्वय को केवल साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार तक ही सीमित रखते है। इसका एक कारण यह भी है कि साम्प्रदायिकता अभी तक भारतीयों के मन पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकी है। जहाँ भी पिछले साठ सत्तर वर्षो में साम्प्रदायिक दलों ने चुनाव जीते है, वे जानते है कि जिन लोगों ने उन्हें वोट दिये है, उन्होंने अभी तक एक व्यापक पैमाने पर साम्प्रदायिक विचारधारा को नहीं अपनाया है। इसलिए भारतीय जनता अभी भी बुनियादी तौर पर धर्मनिरपेक्ष है।

सामाजिकता का सम्बन्ध किसी प्रकार भी राष्ट्रवाद से न तो था और न हीं है। यह राष्ट्रवाद के एक विकल्प के रूप में उत्पन्न हुई और कार्य करती रही। जैसाकि इण्डोनेशिया और बहुत से पश्चिमी एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी

देशों में हुआ, भारत में साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद के विरोध के रूप में विकसित हुई और इसमें साम्राज्यवाद विरोधी विषय–वस्तु का अभाव था।[15]

साम्प्रदायिकता जन–चेतना का प्रतिबिम्ब भी नहीं थी। सम्पूर्ण मध्यकालीन युग में विशेष रूप से गांवों में, सामान्य व्यक्ति एक जैसा सामाजिक जीवन व्यतीत करते थे, उनकी समान संस्कृति थी, जो वर्तमान में भी है। लोकप्रिय धर्मो के स्तर पर भी उनकी आस्थाऐं तथा आचरण समान थे, क्योंकि लोकप्रिय धर्म अत्यन्त उदार थे। पंजाब में उत्पन्न हुई उग्र हिन्दू तथा सिख साम्प्रदायिकता से यह स्पष्ट हो गया था निश्चित रूप से, हिन्दूओं तथा सिखों में पारस्परिक विरोध की कोई लोक भावना नहीं थी।[16]

वास्तव में, लोक चेतना साम्प्रदायिक प्रचार के रास्ते में एक मुख्य बाधा रही है और इसी के कारण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरों के अधिकांश भागों में अभी तक साम्प्रदायिक हिंसा नहीं फैली है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के अधिकांश भागों में साम्प्रदायिकता की जड़े अधिक गहरी क्यों नहीं है तथा अपनी वर्तमान शक्ति को प्राप्त करने में उसे इतना अधिक समय क्यों लगा जबकि साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में हो गया था।

साम्प्रदायिक दंगे तथा साम्प्रदायिक हिंसा दूसरे रूप समाज और राजनीति के सम्प्रदायिकरण की केवल एक ठोस संयुक्त अभिव्यक्ति है। साम्प्रदायिक विचारधारा धार्मिक आधार पर राजनीति मनोवैज्ञानिक, विभेदीकरण, अलगाव तथा प्रतिस्पर्धा की ओर ले जाती है। वह कभी न कभी, पारस्परिक भय तथा घृणा की ओर तथा अंत में हिंसा की ओर ले जाती है। एक बार जब साम्प्रदायिकता धार्मिक आधार पर राजनीति का विभाजन कर देती है तब साम्प्रदायिक संघर्ष केवल एक साधारण–सी बात हो जाती है। प्रत्येक

साम्प्रदायिक दंगे के पीछे एक शक्तिशाली सामूहिक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होती है। साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में देखने का एक प्रमुख लाभ है। तब हमें सम्प्रदायवादियों में ही 'नरमपंथी' तथा 'कट्टरपंथी' नजर आते है। उनमें ही हम साम्प्रदायिकता के प्रचारकों तथा घृणा और हिंसा अभियानों के संगठनकर्त्ताओं को भी देख सकते है। इस प्रकार हम उग्रवाद तथा हिंसा की विभिन्न श्रेणियों में भी भेद कर सकते है।[17]

चूंकि साम्प्रदायिक हिंसा के कई कारण होते हैं और जिनकों तात्कालिक प्रशासनिक अथवा सामुदायिक कार्यवाही द्वारा रोका जा सकता है, इसलिए हिंसा के कारणों का एक मजबूत, सूक्ष्म व्यावहारिक आधार पर अध्ययन करना आवश्यक है। साम्प्रदायिकता तथा साम्प्रदायिक हिंसा, कुल मिलाकर एक समाज की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति के उत्पाद है। कई परिस्थितियाँ लोगों के लिए समस्याऐं उत्पन्न करती है जिन्हें समझने अथवा उनका समाधान करने में वे सक्षम नहीं होते। उनके मूल कारणों को समझे बिना लोग इन व्यक्तिगत तथा सामाजिक खतरों से उलझने का प्रयास करते है। इस प्रकार साम्प्रदायिकता एक वस्तुगत यथार्थ को प्रकट तो करती है परन्तु उसे एक विकृत ढंग से प्रदर्शित करती है। यह न तो सामाजिक स्थिति का सही आकलन करती है और न उसका उचित समाधान प्रस्तुत करती है।[18]

धर्म साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेदार नहीं होता है, न साम्प्रदायिकता धर्म से प्रेरित होती है और न ही धर्म साम्प्रदायिक राजनीति का एक उद्देश्य है–यद्यपि सम्प्रदायवादी धार्मिक मतभेदों को अपनी राजनीति का आधार बनाते है, धार्मिक पहचान को एक संगठनात्मक सिद्धान्त के रूप में प्रयोग करते है और साम्प्रदायिकता के इस दौर में सर्वसाधारण को लामबंद करने के लिए धर्म का प्रयोग करते है। धार्मिक मतभेदों और गैर धार्मिक सामाजिक आवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा संघर्षो को छुपाने के लिए प्रयोग करते है। धर्म ने धर्म के

अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों में एक आवरण अथवा एक बुद्धि संगत व्याख्या के रूप में राजनीति की सेवा करते है। इसमें बिल्कुल भी संदेह नही है कि धार्मिकता अर्थात किसी के जीवन में अत्यधिक धर्म अथवा व्यक्तिगत आस्था के अतिरिक्त जीवन के दूसरे क्षेत्रों में हस्तक्षेप से साम्प्रदायिक विचारधारा तथा राजनीति को बढ़ावा मिलता है। साम्प्रदायिकता केवल किसी समुदाय विशेष तक ही सीमित नही है। वास्तविक जीवन में साम्प्रदायिकता कभी एकपक्षीय नहीं होती। साधारणतया उत्तेजना सभी को हिंसा की ओर ले जाती है, सभी पर साम्प्रदायिक भावनाएँ अपना प्रभाव छोड़ती है और वे इन भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य करते है।

राजस्थान में किसी भी धर्म या जाति के आधार पर न ही कोई राजनैतिक दल है और न ही कोई राष्ट्र विरोधी संगठन है। छोटे मोटे विवादों को सत्ता पक्ष द्वारा दबा दिया जाता है। राजस्थान में सभी धर्मों एवं जातियों के हित परस्पर पूरक जैसे है। राजस्थान में मुस्लिम लोग आर्थिक स्थिति से पिछडे हुए होने तथा सिक्ख लोगों के आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी इनमें साम्प्रदायिकता की भावना नही मिलती है।[19] लेकिन वर्तमान में कुछ वर्षो में राजस्थान भी साम्प्रदायिकता की ओर बढ़ रहा है। साम्प्रदायिकता की चिगांरियां धीरे–धीरे अनेक जिलों को अपनी चपेट में ले रही है, चाहे उनके कारण सभी जिलों मे अलग–अलग रहे हो। 24 जनवरी, 1989 से लेकर वर्तमान तक आधे से अधिक जिलों में साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगों की घटनाएँ हुई है। इन घटनाओं के कारण प्रदेश के शेष अन्य जिलों में भी यदा–कदा साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया है। सरकारी आंकडों के अनुसार 1989 से लेकर वर्तमान तक साम्प्रदायिक तनाव एवं घटनाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। इन घटनाओं में कुछ मुख्य निम्न है–

1. **पाली (मार्च 18, 1989)** पाली में कुछ लोगों ने एक फैक्ट्री में खड़ी गायों को बाहर निकालने के लिए जो वहाँ नुकसान पहुंचा रही थी। उन गायों पर तेजाब डाल दिया गया, जिससे गायें जल गई। इस घटना को सुनते ही पाली नगर में दो समुदायों में दंगा हो गया। दंगे में दोनों सम्प्रदायों की एक सौ से अधिक दुकाने एवं फैक्ट्रियाँ जला दी गई तथा कई धार्मिक स्थलों पर तोड़फोड़ हुई। जिला कलेक्टर ने पाली नगर परिषद् में कर्फ्यू लगा दिया, जो बाद में हटा लिया गया।[20]

2. **जैतारण (सितम्बर, 1989)** जोधपुर से एक सौ किलोमीटर दूर जैतारण में मोहर्रम के दिन एक बबूल के पेड़ के नीचे से मूर्ति को जबरन हटाने की घटना को लेकर जो तनाव बना वह आज भी कायम है। पुलिस प्रशासन अभी तक भी उस मूर्ति को बरामद नही कर सकी है जिसे वहाँ आज भी यदा–कदा तनाव की स्थिति बनी रहती है।[21]

3. **ब्यावर (अक्टूबर 20, 1989)** ब्यावर में 20 अक्टूबर को एक हिन्दू बालक की एक मुस्लिम सम्प्रदाय के व्यक्ति की गाड़ी से टकराकर मृत्यु की घटना वहां दोनों सम्प्रदायों के मध्य तनाव का कारण बनी। जिसमें कई मकान एवं दुकान जला दी गई थी। जिस पर बाद मे पुलिस बल द्वारा काबू पाया गया, लेकिन वहां आगजनी के अलावा अन्य कोई अप्रिय घटना नही घट पायी, इसमें कुछ व्यक्तियों को गिरफ्तार भी किया गया था।[22]

4. **कमरखेड़ा (फरवरी 5, 1990)** झालावाड जिले के मनोहर थाना के नीचे कमरखेडा गांव में एक मुस्लिम बस परिचालक द्वारा एक हिन्दू लड़की के साथ किये अभद्र व्यवहार की घटना को लेकर वहां हिन्दू लोगों ने मुस्लिम बस परिचालक को पीटा और उससे एक हजार रूपये दण्ड के

रूप में वसूल किये गये। लेकिन दूसरे दिन वहां कुछ मुस्लिम लोगों ने अचानक हिन्दू लोगों पर हमला कर दिया, जिससे कई व्यक्ति घायल हो गये और वहां तत्काल पुलिस तैनात की गई और कुछ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया।[23]

5. **सोजत (अक्टूबर 11, 1991)** सोजत सिटी में ताजिये के समय मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों के द्वारा एक मूर्ति को तोड़ने पर वहां हिन्दू सम्प्रदाय के लोगों में भारी रोष व्याप्त हो गया, जिससे दोनों गुटों में तनाव व्याप्त हो गया था। जिससे दोनों गुटो के लोगों ने धार्मिक स्थलों एवं मूर्तियों को तोडना आदि घटनाऐं पैदा की, जिससे वहां साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा जो बाद में प्रशासन द्वारा दबा दिया गया।[24]

6. **कोथून (नवम्बर, 1992)** कोथून कोटा जिले से 10 किलोमीटर दूर एक कस्बा है जहां पर हिन्दू और मुस्लिम बच्चों में आपसी विवाद ने दोनों सम्प्रदायों के मध्य तनाव बढ़ा दिया, जिसमें दोनों सम्प्रदायों के कुछ व्यक्तियों को चोटें आयी थी, लेकिन प्रशासन की सतर्कता से दोनों सम्प्रदायों को समझाकर तनाव को दबा दिया।[25]

वर्तमान में भी राजस्थान में जैसे अलवर, भरतपुर में गायों की तस्करी की घटनाओं के द्वारा 'मॉब लिचिंग' के मामले सामने आये है, जिनको सम्प्रदायों के लोग साम्प्रदायिक दंगों का रूप देने के प्रयास किये गये हैं।[26] लेकिन सरकार एवं प्रशासन के द्वारा उनको दबा दिया गया है। जैसे ही टोंक जिले के मालपुरा कस्बे में भी हिन्दू–मुस्लिमों में रास्ते के विवाद ने भी वहाँ साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया था। वहाँ कर्फ्यु भी लगाया गया, लेकिन प्रशासन ने विवाद को दबा दिया और लोगों के बीच समझौता कराया गया।[27]

इनके अलावा जातीय आरक्षणों के मुद्दे भी जैसे गुर्जर आरक्षण, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों का मुद्दा भी राजस्थान में तनाव का कारण बना है जो प्रशासन के द्वारा दबा दिया जाता है।

अतः ये सभी घटनाएँ बताती है कि राजस्थान एक शान्त प्रदेश है यहाँ कभी धर्मों एवं जातियों में कोई बड़ा मतभेद नही रहा, लेकिन यहाँ वर्तमान में कुछ स्वार्थी समुदायों के नेता या असामाजिक तत्व झूठी बाते फैलाकर यदा–कदा प्रदेश के कई हिस्से में साम्प्रदायिक भावनाएँ भड़का देते हैं। जिससे प्रदेश में साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, लेकिन ये दंगे–फसाद अल्पकालीन होते हैं न कि दीर्घकालीन।[28]

इसलिए राजस्थान में इस बात का आनुभविक एवं साक्ष्य सहित अध्ययन किया जाना चाहिए कि जिससे उन सम्भावनाओं को विकसित किया जा सके, कि यहाँ साम्प्रदायिकता की स्थिति कैसे, क्यों उत्पन्न होती है और उसके कारण क्या हैं–

1. राजस्थान में अब तक चले आ रहे साम्प्रदायिकता का क्या स्वरूप अथवा प्रतिमान रहा है?
2. साम्प्रदायिकता के उस प्रतिमान का स्वरूप के क्या–क्या प्रमुख कारक रहे हैं?
3. राजस्थान में साम्प्रदायिकता की अवस्था या मात्रा कितनी है ?
4. राजस्थान जैसे शांत प्रान्त में साम्प्रदायिकता कितनी मात्रा में प्रभावित हो रही है ?
5. यहाँ लोगों की विचारधारा का स्वरूप क्या है तथा वे साम्प्रदायिकता के बारे में क्या सोचते हैं ?

6. यहाँ राजस्थान में जनता का राज्य, सरकार, राजनैतिक दलों तथा नेताओं के बारे में क्या विचार हैं?

7. राजस्थान में बढ़ती साम्प्रदायिकता के क्या–क्या कारक हैं?

इन सब प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए दो नगरों जयपुर एवं भरतपुर के चयनित उत्तरदाताओं के माध्यम से प्रश्नावली अवलोकन एवं साक्षात्कार के द्वारा क्षेत्रों का अध्ययन किया गया। उसमें प्राप्त तथ्यों का संकलन एवं आंकलन अगले अध्याय में किया गया है।

संदर्भ सूची

1. अरोड़ा एवं आनन्द; "भारतीय राजनीति व्यवस्था के आदर्श एवं दर्शन", दिल्ली, सुल्तानचन्द एण्ड कम्पनी (1996), पृ.सं. 11.
2. जैन, आर.बी.; "पॉलिटिकल साइंस इन ट्रान्जीशन", नई दिल्ली, गीतांजली प्रकाशन, (1981), पृ.सं. 226.
3. देसाई, ए.आर.; "भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियाँ", नई दिल्ली, मेकमिलन, (1978), पृ.सं. 81.
4. कश्यप, सुभाष; "संविधान की आत्मा : प्रस्तावना, लोकतंत्र समीक्षा" (अप्रेल–जून, 1969) पृ.सं. 99.
5. चन्द्रा, विपिन; "आधुनिक भारत में विचारधारा एवं राजनीति", दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, (1997) पृ.सं. 221–224.
6. जोन्स, मोरिस; "पार्लियामेंट इन इंडिया", लंदन, लोंगमैन प्रेस, (1957), पृ. सं. 5–7.
7. कोठारी, रजनी; "भारत में राजनीति", मेरठ, मिनाक्षी प्रकाशन, (1970), पृ. सं. 112.
8. कोठारी, रजनी; "पॉलिटिकल्स इन इंडिया", नई दिल्ली, ओरियन्टल, लोंगमैन प्रेस, (1977), पृ.सं. 341–43.
9. शर्मा, प्रभुदत्त; "केन्द्र राज्य सम्बन्ध प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1976), पृ.सं. 123.
10. प्रसाद, एस.एस.; "सेन्टर स्टेट रिलेशन, नीड फॉर चेन्ज इन दी कान्सटीट्यूशन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन", अंक–7, नं. 2, (जनवरी–जून, 1984), पृ.सं. 7–11.

11. मारकेन्द्रन, के.सी.; "सेन्टर स्टेट रिलेशन्स", जालन्धरन, ए.वी.सी. पब्लिकेशन, (1986), पृ.सं. 10–13.
12. चन्द्रा, अशोक; "फेडरलिज्म इन इण्डिया", लंदन, प्रिंट स्टोन प्रेस, (1986), पृ.सं. 196.
13. कश्यप, सुभाष; "दल बदल और राज्यों की राजनीति", मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, (1970), पृ.सं. 112.
14. सिंह, करण; "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", जयपुर, रूपा बुक्स प्रा.लि. (1992), पृ.सं. 110–111.
15. नारायण, प्रकाश; "अपना राजस्थान", जयपुर, पिंकसिटी पब्लिशर्स, (1988), पृ.सं. 159.
16. धर्मवीर; "राजनीति समाजशास्त्र", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (1988), पृ.सं. 17.
17. स्वर्णकार; "पॉलिटिकल इलीट", जयपुर, रावत पब्लिकेशन, (1988) पृ.सं. 23–24
18. जैन, एस.एस.; "राजस्थान का इतिहास", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1986), पृ.सं. 105.
19. पटेल, सरदार; "संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के समय दिया गये भाषण के अंश", (मार्च 29, 1949)
20. पावली, एम.वी.; "कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया", नई दिल्ली, एशिया पब्लिशिंग हाउस, (1977), पृ.सं. 679.
21. चन्द्रा, विपिन; "आधुनिक भारत में विचारधारा एवं राजनीति", दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, (1997), पृ.सं. 220.
22. वर्मा, एस.पी.; "वोटिंग बिहेवियर इन राजस्थान", ए स्टेडी ऑफ जनरल इलेक्शन, (1971), पृ.सं. 492.
23. सिंह, करण; तदैव, पृ.सं. 110–111.

24. रॉय, सत्या एम.; “भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवादी”, हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, (1983), पृ.सं. 12.
25. वर्मा, एस.एल.; “प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इंडिया”, दी इंडियन जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज, (1987), पृ.सं. 69–86.
26. चटर्जी, पी.सी.; “सेक्यूलर वेल्यू फॉर सेक्यूलर इंडिया”, दिल्ली, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985), पृ.सं. 70.
27. शर्मा, गोपीनाथ; “राजस्थान का इतिहास”, दिल्ली, विकास पब्लिकेशन, (1983), पृ.सं. 107–08.
28. लोहिया, राम मनोहर; “कास्ट सिस्टम इन इंडिया”, हैदराबाद, हिन्द प्रकाशन, (1961), पृ.सं. 268.

अध्याय–पंचम

साम्प्रदायिकता के अनुभाविक प्रतिमान की खोज

अध्याय–पंचम

साम्प्रदायिकता के आनुभाविक प्रतिमान की खोज

प्रस्तुत अध्याय में साम्प्रदायिकता के वास्तविक स्वरूप या यथार्थ में उपलब्ध प्रतिमान की खोज की जायेगी। प्रथम अध्याय में साम्प्रदायिकता के स्वरूपों के विभिन्न आयाम को बताते हुए उसकी भूमिका एवं आयामों को बताया गया है। द्वितीय अध्याय में अल्पसंख्य, बहुसंख्य समुदायों की वास्तविक विशेषताएँ बताते हुए इनके राजनैतिक एवं साम्प्रदायिक लक्ष्यों को बताया गया है।

अध्याय तीन में साम्प्रदायिकता की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं उसके मापन के उपकरणों तथा साम्प्रदायिकता का विभिन्न रूपों में वर्गीकरण किया गया है तथा साम्प्रदायिक शोध की वास्तविकता को जानने के लिए अवधारणाओं, शोध उपकरणों एवं पद्धतियों के स्वरूप का निर्धारण किया गया तथा उनके मापन को प्रस्तावित किया गया है। अध्याय चार में राजस्थान में साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयामों के संदर्भ की व्याख्या की गई है तथा राजस्थान की उन संवैधानिक, ऐतिहासिक, भौतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का परिचयात्मक उल्लेख किया गया है जो ''साम्प्रदायिकता'' के प्रतिमान को प्रभावित एवं निर्मित करते हैं।

अध्ययन क्षेत्रों के चयन की पृष्ठभूमि

अध्ययन क्षेत्र के चयन की पृष्ठभूमि में ''साम्प्रदायिकता'' के आनुभाविक अध्ययन के लिए राजस्थान के दो बड़े तथा मध्यम श्रेणी के नगरों जयपुर तथा भरतपुर का चयन किया गया है। ''साम्प्रदायिकता'' राजस्थान के गाँवों में

लगभग वर्तमान में भी पूर्णतया पहले की तरह विद्यमान अथवा बहुत न्यूनतम मात्रा में पाई जाती है। साम्प्रदायिकता का क्षेत्र मुख्यतः पहले भी शहरों और नगरों तक ही सीमित था, जो वर्तमान में भी यही स्थिति है। राजस्थान में पिछले कुछ वर्षों में शहरों और नगरों में ही साम्प्रदायिकता बढ़ती दिखाई पड़ रही है।[1] जयपुर राजस्थान का सबसे बड़ा शहर एवं राजधानी तथा भरतपुर एक मध्यम श्रेणी का साधारण नगर है। इन दोनों नगरों से उपलब्ध तथ्यों पर आधारित एवं विकसित होने के कारण शोध द्वारा प्राप्त साम्प्रदायिकता के प्रतिमान को जयपुर–भरतपुर प्रतिमान भी कहा जा सकता है।

जयपुर तथा भरतपुर : क्षेत्र परिचय

राजस्थान इन दोनों शहरों में विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं एवं क्षेत्रों के लोग निवास करते हैं। इन दोनों शहरों में विभिन्नताएँ होते हए भी साम्प्रदायिक दंगे या झगड़े अल्पकालीन यदा–कदा देखे गये हैं।[2] सर्वप्रथम जयपुर के परिचय की रूपरेखा दी जा रही है।

जयपुर का क्षेत्र

भौगोलिक दृष्टि से जयपुर उत्तर–पूर्व में अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के बीच में बसा हुआ एक विशाल शहर है। इसके उत्तर में आमेर का किला स्थित है अर्थात् जयपुर शहर को दोनों तरफ से घेरे हुए अरावली की पर्वत श्रृंखला पर आमेर का किला बना हुआ है। जयपुर के पूर्व में, पहाड़ियों के बीच स्थित हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ गलता सैलानियों की आकर्षण स्थली है। यहाँ पर अनेक कुण्ड और मंदिर हैं। जयपुर के उत्तर–पश्चिम में ऊँची पहाड़ी पर विशाल दुर्ग जयगढ़ सन् 1734 में बनाया गया था। जयपुर के दक्षिण में लगभग 10 किलोमीटर सांगानेर स्थित है, जहाँ से हवाई अड्डा एक

किलोमीटर पर स्थित है। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व निर्मित संघीजी द्वारा बनाया गया जैन मन्दिर यहाँ मुख्य दर्शनीय स्थान है।[3]

वर्तमान में जयपुर राजस्थान की राजधानी है। यहाँ राज्य के प्रमुख कार्यालय है। यह नगर महाराजा जयसिंह द्वितीय के नक्शे के अनुसार सन् 1727 ई. में बसाया गया था। महाराजा जयसिंह ने यहाँ ज्योतिष का बहुत बड़ा यंत्रालय (जंतर–मंतर) बनाया।[4] वर्तमान में जयपुर राजस्थान में सभी आधारों पर सबसे बड़ा शहर है तथा सबसे घना बसा हुआ शहर है। जयपुर का क्षेत्रफल लगभग 144 वर्ग किलोमीटर में है।

गुलाबी नगर के नाम से संबोधित किया जाने वाला यह नगर अपनी भव्यता तथा सुंदरता के लिए समूचे भारत के नगरों में बेजोड़ ख्याति प्राप्त है। जयपुर की सड़कें अपनी चौड़ाई तथा लम्बाई के लिए प्रसिद्ध हैं प्रमुख बाजारों की दुकानों एवं मकानों की बनावट मुख्यतः परकोटे के भीतर एक–सी है तथा रंग भी गुलाबी है। नगर के चारों ओर परकोटा है जिसमें आठ दरवाजे हैं। जयपुर में विभिन्न जातियों, धर्मों के अनुयायी निवास करते हैं तथा अनेक भाषा–भाषी लोग हैं। इनसे जयपुर की विविधता का पता चलता है। जयपुर की चारों दिशाओं में अनेक मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गिरजाघर तथा गुरुद्वारे स्थित हैं, जिसकी सभी जयपुरवासियों में धार्मिक प्रवृत्ति पाई जाती है और सभी का अपने–अपने धर्म में विश्वास है।[5]

पृष्ठभूमि एवं परम्परा

जयपुर में धर्म के प्रति आपसी सद्भाव वर्तमान समय में ही न प्रतिष्ठित होकर मध्यकालीन शासन में भी धार्मिक सद्भाव देखने को मिला है। जयपुर में राजा मानसिंह अपने वंश की परम्परा के अनुसार हिन्दू धर्म में विश्वास रखते

थे। इस धर्म में उनको इतनी श्रद्धा थी कि उन्होंने अकबर के आग्रह करने पर भी ''दीन–ए–इलाही'' की सदस्यता स्वीकार नहीं की थी।[6]

इसी तरह मुंगेर के शाह दौलत नामी संत के कहने से भी इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। भक्त माल के लेखक ने मानसिंह और उसकी स्त्री की गणना परम भक्तों में की है। उसने अपने समय में अनेक शिव–शक्ति, गणेश, विष्णु आदि देवी–देवताओं के मन्दिर बनवाये और उनकी मूर्तियों की स्थापना करवाई।[7] मन्दिरों के भोग–राग की भी अच्छी व्यवस्था उसके द्वारा की गई थी। आमेर के जगत शिरोमणि के मन्दिर में स्थापित कृष्ण–राधा की मूतियाँ भी इसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।[8] जहाँ हम मानसिंह को अपने धर्म पर दृढ़ पाते हैं वहाँ हम उसे धर्म–सहिष्णु भी देखते हैं। रोहताश्वगढ़ पर लगाये गये शिलालेख में कुरान शरीफ की पंक्तियों के साथ उसने धर्म में बलात्कार की निन्दा शब्द खुदवाये हैं। उसका मामूभंज की दरगाह संबंधी फरमान भी उसकी मस्जिदों के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी उसने अन्य धर्मों के प्रति अवहेलना का दृष्टिकोण नहीं अपनाया था। इस धर्म में वह सच्चा और उदार था।[9]

इसके अतिरिक्त भी जयपुर में धर्म की निरंतरता आ रही है, जिसमें विश्वास, देव–अर्चन, सद्कार्य, धार्मिक शिक्षा, धर्म विचारों के प्रति श्रद्धा सम्मिलित है। वैदिक धर्म और उससे संबंधित विश्वासों के प्रतीक जयपुर में वर्तमान में भी देखे जाते हैं।[10] दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के घोसूण्डी शिलालेख में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है जो गजवंश के सर्वत्रांत ने सम्पादित किया था। जयपुर के कुछ स्तम्भों से त्रिराज यज्ञ के प्रचलन का बोध होता है।[11] जयपुर में सवाई जयसिंह ने अश्वमेध तथा अन्य यज्ञों के सम्पादन द्वारा अपने समय तक यज्ञों की वैदिक परम्परा को जीवित रखा।[12] जयपुर में 12वीं शताब्दी तक मुख्य देव में रूप में ब्रह्मा की भांति सूर्य की भी मुख्य देवता के रूप में पूजा प्रचलित थी। इस देवता की आराधना मध्यकालीन, शिलालेखों से विदित होता

है कि जयपुर में शिव की अर्चना एकलिंग, गिरिसुखापति, संमिधेश्वर, चन्द्र चूड़ामणी, भवानीपति, अचलेश्वर, शंभू, पिनाकिन, स्वयंभू आदि विविध नामों से की जाती थी। राजा मानसिंह के समय में नाथों का शासन कार्य में बड़ा योगदान रहा था।[13] पुरातत्व संबंधी सामग्री से प्रमाणित है कि प्राचीनकाल से वर्तमान अध्ययन काल तक शक्ति की उपासना प्रचलित है। शक्ति की आराधना–शौर्य, क्रोध और दया की भावना से जुड़ी हुई है, अतएव शक्ति को मातृदेवी, महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, योगेश्वरी, दधिमति, क्षेमकरी, अरण्यवासिनी, वसुन्धरा, अष्टमात्रिका, राधिका, लक्ष्मी, भगवती, नन्दी, सरस्वती, कात्यायनी, अम्बिका, काली, सच्चिका आदि रूप में आराधना की जाती थी और आज भी इन विभिन्न रूपों में उसके प्रति श्रद्धा रखी जाती है।[14] इन रूपों में शौर्य और क्रोध की भावना को अधिक महत्व दिया जाता था, क्योंकि मध्यकालीन जीवन भय और युद्ध से अधिक जुड़ा हुआ था। जयपुर में कई शासक रामभक्त हुए हैं, जिनमें सवाई जयसिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जयपुर के कई लेखों में 'श्रीरामजी' का प्रमाण है कि इस राज्य के नरेश राम को इष्टदेव मानते थे।[15]

जयपुर में इन धर्मों के साथ गणेश, हनुमान, भैरव आदि देवताओं की आराधना भी प्रचलित थी। जयपुर में वैश्यों में जैन धर्म अधिक प्रचलित है वैसे यहाँ के नरेशों में इस धर्म के अनुयायी नहीं रहे हैं, परंतु इतना आवश्यक था कि उन्होंने इस धर्म को सर्वदा सहिष्णुतापूर्ण दृष्टि से देखा है।[16] उनके द्वारा इस धर्म के साधुओं का सम्मान किए जाने तथा जैन मन्दिरों और उपासकों के लिए अनुदान दिये जाने का उल्लेख मिलते हैं। इस धर्म के कई साधुओं ने जो खतरगच्छ, तपागच्छ, सण्डेरगछ, लगागच्छ, सगरगच्छ आदि शाखा के कई अनेक स्थानों में मूर्तियों की स्थापना करवाई है।[17]

इस्लाम धर्म, जो विश्व का बहुत बड़ा धर्म है, यह जयपुर में 12वीं शताब्दी से अधिक प्रभाव बढ़ा सका। अजमेर इसका मुख्य केंद्र था। जहाँ से जयपुर जैसे अन्य शहरों में भी इसका प्रभाव फैला। इस्लाम धर्म में भी अनेक शाखाएँ व उपशाखाएँ हैं, उनमें एक शाखा सूफी संतों की है, जिनमें मुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं, जिन्होंने इस्लाम धर्म के आधारभूत सिद्धांतों को बड़े सरल तरीके से लोगों को समझाया और अपनी नैतिक अवधारणाओं से जनता को प्रभावित किया। जिसमें सूफी संतों की यह सरल और सहज भावना थी कि वह इस धर्म का प्रचार करने में बड़ा सफल रहा। कहीं–कहीं हिन्दू मन्दिरों के तोड़–फोड़ और इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिए भी लोगों को बाध्य किया गया था।[18] इस कार्य से इस्लाम धर्म के प्रति कटुता बढ़ी, फिर भी जब हिन्दू, मुस्लिम धर्मों के मानने वाले एक साथ रहने लगे तो इन्होंने एक–दूसरे को समझा और आदान–प्रदान की व्यवस्था भी बनने लगी। जयपुर के राजाओं ने कई दस्तकारों को अपने यहाँ आश्रय देकर कला–कौशल की अभिवृद्धि की थी। सेना में भी विभिन्न धर्मों के लोगों को स्थान दिया गया तथा कई काजियों को राजकीय रूप से सम्मानित किया जाता था।

मस्जिदों को भी राजाओं द्वारा अनुदान दिए जाने के कई उल्लेख मिलते हैं।[19] इस प्रकार की नीति का यह फल हुआ कि जयपुर में 18वीं शताब्दी तथा वर्तमान तक हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य के अवसर नहीं आये हैं। परंतु वर्तमान तक भी जयपुर के शासकों की सहिष्णु नीति इस प्रकार के वातावरण के लिए अधिक उपादेय सिद्ध हुई है। परम्परागत धर्मों में सभी वर्ग और स्तर के व्यक्ति विश्वास रखते थे और उसका समाज पर बड़ा प्रभाव था। जीवन को अनुशासित ढंग से चलाने में उनका बड़ा हाथ था। परंतु जब देश में कई विचारक परम्परागत धर्म में आने वाले दोषों को निकालने के पक्ष में प्रयत्न कर रहे थे और धर्म सुधारने की प्रवृत्ति की ओर चिंतन हो रहा था, तो राजस्थान

में जयपुर भी इस चिंतन में सहयोग देने लगा।[20] जयपुर में आर्य समाज के लोग इस प्रवृत्ति में सबसे आगे थे। आर्य समाजी लोग सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे और धर्मों का अर्थ वे सम्प्रदाय विशेष से नहीं लेकर नैतिकता व मानवता से लेते थे। इसलिए आर्य समाजी लोग जयपुर में हमेशा से तथा वर्तमान में भी सहिष्णुता के समर्थक रहे हैं। आर्य समाज के लोगों ने रूढ़िवादी और धार्मिक उपकरणों के बजाय हृदय की शुद्धि और ईश्वर में उपासना पर बल देते थे। इन विविध प्रवृत्तियों के साथ आधारभूत विचार और धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा बनी रही।[21]

जयपुर में अनेक स्थानों पर 'पंचायतन मंदिर' हैं जिसमें मुख्य देवताओं की प्रतिमाओं (जिस देवता का मंदिर हो) तो गर्भगृह में प्रतिष्ठित की गई है। गलता जो मूलतः ब्रह्मा की यज्ञ भूमि मानी जाती है, वहाँ के मन्दिरों के अतिरिक्त विष्णु, शिव आदि के मन्दिर भी बनवाये गये। यहाँ के शासकों ने भी इस धार्मिक समन्वय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।[22]

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन युग से वर्तमान तक जयपुर में धार्मिक समन्वय की प्रवृत्ति विद्यमान है और धर्म के नाम पर कोई झगड़े नहीं हुए हैं। सभी लोग अपने–अपने धर्मों को बिना किसी प्रतिबंध के मानते हैं। जिससे जयपुर में आज भी धार्मिक समन्वय व सहयोग के कारण साम्प्रदायिकता का फैलान न के बराबर है।

जयपुर : सामाजिक जीवन

अठारहवीं सदी के अंत तक जयपुर में जाति–व्यवस्था पर आधारित परम्परागत सामाजिक ढांचा अपना अस्तित्व बनाये हुए था। प्रत्येक जाति का स्थान उसकी वंशोत्पत्ति और व्यवसाय के आधार पर नियत था। प्रत्येक जातीय ढांचे में उसकी विविध उपजातियों की अग्रता भी बनी रही। सामाजिक संगठन

रखना, प्रत्येक जाति का कर्त्तव्य माना जाता था। इस कर्त्तव्य का पालन करवाने का दायित्व सम्बन्धित जाति पंचायतों का था, जिन्हें अपने कर्त्तव्य पालन में राज्य सरकारों का संरक्षण उपलब्ध था जो वर्तमान में भी है।[23]

सामाजिक संगठन में प्रत्येक जाति की अग्रता उस जाति की वंशोत्पत्ति तथा उसके द्वारा अंगीकृत व्यवसाय पर निर्भर करती थी। एकमात्र आर्थिक सम्पन्नता कोई विशेष महत्व नहीं रखती थी। विशुद्ध व्यवसायों को अपनाने वाली जातियों को सामाजिक संगठन में उच्च स्थान प्राप्त था, चाहे आर्थिक सम्पन्नता कोई विशेष महत्व नहीं रखती थी। विशुद्ध व्यवसायों को अपनाने वाली जातियों को सामाजिक संगठन में उच्च स्थान प्राप्त था, चाहे आर्थिक दृष्टि से वे निर्धन ही क्यों न हों।[24] इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी अशुद्ध व्यवसायों को अपनाने वाली जातियों को निम्न स्थान प्राप्त था। व्यक्ति का महत्व उसकी जाति और योग्यता पर निर्भर था। बुद्धिमान, धन और राजभक्त होते हुए भी निम्न जातियों के लोगों को अछूत ही समझा जाता था और उन्हें अपने जातीय कर्त्तव्यों के पालन अथवा बेगार के मामलों में छूट नहीं दी जाती थी, जो वर्तमान में भी मौजूद हैं।[25]

प्रत्येक जाति का जयपुर में अपना सोपानात्मक ढांचा है, जिसमें उसकी विविध शाखाएँ अपने स्थान को सुरक्षित रखने के लिए खान–पान तथा शादी–विवाह के रीति–रिवाजों की परम्परागत रूप से पालन करती है।

उन्नीसवी सदी तक जयपुर में संस्कारों का महत्व बना रहा। जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों को बनाये रखने का प्रयत्न किया। इनमें से कुछ संस्कार यथा विवाह और मृतक संस्कार जीवन के अभिन्न अंग समझे जाते थे और जो वर्तमान में भी समझे जाते हैं क्योंकि ये धर्म से संबंधित हैं।[26] अतः जयपुर के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने से तात्पर्य यह है कि सभी

धर्मों, जातियों व प्रजातियों के लोग अपने–अपने संस्कारों, रीति–रिवाजों के आधार पर समन्वयपूर्वक रहते हैं, जिससे साम्प्रदायिकता कभी भी नहीं उत्पन्न हो सके।

जयपुर : आर्थिक जीवन

जयपुर में भूमि का स्वामित्व सिद्धांततः राजा के हाथ में था, जो कि वर्तमान में राज्य सरकार के अधिकार में है परंतु व्यवहार में भूमि पर कृषि करने वाले, जबतक लगान देते रहते थे, तब तक उसके मालिक बने रहते थे जोकि वर्तमान में भी है। मध्यकाल में राजा व जनता के बीच आय का मुख्य साधन 'कर' था जोकि वर्तमान में भी सरकार की आय का प्रमुख साधन है।[27]

जयपुर में मध्यकालीन युग के पश्चात् ज्यों–ज्यों कच्चे माल का उत्पादन करते त्यों–त्यों कस्बों और शहरों में उसकी सहायता से कई उद्योग पनपने लगे, जिससे जयपुर में औद्योगिक कार्य में विकास होने लगा क्योंकि राज–परिवार, अधिकारी वर्ग और सैनिक वर्ग की आवश्यकता समयानुकूल बढ़ने लगी, क्योंकि रहन–सहन और शासन के तरीकों में एक नया मोड़ आने लगा है। व्यापारी वर्ग भी इस परिवर्तन से अवगत था और वर्तमान में भी है। इन सभी कारणों को लेकर नये उद्योग पनपने लगे तथा पुरानों में नया परिवर्तन आने लगा और दूर–दूर से दस्तकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर आकर बसने लगे और जयपुर का औद्योगिक जीवन नई करवट लेने लगा।[28] मध्यकाल में धातु के कार्य ने भी बड़ी उन्नति की थी जो वर्तमान में भी अधिक उन्नति पर है।

लकड़ी का कार्य भी जयपुर में अच्छी उन्नति पर है। लकड़ी के खिलौने जयपुर में बनते थे और वर्तमान में भी बनते हैं और विश्व में प्रसिद्ध हैं।

दानेदार रंगाई का काम, लकड़ी पर खुदाई का काम अच्छा होता था तथा आज भी जयपुर में ये कार्य अच्छे ढंग से किए जाते हैं।[29]

लकड़ी की भांति पत्थर का कार्य भी जयपुर में प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। नगर के स्तंभ, शिल्पकला के अच्छे नमूने, आमेर, नाहरगढ़, चन्द्रमहल, मोतीडूंगरी किला और केंद्रीय म्यूजियम आदि स्थानों के मंदिर या उनके अवशेष इस कला की उत्कृष्टता के साक्षी है।[30] वर्तमान में भी जयपुर में पत्थर की मूर्तियों का कार्य बहुत अच्छे ढंग से किया जा रहा है। जिसके लिए जयपुर में सिलावरों का मौहल्ला प्रसिद्ध है।[31]

पारिश्रमिक

मध्यकाल में किसी भी उपयोग में लगे हुए श्रमिकों को जो पारिश्रमिक दिया जाता था वह नाममात्र का होता था। उस समय की जमा खर्च बहियों को देखने से मालूम होता है कि एक साधारण शिल्पी को चार आने से छः आने दैनिक पारिश्रमिक मिलता था तथा अच्छे शिल्पी को छः से आठ आने दिये जाते थे। मिस्त्री का पारिश्रमिक एक रूपया दो आने के लगभग दैनिक पारिश्रमिक होता था। चौकीदारी, बागवान, महतर को 2 या 3 रूपये मासिक वेतन मिलता था और वह भी प्रत्येक छः महिने से दिया जाता था। लेकिन वर्तमान में यह सब बहुत अच्छे वेतनमानों पर हैं तथा इस समय सभी की आर्थिक स्थिति योग्यता के अनुसार अच्छी है और योग्यता के अनुसार अच्छा वेतन मिलता है और यह भी मासिक मिलता है।[32]

व्यापार

प्रायः व्यवसाय का प्रचलन राजस्थान के कई क्षेत्रों में पाते हैं, जिनमें स्थानीय व्यापार छोटी–छोटी गलियों में सभी वस्तुओं को लेकर किया जाता

था, जहां अनेक व्यवसायों में उत्पादक ही व्यापारी होते थे और उनकी दुकान तथा घर एक प्रकार से एक ही स्थान पर होते थे। विशिष्ट चीजों के लिए विशिष्ट बाजार होते थे, जहां एक ही प्रकार की वस्तुएँ कई व्यापारी बेचते और खरीदते थे, जो कि वर्तमान में न्यूनाधिक रूप में हैं। स्थानीय मण्डी होती थी या साप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक या विशेष अवसर पर 'हाट' लगता था, जहाँ सभी प्रकार की वस्तुऐं उपलब्ध होती थी जो वर्तमान में भी है।[33]

अतः जयपुर में साम्प्रदायिक दंगे नहीं होने में यहाँ की आर्थिक व्यवस्था का ठीक होना तथा लोगों को अपने–अपने व्यवसायों में व्यस्त रहना और विभिन्न सम्प्रदायों के व्यवसायों में आपस में एक–दूसरे से लगाव रहना तथा इन मध्यवर्ग के व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का भी न्यूनाधिक मात्रा में समान होना आदि सभी कार्य व सहयोग ही यहां साम्प्रदायिकता को रोकने में सफल था और वर्तमान में भी सफल है।

भरतपुरः का क्षेत्र परिचय

राजस्थान के अन्तर्गत भरतपुर जिला विभिन्न कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है। भरतपुर शहर उत्तर दिशा में हरियाणा की सीमा से लगा हुआ है तो पूर्व में उत्तरप्रदेश के मथुरा, आगरा शहरों से लगी हुई सीमा पर सटा हुआ है तथा दक्षिण दिशा में राजस्थान के धौलपुर जिले की सीमा से लगा हुआ और दक्षिण में दौसा, करौली, जिलों की सीमा से लगा हुआ जिला है।

भरतपुर का यह जिला मुख्यालय है। इस शहर में विभिन्न जातियों, धर्मो व समुदायों के लोग निवास करते हैं। यह शहर भौगोलिक दृष्टि से भी सुरक्षित जगह बसा हुआ है अर्थात् इसके एक तरफ अलवर व भरतपुर से सटे पहाड़ों की श्रंखला है व दूसरी तरफ बाण गंगा नदी इसकी सुरक्षा का कवच है। भरतपुर के चारों तरफ राष्ट्रीय राजमार्गो का जाल है तो शहर के बीच में रेलवे

स्टेशन है जहाँ से सभी राज्यों व जिलो के लिए रेलमार्ग की सुविधा भी उपलब्ध है। भरतपुर में मुख्य नगरों में वैर, बयाना, रूपवास, हेलैना, डीग, नदबई, नगर तथा पहाड़ी आदि बड़े शहर है।

भरतपुर की जनसंख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 2,548,462 है। जिसमें 13,55,726 पुरूष एवं 11,92,736 स्त्रीयाँ है। इस शहर में 84.09 प्रतिशत हिन्दू, 14.57 प्रतिशत मुसलमान, 0.92 प्रतिशत सिख, 0.23 प्रतिशत जैन, 0.06 प्रतिशत क्रिश्चियन, 0.04 प्रतिशत बौद्ध धर्म को मानने वाले विभिन्न धर्मो व समुदायों के लोग रहते हैं। भरतपुर में कृषि आय का मुख्य साधन था जो वर्तमान में भी है। शहर में साक्षरता कुल जनसंख्या की 70.11 प्रतिशत पायी गई है।[32]

भरतपुर शहर में धर्म के प्रति आपसी लगाव व सौहार्द्ध का माहौल था जो वर्तमान में भी है। भरतपुर में जाट शासक सूरजमल अपनी वंश परम्परा के अनुसार सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखते थे और वर्तमान में भी उनके वंशज सभी को समान दृष्टि से देखते हैं। जाट शासक सूरजमल ने भरतपुर में मध्यकाल में किले व महल का निर्माण भी करवाया जो अपनी कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है। इस किले में सभी धर्मो की कला–शिल्प मौजूद है। इसलिए भरतपुर में जाट शासक होते हुए भी धर्मसहिष्णु माना गया है।[33]

इसके अतिरिक्त भरतपुर में धार्मिक निरन्तरता चली आ रही है, जिसमें विश्वास, देव–अर्चना, सद्कार्य, धार्मिक–शिक्षा, धर्म विचारकों के प्रति श्रद्धा सम्मिलित है। वैदिक धर्म और उससे सम्बन्धी विश्वासों के प्रतीक भरतपुर में वर्तमान में भी देखे जाते हैं, मध्यकालीन सुरह–स्तम्भो तथा हस्तलिखित ग्रन्थों से स्पष्ट है कि भरतपुर में शिव की अर्चना, एकलिंग, भवानीपति, शम्भु तथा पिनाकिन आदि विविध नामों से की जाती है।[34]

पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री से प्रमाणित है कि प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक भरतपुर में शक्तिपूजा विशेष लोकप्रिय थी। जाट शासक देवी को शक्ति का स्रोत मानकर उसकी पूजा–अर्चना किया करते थे। भरतपुर शासक ने अंग्रेजों से भी हार नहीं मानी थी अर्थात भरतपुर शासक सूरजमल को शक्तिशाली शासक माना जाता था।

भरतपुर में इस्लाम धर्म का प्रचार न्यूनाधिक मात्रा में था जो कि बलपूर्वक या शान्तिपूर्ण प्रयासों से ही नहीं हुआ, बल्कि वहाँ की तात्कालिक सामाजिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। उस समय हिन्दू समाज अनेक जातियों तथा उपजातियों में बंटा हुआ था। इतना ही नहीं कुछ अत्यन्त अछूत समझी जाने वाली जातियों को उच्च समझे जाने वाले समाज की सेवा करनी पड़ती थी, जिसके बदले में उन्हें तिरस्कार और घृणा मिलती थी। ऐसी स्थिति में निम्न और अछूत समझी जाने वाली जातियों का इस्लाम की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था।[35]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भरतपुर में सभी वर्ग और स्तर के लोग अपने परम्परागत धर्मो व उपधर्मों का पालन करते थे। जीवन को अनुशासित ढंग से चलाने में उनका बड़ा हाथ था। मुसलमान और हिन्दू धर्म के अनुयायियों में परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। लेकिन इसके साथ ही समाज में ऊँच–नीच की भावनाएँ, नीची और अछूत समझी जाने वाली जातियों की दयनीय स्थिति ने समाज को कमजोर और खोखला बना दिया था। इससे सूफी सन्तों ने शान्तिपूर्ण उपायों से भरतपुर में इस्लाम का प्रचार किया। इस्लाम का बढ़ता हुआ प्रभाव हिन्दू धर्म और संस्कृति के मूल्यों और मान्यताओं को कड़ी चुनौती थी।[36]

भरतपुर में इस्लाम का प्रचार केवल बल प्रयोग या शान्तिपूर्ण प्रयासों से ही नहीं हुआ, बल्कि वहाँ कि तात्कालिक सामाजिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। इस समय हिन्दू समाज अनेक जातियों व उपजातियों में बंट चुका था। ब्राह्मणों की लगभग 17 उपजातियाँ बन चुकी थी और उनमें ऊँच नीच की भावना फैल गई थी। राजपूतों में भी अनेक कुल बन चुके थे और वैश्य भी अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित थे। लेकिन मुख्य जाति जाट यहाँ संगठित थी, जिसका मुख्य कारण यहाँ का शासक जाट था और ये लोग समृद्ध भी थे। इतनी ही नहीं कुछ अन्त्यज समझी जाने वाली जातियों की स्थिति तो बड़ी दयनीय थी। इन नीची और अछूत समझी जाने वाली जातियों को उच्च समझे जाने वाले समाज की सेवा करनी पड़ती थी, जिसके बदले में उन्हें तिरस्कार और घृणा मिलती थी। लेकिन वर्तमान में जातियों की स्थिति में बदलाव आया है और सभी जातियाँ अपने कार्य के लिए स्वतन्त्र है और कोई विशेष भेदभाव नहीं किया जाता है।[37]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भरतपुर में सभी वर्ग और स्तर के लोग अपने परम्परागत धर्मो व उपधर्मो का पालन करते थे। जीवन को अनुशासित ढंग से चलाने में उनका बड़ा हाथ था। जैन और हिन्दू धर्म के अनुयायियों में परस्पर सौहार्द्धपूर्ण सम्बन्ध थे। लेकिन इसके साथ ही समाज में ऊँच–नीच की भावनाएँ, नीची और अछूत समझी जानी वाली जातियों की दयनीय स्थिति ने समाज को जर्जर और खोखला बना दिया था। हिन्दू समाज की मूलभूत एकता समाप्त होने लगी। ऐसी परिस्थितियों में मुस्लिम आक्रान्ताओं ने हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन किया और हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने हेतु विवश किया। सूफि सन्तों के शान्तिपूर्ण उपायों से भरतपुर में इस्लाम का प्रचार किया। लेकिन भरतपुर में हिन्दू धर्म और संस्कृति के मूल्यों और मान्यताओं की

बड़ी महता थी जिसके चलते इस्लाम का प्रचार कुछ मात्रा में ही सफल रहा और यहाँ हिन्दू धर्म का प्रभुत्व रहा, जो वर्तमान में भी मान्य है।

इसी समय राजस्थान के कुछ भागों में परम्परागत धर्म के दोषों को दूर करने की प्रवृत्ति आरम्भ हुई, जिनमें भरतपुर भी मुख्य था। भरतपुर में हृदय की शुद्धि और ईश्वर भक्ति पर जोर दिया जाने लगा। जाति–पांति के भेदभावों से ऊपर उठकर मानव मात्र के कल्याण की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। हिन्दू धर्म और गौ वंश की रक्षा करना आवश्यक समझा गया और अन्त्यजों को समाज में पुनः उचित स्थान देकर उन्हें ऊपर उठाने के बारे में सोचा जाने लगा। मुसलमानों के यहाँ बस जाने के बाद दोनों सम्प्रदायों के विचारों का आदान–प्रदान हुआ तथा नये वातावरण में दोनों सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की गई।[38]

अतः इन आधारों पर देखने से यह पता चलता है कि भरतपुर में सभी धर्मो के मध्य आपस में समन्वय रहा है जो आज भी पाया जाता है। मेव समाज के लोगों द्वारा गायों की तस्करी से सम्बन्धी छोटी–मोटी घटनाऐं 'मॉब लिंचिग' रूप में घटित होती हैं, लेकिन उनका प्रभाव असामान्य ही होता है।

भरतपुर : सामाजिक जीवन

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भरतपुर में जाति–व्यवस्था पर आधारित परम्परागत सामाजिक ढांचा अपना अस्तित्व बनाये हुये था। प्रत्येक जातिय ढांचे में उसकी विविध उपजातियों की अग्रता भी बनी रही, जो वर्तमान में भी विद्यमान है। सामाजिक संगठन में प्रत्येक जाति की अग्रता उस जाति की वंशोत्पति तथा उसके द्वारा अंगीकृत व्यवसाय पर निर्भर करती थी। प्रत्येक जाति का अपना सोपानात्मक ढांचा था, जिसमें उसकी विविध शाखाऐं अपने

स्थान को सुरक्षित रखने के लिए खान–पान तथा शादी–विवाह के रीति–रिवाजों का परम्परागत रूप से पालन करती थी।[39]

जाति पंचायतें अपनी–अपनी जाति की उन्नति के लिए समय–समय पर नियम बनाती थी और अपनी जाति के लोगों से जातीय नियमों एवं मर्यादाओं का पालन करवाती थी। जाति–भोज के लिए पंचो की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होता था। जाति–पंचायतें औपचारिक रूप से राज्य के नियन्त्रण एवं संरक्षण में होती थी, किन्तु सामान्यतः राज्य कभी अनुचित हस्तक्षेप नहीं करता था। लेकिन उन्नसवीं शताब्दी तक भरतपुर में सामाजिक ढांचे में परिवर्तन आ गया था, लेकिन जाति प्रथा का परम्परागत स्वरूप कायम रहा, परन्तु आर्थिक दृष्टि से उसमें परिवर्तन आ गये और परम्परागत जातिय व्यवसायों के अलावा प्रत्येक जाति के लोगों को विविध व्यवसाय अपनाने पड़े।[40]

भरतपुर में विभिन्न जातियाँ है जिनमें प्रमुख ब्राह्मण, जाट, वैश्य, कायस्थ, मेव मुसलमान या कृषिकर्मी व्यवसायिक मुसलमान आदि है। इन जातियों में भी अनेक उपजातियाँ है। भरतपुर में इन जातियों व उपजातियों ब्राह्मण, जाट, वैश्य, कायस्थ तथा उच्च वर्ग के मुसलमानों की प्रधानता प्रमुख थी, जो वर्तमान में भी है। भरतपुर में पितृसत्तात्मक पद्धति पर आधारित संयुक्त परिवार प्रथा, एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में रही, जो वर्तमान समय में भी पायी जाती है लेकिन कुछ संख्यात्मक रूप में ही है। तैरहवीं सदी से लेकर वर्तमान तक भरतपुर हिन्दू व मुसलमान समाजों में संस्कारों का महत्व बना रहा। जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों का प्रचलन था, जो कि वर्तमान में भी है। इनमें से कुछ संस्कार यथा विवाह और मृत्यु संस्कार, जीवन के विभिन्न अंग समझे जाते थे, क्योंकि वे धर्म से सम्बन्धित थे।[41]

13वीं शताब्दी से वर्तमान तक भरतपुर के सामाजिक जीवन में त्योहारों और मेलों का महत्व बना रहा है। वर्ष पर्यन्त कई त्योहार मनाये जाते थे जिनमें गणगौर, तीज, रक्षाबन्धन, नवरात्रा, दशहरा, दीपावली, होली, बकरा ईद, मुहर्रम आदि प्रमुख है। 19वीं सदी के उतरार्द्ध में त्योहारों और मेलों की बाह्य तड़क–भड़क बढ़ती दिखायी देने लगी है। उदाहरणार्थ पहले जहाँ ढ़ोल नगाड़ों और शहनाई की प्रधानता थी, अब उनका स्थान बैण्ड बाजों ने ले लिया है। दशहरा, ईद, दीपावली आदि त्योहारों पर आतिशबाजी का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया है।[42] अतः इन परिस्थितियों के होते हुये भी भरतपुर में लोग विभिन्न धर्मों के त्योहारों के जुलूसों, मेलों में किसी तरह की बाधा उत्पन्न नहीं करते देखे गये हैं जो कि साम्प्रदायिकता की कमी को दर्शाता है।

भरतपुर : आर्थिक जीवन

भरतपुर में 19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध तक कृषि पर व्यक्तियों का अपना व्यक्तिगत व सामूहिक अधिकार था जो वर्तमान में भी है। कृषि के माध्यम से ही पशुपालन भी एक प्रमुख आर्थिक साधन बना रहा था जो वर्तमान में भी है। भरतपुर में वंश परम्परागत धन्धे भी प्रचलित थे जो वर्तमान में भी हैं।[43]

लेकिन वर्तमान समय में भरतपुर में कृषि के अलावा व्यापार व लघु उद्योगों का प्रचलन बढ़ने से भरतपुर के व्यापारी भी अपनी शाख बढ़ाने में सफल रहे हैं। अतः भरतपुर में हिन्दूओं व मुसलमानों की आर्थिक स्थिति ठीक होने की वजह से उनमें हीनता व घृणा की भावना न्यूनाधिक रूप में ही पायी जाती है। जिससे वे सहयोग पूर्ण नीति का अनुसरण करते हैं। अलगाववादी नीति शून्य प्रायः पायी जाती है।

जयपुर तथा भरतपुर में राजनीतिक सामाजीकरण एवं सांस्कृतिक मूल्य अर्थ एवं महत्व –

राजनीतिक सामाजीकरण, 'वह प्रक्रिया' है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण और उनमें परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के निष्पादन के माध्यम से व्यक्तियों को राजनीतिक संस्कृतियों में शामिल किया जाता है, तभी राजनीतिक वस्तुओं के प्रति उनके अभिविन्यासों का निर्माण किया जाता है।[44] दूसरे शब्दों में, यह उस शिक्षण प्रक्रिया की ओर निर्देश करता है जिसके द्वारा संचालित राजनीतिक व्यवस्था के लिए स्वीकार्य मानकों और व्यवहारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सम्प्रेषित किया जाता है। इस प्रकार, इस संकल्पना का उद्देश्य व्यक्तियों का इस तरीके से प्रशिक्षण और विकास करना है कि वे राजनीतिक समुदाय के सुकार्यकारी सदस्य बन सकें। जाहिर है कि इसके अर्थ में विशिष्ट रूप से मनोवैज्ञानिक आयाम निहित है, कि "यह संचनशील राजनीतिक व्यवस्था के स्वीकार्य मानकों, अभिवृत्तियों और व्यवहार को क्रमिक ढंग से सीखना है।"[45]

राजनीतिक संस्कृति में उस समाज की अभिवृत्तियाँ, विश्वास, भावनाएँ और मूल्य शामिल होते हैं जिनका राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक मुद्दों से सम्बन्ध होता है।[46] इसकी परिभाषा किसी "राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों, राजनीति के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्तियों और अभिविन्यासों के प्रतिमानों" के रूप में की जाती है। किसी समाज के सदस्यों में भावात्मक प्रेरणाओं, बौद्धिक क्षमताओं और नैतिक परिप्रेक्ष्यों के रूप में समान मानव प्रकृति होती है।

जयपुर तथा भरतपुर में राजनीतिक समाजीकरण एवं सांस्कृतिक मूल्यों का अध्ययन करने में परिवार, शिक्षा का स्तर एवं जातियों व धर्मों को मुख्य

आधार माना है। जो कि साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं को रोकने में महत्वपूर्ण मूल्य माने गये हैं।

परिवार

राजनीतिक सामाजीकरण में परिवार एक महत्वपूर्ण व प्राथमिक अभिकरण है। जयपुर व भरतपुर में परिवार राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरणों में सबसे आगे हैं। क्योंकि बच्चों की शिक्षा परिवार से ही प्रारम्भ होती है तथा परिवार की स्थिति, पर्यावरण एवं माता–पिता व अन्य सदस्यों के राजनीतिक दृष्टिकोण का बच्चे पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करने में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[47] यहां यह देखा गया है कि अगर माता–पिता स्वयं राजनीति में सक्रिय है, उनके विचारों में समरूपता है तथा वे प्रमुख राजनीतिक विषयों पर विचार–विमर्श करते हैं, तो उनके बच्चे स्वाभाविक रूप से राजनीति की ओर आकर्षित होते हैं। जयपुर व भरतपुर में किये गये अध्ययन से पता चला है कि यहां तीन चौथाई बच्चों की राजनीतिक प्राथमिकताऐं उनके माता–पिता की प्राथमिकताओं के अनुरूप होती हैं। यद्यपि दोनों पीढ़ियों के सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण में भिन्नता पायी जाती है।[48] राजनीतिक समाजीकरण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका के तीन प्रमुख कारण पाये जाते हैं–

(अ) बच्चों के पालन–पोषण में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान,

(ब) बच्चों में पिता का अनुकरण करने की स्वाभाविक प्रवृति, तथा

(स) परिवार के सभी सदस्यों का सामान्यतः एक ही पर्यावरण। कभी–कभी माता का परिवार में प्रभुत्व भी राजनीतिक सामाजीकरण को काफी सीमा तक प्रभावित करता है।

इसलिए जयपुर व भरतपुर में परिवारों के द्वारा ही वहां आपसी मेलजोल व विभिन्न धर्मो के लोगों से उनका सहयोग पूर्ण स्वभाव देखकर ही उनके परिवारों के आने वाली पीढ़ी भी जब यह सहयोग, मैत्रिपूर्ण सम्बन्धों को देखते हैं तो उनमें भी वैसी ही मूल्यों का प्रवेश होता है जैसे साम्प्रदायिक घृणा से बचा जा सके और सद्भाव बना रहे।

शिक्षण संस्थाएँ

राजस्थान शिक्षा विभाग के अनुसार, जयपुर तथा भरतपुर के शिक्षा क्षेत्र में गुणात्मक व संख्यात्मक विकास के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं जिनके फलस्वरूप स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में जाने वाले छात्रों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। जयपुर व भरतपुर में 9 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बहुत से ऐसे बालक और बालिकाएँ है, जो सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति के कारण औपचारिक विद्यालयों में नहीं जा पाते हैं, क्योंकि इनमें से अधिकांश बच्चे प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से परिवार की आर्थिक दशा को सुधारने में योगदान देने को मजबूर हैं।[49] जैसे जयपुर में अधिकांश सिन्धी, मुस्लिम बच्चे अपने परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए बचपन से ही काम धन्धे में लग जाते हैं।

इन दोनों शहरों में स्कूलों को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि ये राजनीतिक चेतना का औपचारिक पर्यावरण प्रदान करते हैं। स्कूलों में बच्चे विचार–विमर्श एवं नियोजित रूप से शिक्षण द्वारा राजनीतिक विश्वासों एवं मूल्यों का उपार्जन कर सकते हैं। जयपुर एवं भरतपुर के अध्ययन से यह पता

चलता है, कि शिक्षित एवं अशिक्षित व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार एवं मनोवृत्तियों में अंतर पाया जाता है।[50] शिक्षित व्यक्तियों में लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति समर्थन की भावना भी अधिक देखने को मिली है। इनसे उसके प्रचालन के मूल्य आने वाली पीढ़ियों को सिखाये जा सकें।

स्कूल, परिवार में पाये गये व्यवहार, मूल्यों व मनोवृत्तियों को ही समर्थन प्रदान करते हैं, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की नवीन राजनीतिक मनोवृत्तियों एवं अभिविन्यासों के सृजन में अद्वितीय भूमिका रही है। पुस्तकों का पाठ्यक्रम का शिक्षा संस्थाओं का पर्यावरण सहपाठी तथा अध्यापक शिक्षा के भीतर बच्चों का राजनीतिक सामाजीकरण करते हैं।

मित्र मण्डली

परिवार एवं शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त मित्र–मण्डली का भी राजनीतिक सामाजीकरण में विशेष योगदान रहता है। बचपन के साथी, मित्रों का गुट, लघु कार्य समूह, भाई–बहन, विवाहित युगल आदि मित्र–मण्डली के कुछ प्रमुख उदाहरण है। यद्यपि इनमें भी परिवार की तरह प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता पायी जाती है, फिर भी इनकी प्रकृति परिवार से भिन्न है। एक आयु के सदस्य होने के नाते, सदस्यों में समानता अधिक होती है और सहज संचार व अधिक अन्तः क्रियाओं के कारण इनमें एक–दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता भी अधिक होती है। किशोरावस्था में परिवार की अपेक्षा स्कूल एवं मित्र–मण्डली को अधिक प्रभावशाली अभिकरण माना गया है। विशिष्ठ राजनीतिक भूमिकाओं में सहभागिता में मित्र–मण्डली का योगदान अधिक रहता है और यह एक प्रकार से परिवार के सहायक एवं पूरक अभिकरण के रूप में

कार्य करती है। अतः यह सामान्यतः परिवार के विचारों को ही और अधिक सबल बनाने में सहायक है।[51]

अन्य द्वितीयक समूह एवं संस्थाऐं

इन उपर्युक्त अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य द्वितीयक समूह एवं संस्थाऐं भी जयपुर तथा भरतपुर में राजनीतिक सामाजीकरण में महत्वपूर्ण भमिका निभाते हैं। इनमें राजनीतिक दल, चुनाव, श्रमिक संघ, व्यावसायिक संघ, सरकार, संदर्भ–समूह, जन संचार आदि उल्लेखनीय है। राजनीतिक दल राजनीतिक सामाजीकरण के आशय से ही निर्मित एक महत्वपूर्ण द्वितीयक समूह है जो राजनीतिक मूल्यों के प्रसार, राजनीतिक क्रिया के संग्रहण तथा राजनीतिक भर्ती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जन–संचार अथवा जन–सम्पर्क के माध्यम (यथा रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र–पत्रिकाऐं आदि) राजनीतिक सूचना के प्रमुख स्त्रोत हैं, लेकिन इनका प्रभाव सामाजिक परिवेश पर निर्भर करता है।

जयपुर एवं भरतपुर में राजनीतिक सामाजीकरण के साधनों पर अभी कोई अधिक शोध तथा आनुभाविक अध्ययन नहीं हुए हैं। यद्यपि जन–संचार के माध्यमों तथा मनोरंजन के साधनों को ही राजनीतिक व सामाजीकरण का साधन माना गया है, फिर भी हाल ही में इन माध्यमों के द्वारा नागरिकों को राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरूक बनाने तथा राजनीतिक सामाजीकरण करने की दिशा में उनके महत्व में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है।

वर्तमान संदर्भ में 'साम्प्रदायिकता' की खोज

जयपुर तथा भरतपुर शहरों का विशिष्ट स्वरूप जानने के पश्चात् साम्प्रदायिकता के वास्तविक प्रतिमान को जानने के लिए क्षेत्रीय अध्ययन एवं

अवलोकन करना महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके लिए तीन प्रविधियाँ प्रमुख रूप से काम में लायी गई है जो निम्न है–

1. प्रश्नावली व अनुसूचि
2. सहभागी अवलोकन
3. विशिष्ठ व्यक्तियों के साक्षात्कार

इनमें से प्रश्नावली को मुख्य माध्यम बनाया गया ताकि कम समय में तथा उपलब्ध साधनों एवं समय की सीमाओं के भीतर 'साम्प्रदायिकता' सम्बन्धी तथ्य प्राप्त किये जा सकें। इसके लिये 'प्रश्नावली' तैयार की गई।[52] इनको चार भागों में विभाजित किया गया था। प्रश्नावली प्रविधि के सफल नहीं होने पर अनुसूचि के रूप में परिवर्तित करके काम में लाया गया तथा समस्त जनसंख्या में से संस्तारित दैव निर्देशन के आधार पर सूचनादाताओं का चयन किया गया। इनके उत्तरों को विभिन्न तालिकाओं में संग्रहीत किया गया है। सारणीयन की गयी है, तालिकाओं में उपलब्ध तथ्यों का विश्लेषण सम्बन्ध तालिका के साथ–साथ ही दिया गया है।

किन्तु अनुसूचियाँ भी अपने आप में सीमित होती हैं। उनकी त्रुटियों को जांचने, कमियों को पूरा करने तथा अधिक विश्वसनीय तथ्य प्राप्त करने के लिये यथासम्भव सहभागी अवलोकन को भी विशिष्ट अवसरों पर काम में लाया गया। किन्तु ये भी सामाजिक राजनीतिक तथ्यों के अवबोधन स्वतः पूर्ण नहीं होते हैं। उन्हें अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए जयपुर–भरतपुर के विशिष्ट तथा सम्बद्ध लोगों से साक्षात्कार किये गये। साक्षात्कार का काल क्षेत्र तथा लक्ष्य सीमित रखा गया।[53] इन सहभागी अवलोकन तथा साक्षात्कार से प्राप्त पूरक

सामग्री को भी तालिकाओं के विश्लेषण के साथ ही, जहां भी आवश्यक हुआ, दे दिया गया है।

साम्प्रदायिकता की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए सीमित मात्रा में किये गये सहभागी अवलोकन तथा तैयार की गई प्रश्नावली के आधार पर जयपुर एवं भरतपुर की जनसंख्या में से दैव निर्देशन/Random Samply के आधार पर उत्तरदाताओं का चयन किया गया। उनका विवरण सारणी संख्या–1 में दिया गया है।

सारणी सं.–1

जयपुर एवं भरतपुर के उत्तरदाताओं का धर्मानुसार वर्गीकरण

क्र. सं.	धर्म	जयपुर में उत्तरदाताओं तथा व्यक्तियों का धर्म के आधार पर वर्गीकरण	जयपुर में प्रतिशत	भरतपुर में उत्तरदाताओं का धर्म के आधार पर वर्गीकरण	भरतपुर में प्रतिशत
1.	हिन्दू	60	40	50	50
2.	मुस्लिम	30	20	35	35
3.	सिक्ख	20	14	5	5
4.	जैन	15	10	10	10
5.	ईसाई	10	6	—	—
6.	अन्य	15	10	—	—
	योग	**150**	**100**	**100**	**100**

उक्त सारणी के अनुसार जयपुर के 150 उत्तरदाताओं में हिन्दू 60, मुस्लिम 30, सिक्ख 20, जैन 15, ईसाई 10 तथा अन्य विविध धर्मो के 15 लोग

थे, किन्तु भरतपुर अपेक्षाकृत एक छोटा नगर होने के कारण इतने अधिक धर्मो वाला नहीं था उसकी कम संख्या को देखते हुये केवल 100 उत्तरदाताओं को शामिल किया। हिन्दू 50, मुस्लिम 35, सिक्ख 5, तथा जैन 10 थे। हिन्दू उत्तरदाताओं में सवर्ण लोगों के साथ अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा पिछड़ी जाति के लोगों को भी शामिल किया गया है।

उत्तरदाताओं की इस जनसंख्या से या समग्र से यह जानने का प्रयास किया गया है कि उनके अनुसार स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता की स्थिति सामान्य रूप से कैसी थी? यानि यहाँ उनका सामान्य प्रतिशत जानने का प्रयत्न किया गया है।

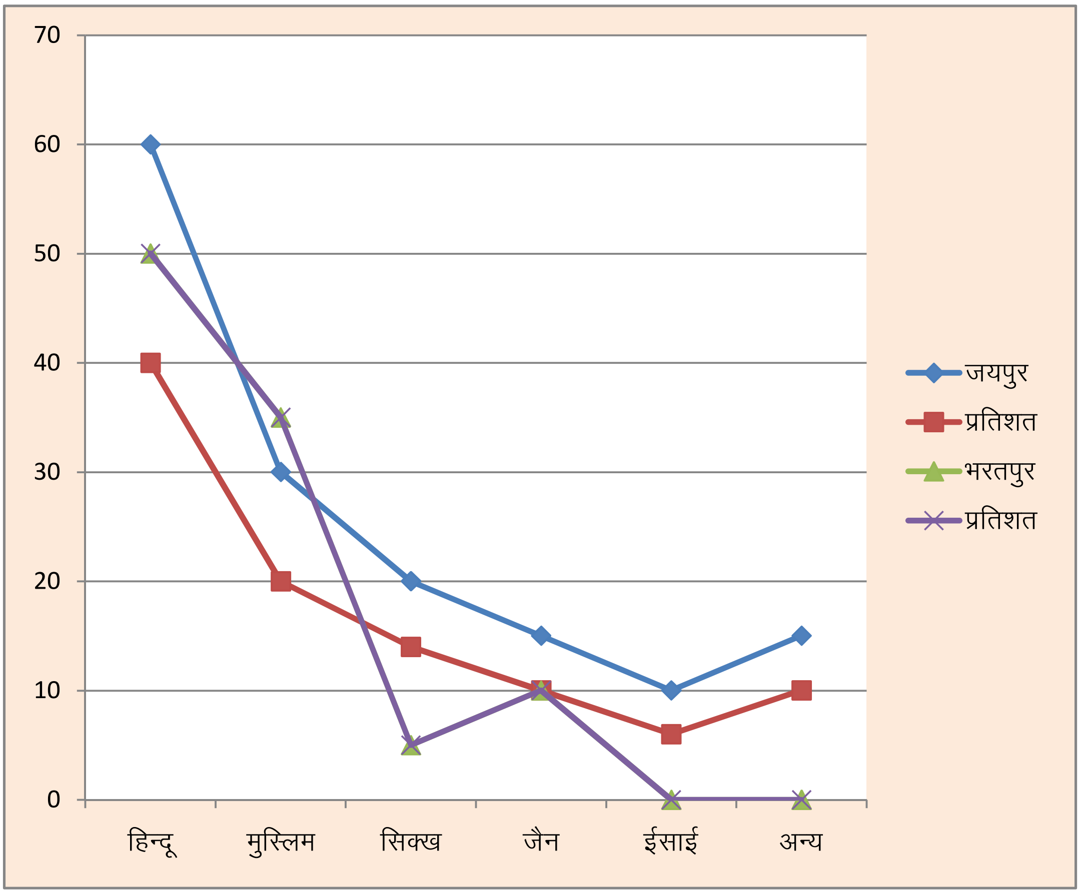

सारणी सं.–2

जयपुर व भरतपुर में स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता के विषय में उत्तरदाताओं के विचार

क्र. सं.	आजादी के बाद साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में उत्तरदाताओं की संख्या 150	जयपुर में प्रतिशत	भरतपुर में उत्तरदाताओं की संख्या 100	भरतपुर में प्रतिशत
1.	आजादी के बाद कुछ बढ़ी है	30	20	15	15
2.	आजादी के बाद पहले जैसी ही है	50	33.33	40	40
3.	आजादी के बाद कम हुई है	60	40	30	30
4.	आजादी के बाद बहुत कम हुई है	–	–	5	5
5.	कुछ नहीं कह सकते	10	6.66	10	10
	योग	**150**	**100**	**100**	**100**

इन उत्तरदाताओं के उपर्युक्त विवरण के अनुसार यह प्रश्न किया गया है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता की समस्या बढ़ी है अथवा कम हुई है। इनके अनुसार बहुत कम उत्तरदाता सहमत थे, कि स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता की समस्या बहुत कम या समाप्त हो गई है, केवल 40 प्रतिशत जयपुर के तथा भरतपुर के 30 प्रतिशत लोगों का मानना था, कि स्वतन्त्रता के पश्चात साम्प्रदायिकता की समस्या कम हुई है। इसकी तुलना में जयपुर के 33 प्रतिशत तथा भरतपुर के 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह मानना था कि

समस्या वैसी ही बनी हुई है। यही नहीं इन दोनों स्थानों के 20 प्रतिशत व 15 प्रतिशत लोगों का यह कहना था कि साम्प्रदायिकता बढ़ी है। यदि इन दोनों उत्तरों के प्रतिशत को मिलाया जाये तो ज्ञात होगा कि साम्प्रदायिकता की समस्या लगभग वैसी ही है। जयपुर तथा भरतपुर के अन्तर्गत पिछले दस वर्षों में साम्प्रदायिकता की स्थिति में साम्प्रदायिकता का स्वरूप निर्धारित करने के लिये तालिका सं. 3 दी गई है।

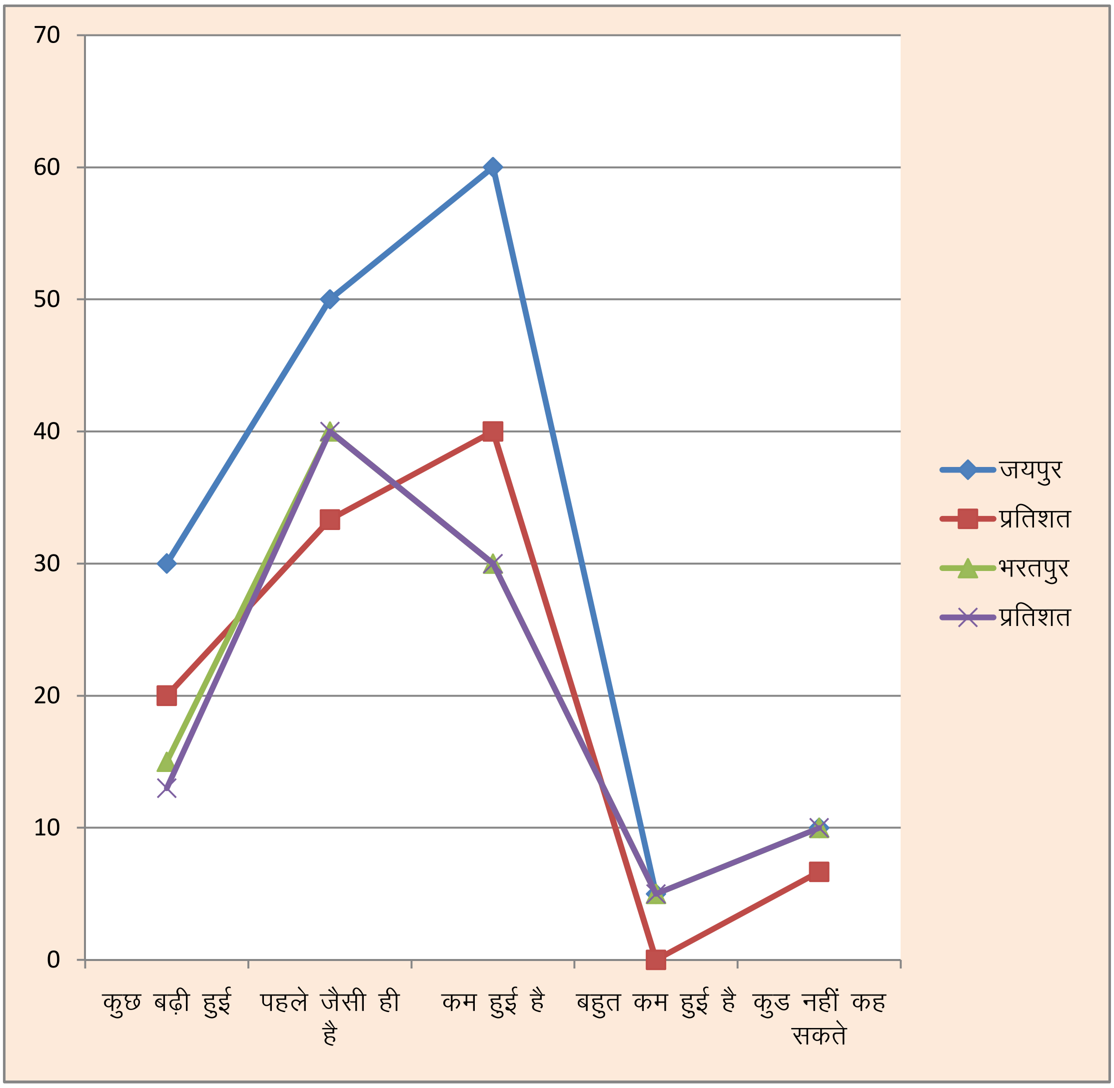

सारणी सं. 3

पिछले दस वर्षो में इन नगरों में साम्प्रदायिकता की स्थिति की समस्या

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में उत्तरदाताओं के आधार पर	प्रतिशत	भरतपुर में उत्तरदाताओं के आधार पर	प्रतिशत
1.	कुछ बढ़ी है	15	10	10	10
2.	वैसी ही है	55	36.67	45	45
3.	कम हुई है	40	26.67	25	25
4.	बहुत कम हुई है	15	10	5	5
5.	कुछ नहीं कह सकते	25	16.66	15	15
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

जब उनसे यह पूछा गया कि पिछले दस वर्षो में (2000–2018) तक शहर में साम्प्रदायिकता की समस्या घटी या बढ़ी है, तो भी उनके उत्तरों में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं पड़ा और वह 50 प्रतिशत से अधिक ही आया।

इसके साथ ही साथ यह जानना आवश्यक हो गया कि वे यह बताऐं कि साम्प्रदायिकता की स्थिति कैसी है? विभाजन से पूर्व तथा बाद में कट्टरवादी एवं पृथकतावादी मुसलमानों के पाकिस्तान में चले जाने के पश्चात् साम्प्रदायिक स्थिति में परिवर्तन आना स्वाभाविक है, किन्तु उसको वस्तुपरक आधार पर जानना आवश्यक प्रतीत हुआ। अतएव यह जानने का प्रयत्न किया कि ''क्या साम्प्रदायिकता की समस्या आर्थिक कारणों से जुड़ी हुई है।''

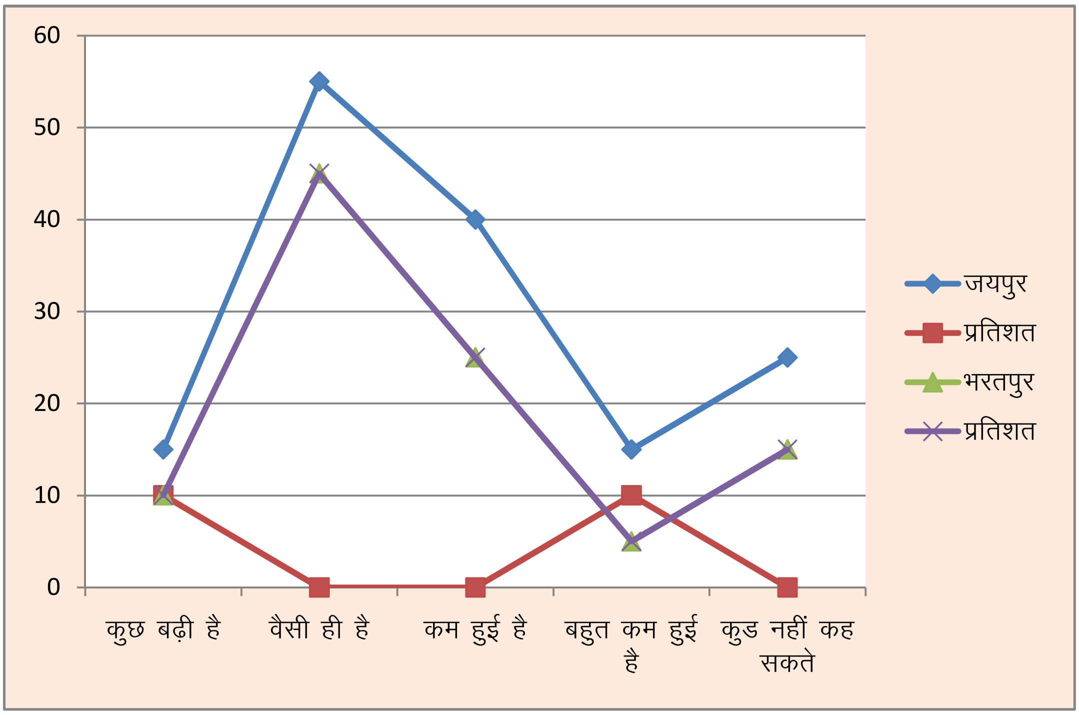

सारणी संख्या 4

साम्प्रदायिकता का आर्थिक आधार

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता के समर्थन में मत	जयपुर में आवृत्ति संख्या में	जयपुर में प्रतिशत	भरतपुर में आवृत्ति संख्या	भरतपुर में प्रतिशत
1.	हाँ	85	56.67	35	35
2.	नहीं	5	3.33	10	10
3.	कुछ कुछ	60	40	55	55
	योग	**150**	**100**	**100**	**100**

जब उत्तरदाताओं को यह पूछा गया कि क्या उनके अनुसार साम्प्रदायिकता की समस्या आर्थिक कारणों से जुड़ी हुई है तो उन्होंने बताया कि साम्प्रदायिकता जयपुर जैसे शहर में आर्थिक कारणों से (56.67 प्रतिशत)

तथा भरतपुर जैसे छोटे शहर में (35 प्रतिशत) जुड़ा हुआ है। फिर भी इसके केवल आर्थिक कारण ही नहीं है तथा उसके साथ अन्य कारण भी मिश्रित है, जैसे, सामाजिक सुरक्षा, अपने ही धर्म या जाति के लोगों के प्रति लगाव, व्यावसायिक लाभ आदि।

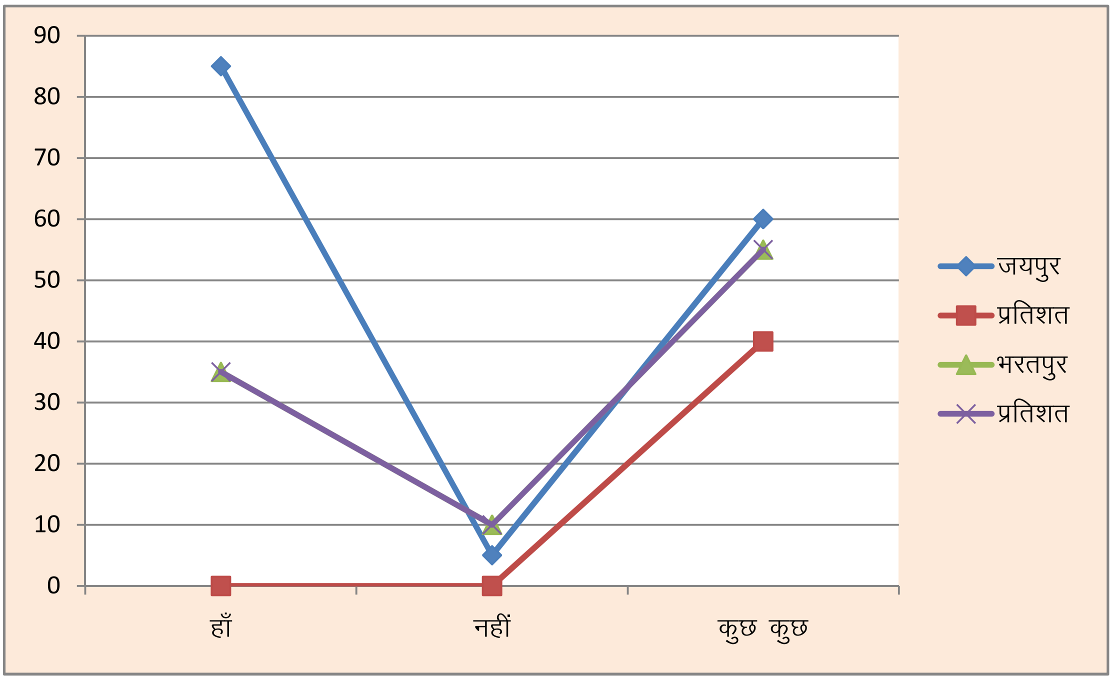

इसका एक प्रमाण 9, 10 एवं 11 प्रश्नों के उत्तरों को पढ़ने से मिला कि अधिकांश उत्तरदाता अपने ही धर्म जाति के लोगों के बीच में या तो निजी मकानों में रहते हैं, अथवा ऐसे मकान मालिक के मकान में किराये पर रहते हैं जो उनके ही धर्म से सम्बन्धित हैं। यही नहीं वे ऐसी बस्तियों में रहते हैं जहाँ उनके धर्म के लोग ही अधिकांश मात्रा में पाये जाते हैं।

फिर भी उनका यह अनुभव था कि अन्य धर्मावलम्बियों के मकानों अथवा बस्तियों में रहने पर अधिक कठिनाई नहीं आती केवल कुछ अवसरों पर सामाजिक, धार्मिक त्योहारों पर तालमेल का अभाव दिखायी पड़ता है। सारणी सं. 5 में कठिनाई अनुभव करने वालों का प्रतिशत दोनों स्थानों पर लगभग समान रहा है।

सारणी सं.–5

विभिन्न धर्मावलम्बियों के साथ निवास करने में कठिनाइयां

क्र. सं.	विभिन्न धर्मावलम्बियों के साथ रहने में परेशानी	जयपुर में उत्तरदाताओं के विचार	प्रतिशत	भरतपुर में उत्तरदाताओं के विचार	प्रतिशत
1.	हाँ	15	10	20	20
2.	नहीं	75	50	45	45
3.	कुछ–कुछ	60	40	35	35
	योग	150	100	100	100

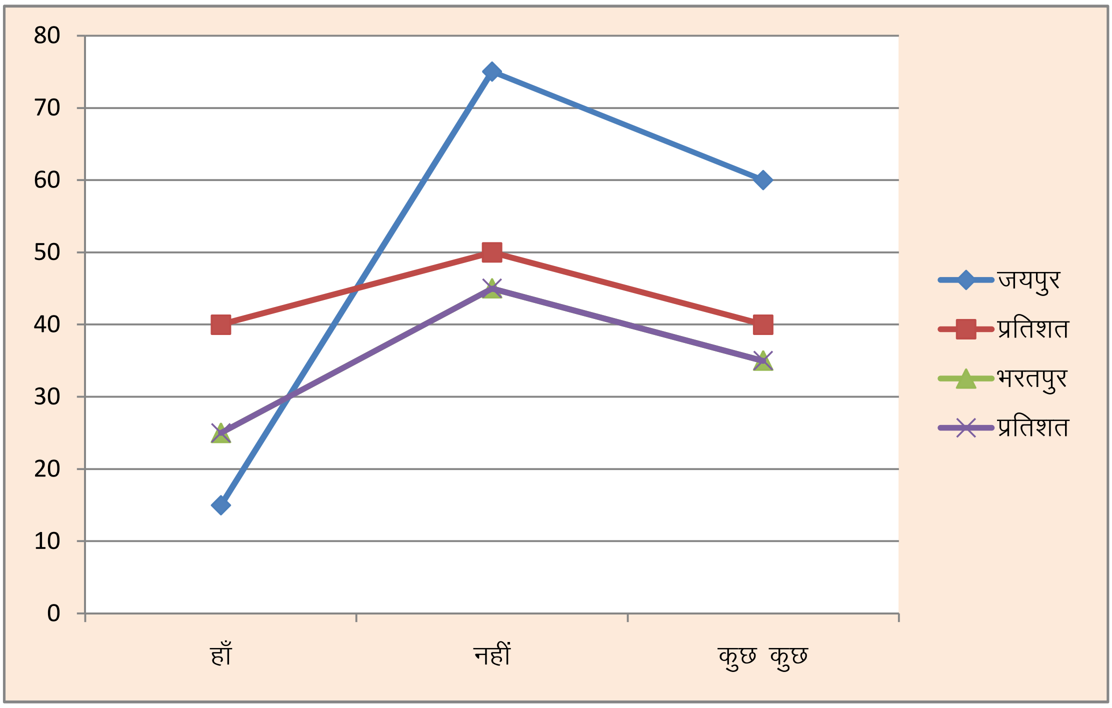

प्रायः साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति अलगाव से ही नहीं होता। जब अलगाव विद्वेष, घृणा आदि में परिवर्तित हो जाता है, तब साम्प्रदायिकता व्यवहार में दिखायी देने लगती है। इस साम्प्रदायिक विद्वेष में भी अनेक कारण होते हैं। इसके लिए पांच वरीयताओं का क्रम निर्धारण करने के लिये उत्तरदाताओं से पूछा गया है:

सारणी सं. 6(i)

जयपुर में साम्प्रदायिक विद्वेष की वरीयताऐं

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता के विद्वेष के कारण	आवृत्ति के आधार पर	वरीयता क्रम में 150 उत्तरदाताओं के आधार				कुल प्रतिशत 150वें योग
		I	II	III	IV	V	
1.	धर्मो में विभिन्नता	5 (3.33%)	15 (10%)	45 (30%)	50 (33.33%)	35 (23.33%)	100%
2.	सत्ता का लोभ	20 (13.33%)	30 (20%)	60 (40%)	10 (6.67%)	30 (20%)	100%
3.	आर्थिक होड़ व प्रतियोगिता	50 (33.33%)	40 (26.67%)	30 (20%)	20 (13.33%)	10 (6.67%)	100%
4.	परम्परागत तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	60 (40%)	45 (30%)	30 (20%)	10 (6.67%)	5 (3.33%)	100%
5.	राजनेताओं में स्वार्थ	70 (46.67%)	35 (23.33%)	20 (13.33%)	15 (10%)	10 (6.67%)	100%

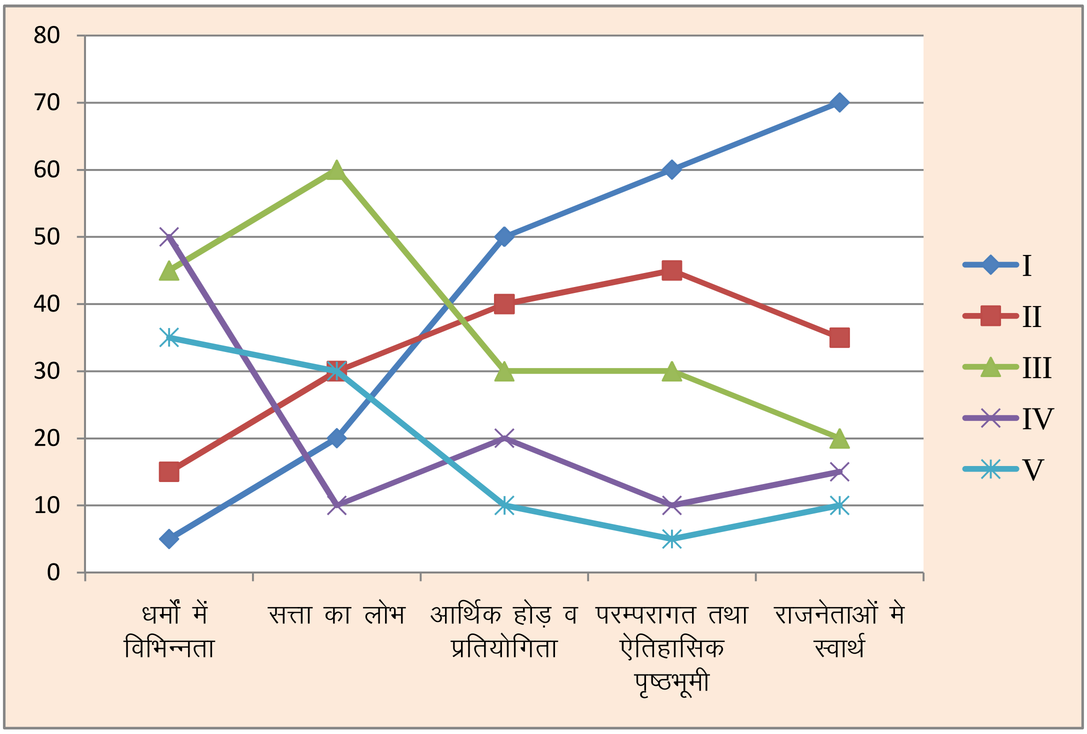

सारणी सं. 6(ii)

जयपुर में साम्प्रदायिक विद्वेष विषयक वरीयताऐं

क्र. सं.	साम्प्रदायिक विद्वेष	आवृत्ति वरीयता क्रम 100 उत्तरदाताओं के अनुसार					कुल प्रतिशत
		I	II	III	IV	V	
1.	धर्मो में विभिन्नता	5 (5%)	10 (10%)	30 (30%)	40 (40%)	15 (15%)	100%
2.	सत्ता का लोभ	15 (15%)	30 (30%)	35 (35%)	10 (10%)	10 (10%)	100%
3.	आर्थिक होड़ व प्रतियोगिता	40 (40%)	25 (25%)	20 (20%)	10 (10%)	5 (5%)	100%
4.	परम्परागत तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	45 (45%)	25 (25%)	15 (15%)	10 (10%)	5 (5%)	100%
5.	राजनेताओं में स्वार्थ	50 (50%)	25 (25%)	15 (15%)	5 (5%)	5 (5%)	100%

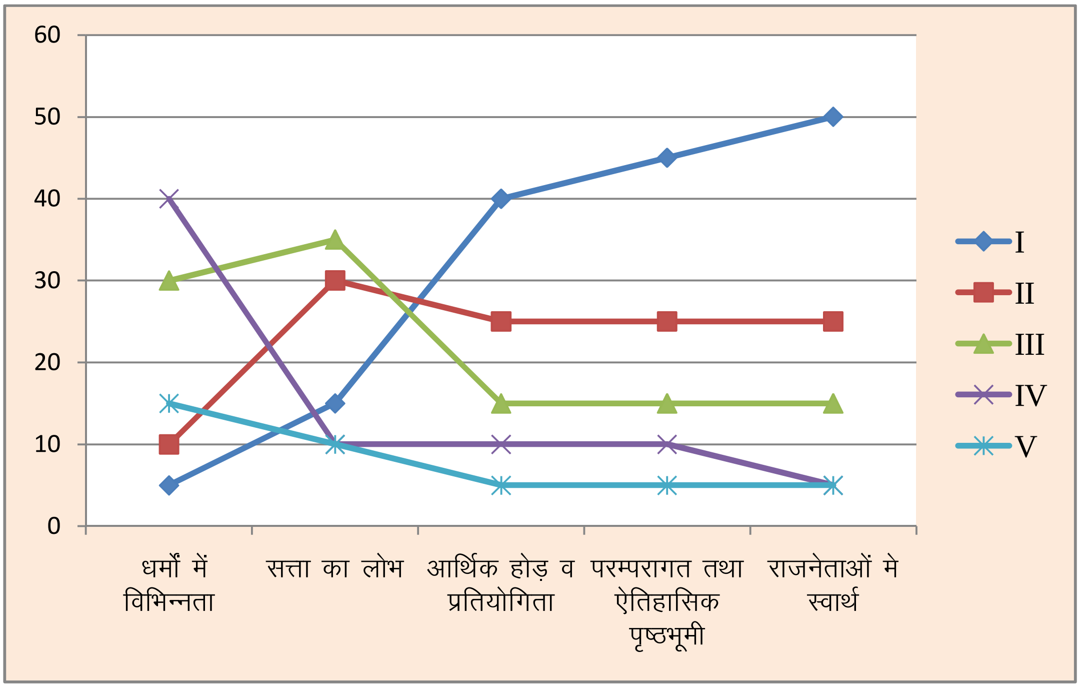

उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि वे साम्प्रदायिक विद्वेष का कारण किसे मानते हैं और उसके अनुसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण कौनसा है, उनके अनुसार जयपुर में प्रथम वरीयता में राजनेताओं के स्वार्थ (46.67 प्रतिशत) को तथा द्वितीय वरीयता में परम्परागत तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को (40 प्रतिशत) तथा तृतीय वरीयता में आर्थिक होड़ व प्रतिस्पर्धा (33 प्रतिशत) को बताया। इसका अर्थ यह है कि आम जनता में साम्प्रदायिक विद्वेष जन्मजात या स्वाभाविक तौर पर नहीं होता है। उनमें विद्वेष की भावना उत्पन्न की जाती है। भरतपुर में भी लगभग मिलती–जुलती स्थिति दिखायी पड़ती है वहां पर प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वरीयताओं को क्रमशः 50 प्रतिशत, 45 प्रतिशत तथा 40 प्रतिशत मिला है।

साम्प्रदायिकता की स्थिति –

जयपुर एवं भरतपुर के उत्तरदाताओं से जब यह पूछा गया कि आपके अपने पड़ौस या नगर में साम्प्रदायिकता की स्थिति किस रूप में पायी जाती है तो 16+13+13 अर्थात् लगभग 42 प्रतिशत लोगों ने उनमें तालमेल, शांतिपूर्ण निवास व भाईचारा पाया तथा 33 प्रतिशत लोगों ने दंगे, तनाव तथा कुछ खास वर्गो में संघर्ष की स्थिति पायी तथा लगभग 13 प्रतिशत लोगों ने आर्थिक प्रतिस्पर्धा का अनुभव किया। भरतपुर में भी लगभग यही स्थिति थी किन्तु यहां तनाव की स्थिति अधिक पायी गयी।

सारणी सं. 7

पास–पडौस या नगर में साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित स्थिति का स्वरूप

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में 150 उत्तरदाताओं के आधार पर	प्रतिशत	भरतपुर में 100 उत्तरदाताओं के आधार पर	प्रतिशत
1.	कभी–कभी भीषण दंगे	5	3.33	3	3
2.	तनाव	30	20	25	25
3.	कुछ खास वर्गों में संघर्ष	15	10	10	10
4.	आर्थिक प्रतिस्पर्धा	20	13.33	15	15
5.	तालमेल	25	16.67	20	20
6.	शांतिपूर्वक निवास	20	13.33	7	7
7.	भाईचारा	20	13.33	15	15
8.	अन्य	15	10	5	7
	कुल योग	**150**	**100%**	**100**	**100%**

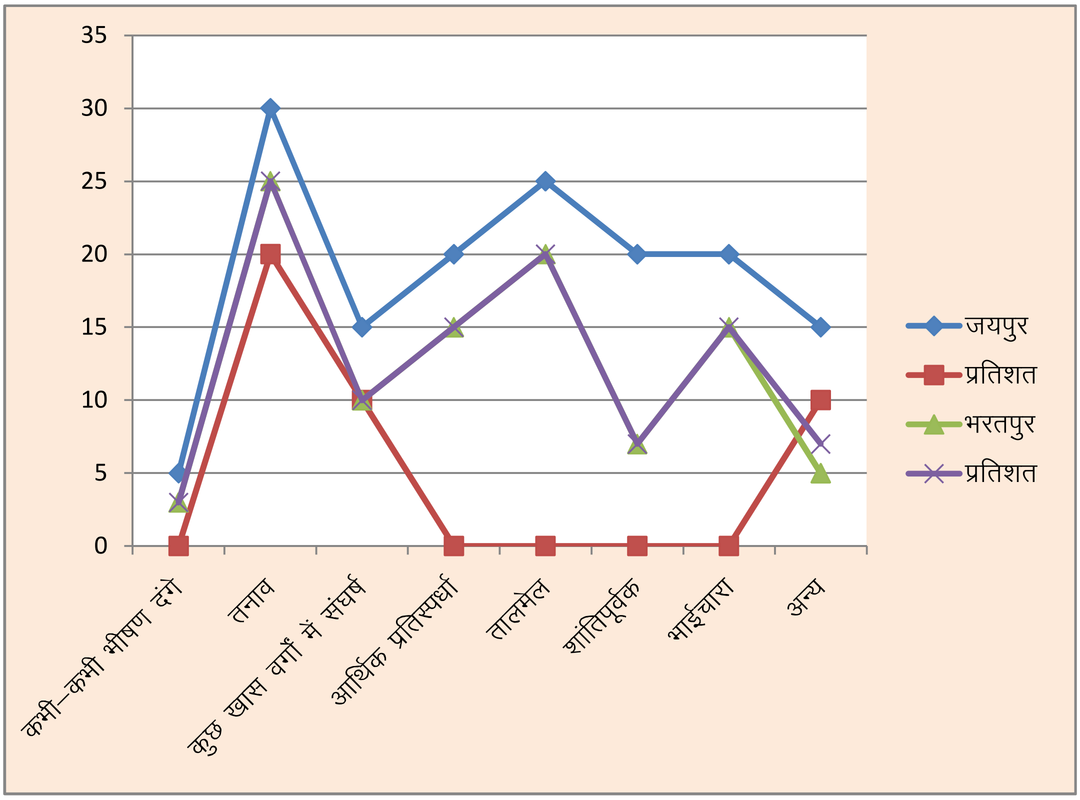

प्रश्न 17 के अन्तर्गत जयपुर तथा भरतपुर में उत्तरदाताओं के आधार पर साम्प्रदायिकता की स्थिति अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार आपसी सद्भाव तथा समता के रूप में पायी गयी है। लेकिन कुछ उत्तरदाताओं ने कभी–कभी तनाव के रूप में भी बताया है।

प्रश्न संख्या 18 में यह बताया गया है कि विभिन्न सम्प्रदायों के बीच सद्भाव और भाईचारा स्थापित करना सम्प्रदायवाद को समाप्त करने से अधिक आसान है। व्यक्ति अपनी पहचान भुलाये, यह आसान नहीं है। लेकिन बिना ऐसा किये साथ–साथ मिलजुलकर रहा जा सकता है, इस बारे में दोनों शहरों में क्रमशः 50 तथा 45 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि यह सम्भव हो सकता है, अगर यहां रहने वाले लोग शिक्षित, सुसंस्कृत तथा वे स्वविवेक के चिन्ह पोषक हों या सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तन हो जाये। इसके अतिरिक्त जयपुर तथा भरतपुर में क्रमशः 30 व 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि यह असम्भव है, शेष लोग तटस्थ राय के पाये गये हैं।

साम्प्रदायिक सद्भाव चाहने वाले उत्तरदाताओं में से अनेक खुलकर सामने आने में कठिनाई अनुभव करते हैं क्योंकि जब प्रश्न संख्या 19 के अन्तर्गत यह पूछा गया कि यदि आप अन्य धर्मावलम्बियों के साथ गहरा सद्भाव रखने लगेगें तो आपके स्वधर्मावलम्बियों की आपके प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी? लेकिन विरोध में कमी होगी। परन्तु 20 से 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि अपने धर्म के कट्टरपंथी लोग हमारे प्रति द्वेष की भावना रखेगें तथा शेष उत्तरदाताओं का मानना है कि हम इस विषय में कुछ नहीं कह सकते।

प्रश्न संख्या 20 के अन्तर्गत यह पूछा गया कि आपकी राय में जयपुर तथा भरतपुर में साम्प्रदायिकता को किस सीमा तक अथवा क्षेत्र में आगे बढ़ने

से रोका जा सकता है तो इस विषय में अधिकांश उत्तरदाताओं की राय यह है कि इसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक बढ़ाया जा सकता है।

साम्प्रदायिकता की सीमा का स्वरूप

उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि आपके शहर या कस्बे में साम्प्रदायिकता किस सीमा तक पाई जाती है तो जयपुर के उत्तरदाताओं ने यह बताया कि वहाँ लगभग 20 प्रतिशत पूर्णरूपेण और 40 प्रतिशत आंशिक रूप से साम्प्रदायिकता पायी जाती है। लगभग 33 प्रतिशत कुछ—कुछ साम्प्रदायिकता की स्थिति का अनुभव करते हैं अर्थात् जयपुर में साम्प्रदायिकता की स्थिति निम्न स्तर पर पाई जाती है। भरतपुर में भी साम्प्रदायिकता की स्थिति लगभग जयपुर के ही समान है।

सारणी सं. 8

जयपुर एवं भरतपुर में साम्प्रदायिकता की स्थिति

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता की सीमा/मात्रा	आवृत संख्या जयपुर में	प्रतिशत	आवृत संख्या भरतपुर में	प्रतिशत
1.	पूर्ण रूप से	20	13.33	15	15
2.	आंशिक रूप से	40	26.67	35	35
3.	कुछ—कुछ मात्रा में	60	40	30	30
4.	तटस्थ	30	20	20	20
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

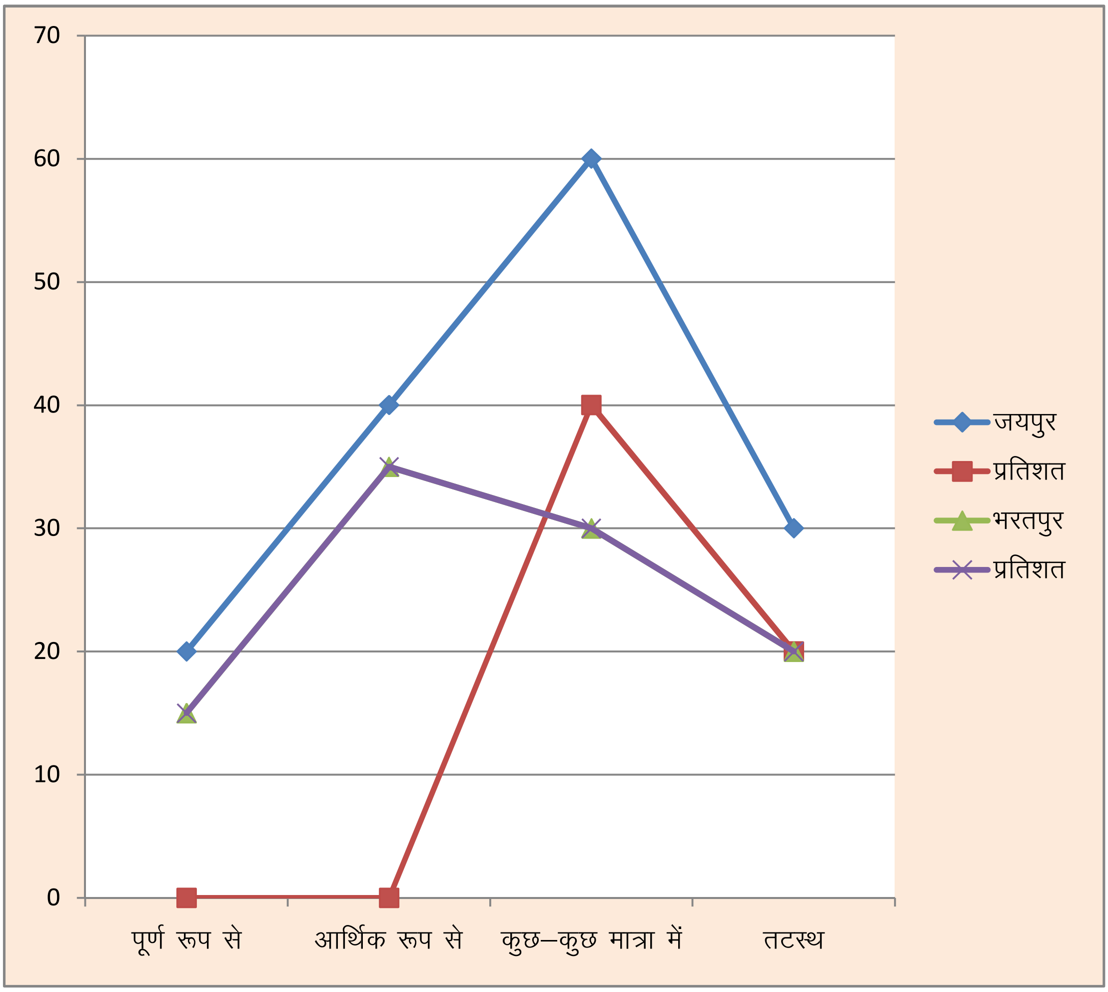

साम्प्रदायिकता का क्रियात्मक रूप

उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि उनको अन्य धर्म के लोगों से पर्याप्त सहयोग मिलता है तो उन्होंने बताया कि जयपुर में उन्हें अधिकांशत सहयोग मिलता है, जबकि भरतपुर में सहयोग की मात्रा कम थी।

सारणी सं. 9

जयपुर तथा भरतपुर में विभिन्न धर्मो के लोगों से सहयोग

क्र. सं.	विभिन्न धर्मावलम्बियों से सहयोग	जयपुर में आवृत्ति 150 लोगों के आधार पर	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत्ति 100 लोगों के आधार पर	प्रतिशत
1.	हाँ	40	26.67	25	25
2.	नहीं	10	6.67	15	15
3.	कुछ कुछ	80	53.33	35	35
4.	तटस्थ	20	13.33	25	25
	कुल योग	150	100	100	100

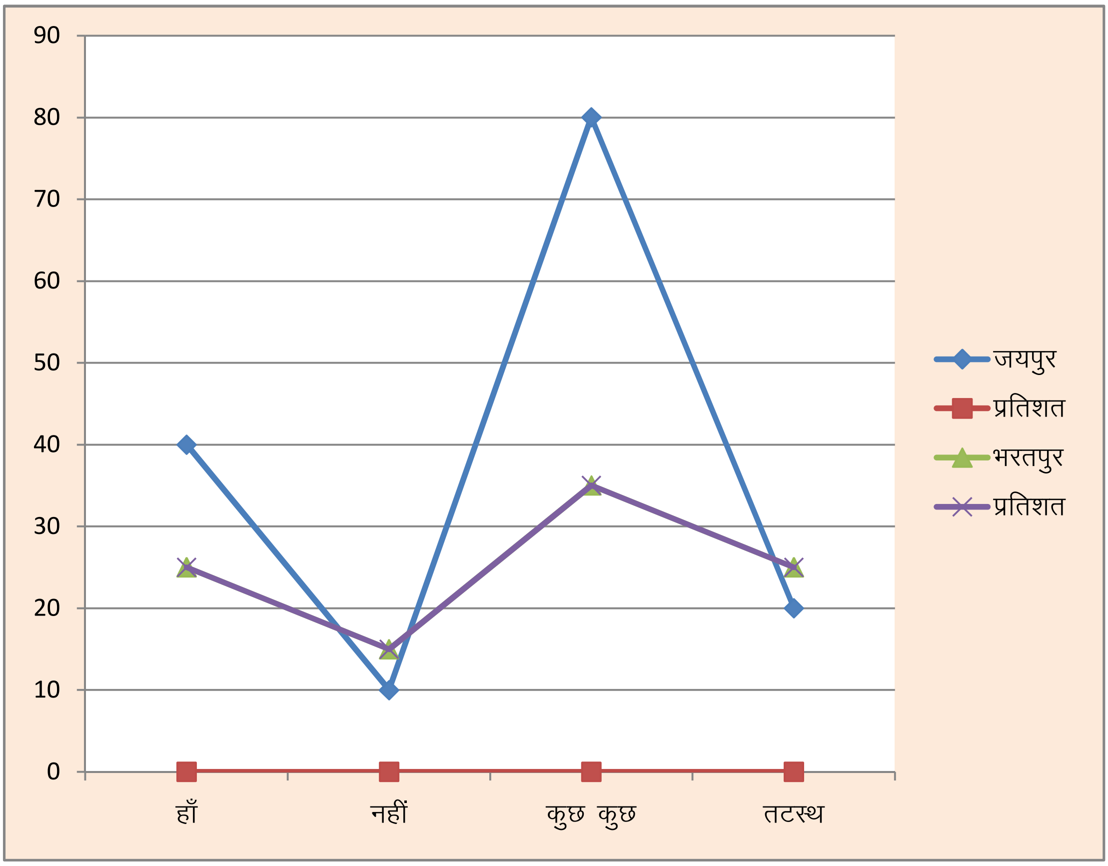

राजस्थान में विभिन्न समुदायों द्वारा धर्म तथा उससे सम्बन्धित संतो, अवतारों, त्योहारों आदि को बड़ा महत्व दिया जाता है। प्रायः सभी धर्मावलम्बी अपनी धार्मिकता को पुष्ट एवं प्रबल बनाने के लिए अधिकाधिक मात्रा में उत्सव, त्योहार आदि मनाते तथा उसका प्रदर्शन करते हैं। इन प्रदर्शनों से वे अपने आपको सशक्त तथा संगठित अनुभव करते हैं। इस विषय में यह जानना महत्वपूर्ण है कि ऐसे प्रदर्शन करने तथा उत्सव मनाने में क्या उन्हें कोई कठिनाई अनुभव हुई है। उत्सवों, प्रदर्शनों आदि को संगठित करने में जयपुर में उत्तरदाताओं का यह कहना कि ऐसी कोई विशेष कठिनाई नहीं आयी। भरतपुर में कठिनाई अनुभव करने वालों का प्रतिशत जयपुर की तुलना में कुछ अधिक दिखायी पड़ा क्यों ?

सारणी सं. 10

अपने धर्म से सम्बन्धित उत्सवों, प्रदर्शन आदि को जयपुर तथा भरतपुर में संगठित करने में कठिनाईयां

क्र. सं.	कठिनाई का अनुभव	जयपुर में 150 उत्तरदाताओं में	प्रतिशत	भरतपुर में 100 उत्तरदाताओं में	प्रतिशत
1.	हां	10	6.66	15	15
2.	नहीं	30	20	25	25
3.	कभी–कभी	70	46.67	50	50
4.	तटस्थ	40	26.67	10	10
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

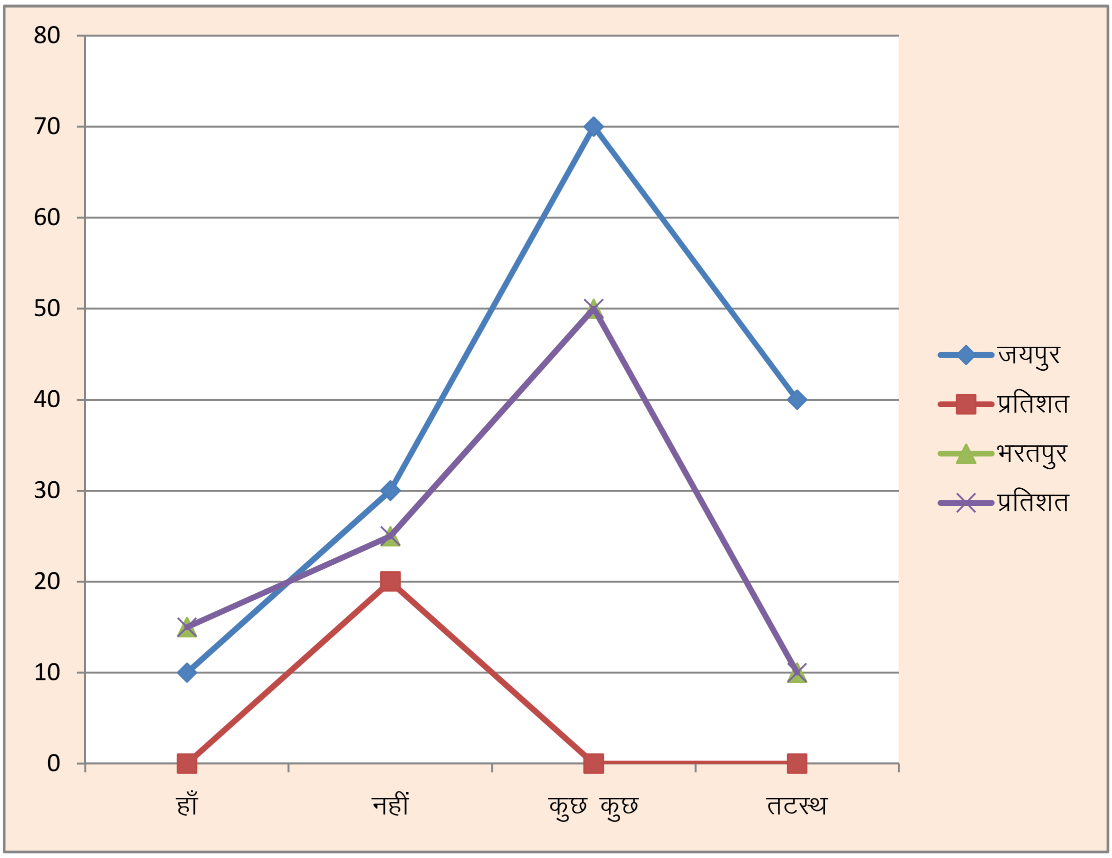

इसके अतिरिक्त जब अन्य धर्मावलम्बियों के द्वारा सामान्य जीवन में जयपुर तथा भरतपुर में आपसी व्यवहार के स्वरूप में उत्तरदाताओं से पूछने से पता चलता है कि जयपुर में 46.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अच्छा व्यवहार, 26.67 प्रतिशत का ठीक–ठीक तथा 23.35 प्रतिशत का बहुत अच्छा पाया है। इसी तरह भरतपुर में 35 प्रतिशत का व्यवहार अच्छा, 25 प्रतिशत का ठीक–ठीक तथा 20 प्रतिशत तटस्थ तथा 15 प्रतिशत बहुत अच्छा पाया गया है। अर्थात् इससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों शहरों में विभिन्न धर्मावलम्बियों के प्रति आपसी व्यवहार अच्छा है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली एवं साम्प्रदायिकता

वर्तमान समाज में साम्प्रदायिकता को बनाये रखने में शिक्षा संस्थाओं का संगठन, शिक्षकों के दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियाँ एवं एक विशेष प्रकार की सहिष्णुता, बुद्धिमता व आधुनिकता अपनाने से आपस में एकता की भावना पैदा की जा सकती है। यहां वर्तमान प्रश्न में यह दिखाने की कोशिश की गई है कि शिक्षा में बढ़ते धार्मिक प्रभाव से निराशा होने की आवश्यकता नहीं बल्कि इसे एक चुनौती समझकर इसका, समुचित रूप से सामना करना चाहिए। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि साम्प्रदायिकता की भावना को खत्म करने की आज अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि एम.एस.गौरे के अनुसार भारत जैसे जटिल एवं अनेक धर्मो और समाज वाले राज्य के लिए बुद्धिमानी की नीति है यह वह मूल्य है जिसको देश की शिक्षा व्यवस्था में समर्थन एवं अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए।

यद्यपि औपचारिक शिक्षा प्रणाली की तुलना में प्राकृतिक समूह परिवार समूह तथा मित्रमंडली आदि साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं, तथा उनका प्रभाव दीर्घकाल मानव के दृष्टिकोण, व्यवहार और जीवन पर पड़ता है, फिर भी औपचारिक शिक्षा प्रणाली का प्रभाव भी कम नहीं होता। ज्यों–ज्यों मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है और यह व्यापक समाज के बीच रहता है। इस विषय पर यह प्रश्न किया गया कि क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली साम्प्रदायिकता को रोकने व लाने के लिए उत्तरदायी मानी गई है, उनके उत्तर सारणी संख्या 11 में दिये गये हैं। इसी से मिलता–जुलता प्रश्न यह पूछा गया कि क्या वे साम्प्रदायिकता को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था एवं आधुनिक सुविधाओं से जुड़ा हुआ पाते हैं। इस विषय में उनका दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट नहीं पाया गया तथा वे साम्प्रदायिकता एवं आधुनिक शिक्षा को तथा आधुनिक सुविधाओं को थोड़ा बहुत ही जुड़ा हुआ पाते हैं।

सारणी सं. 11

साम्प्रदायिकता में शिक्षा प्रणाली का योगदान

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में आवृत संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	हाँ	20	13.33	15	15
2.	नहीं	60	40	40	40
3.	कुछ—कुछ	40	26.67	35	35
4.	तटस्थ	30	20	10	10
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

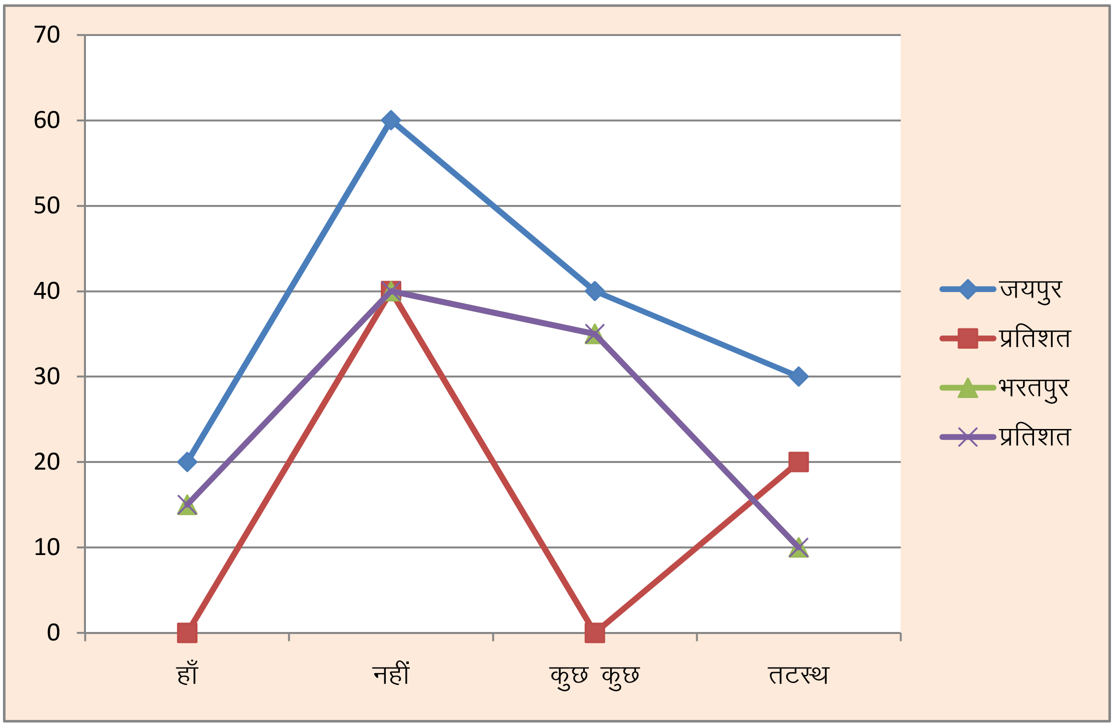

सारणी सं. 12

साम्प्रदायिक समस्या बढ़ाने में आधुनिक शिक्षा व सुविधाओं का योगदान

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में आवृत संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	हां	30	20	15	15
2.	नहीं	70	46.67	45	45
3.	कुछ—कुछ	40	26.67	30	30
4.	तटस्थ	10	6.66	10	10
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

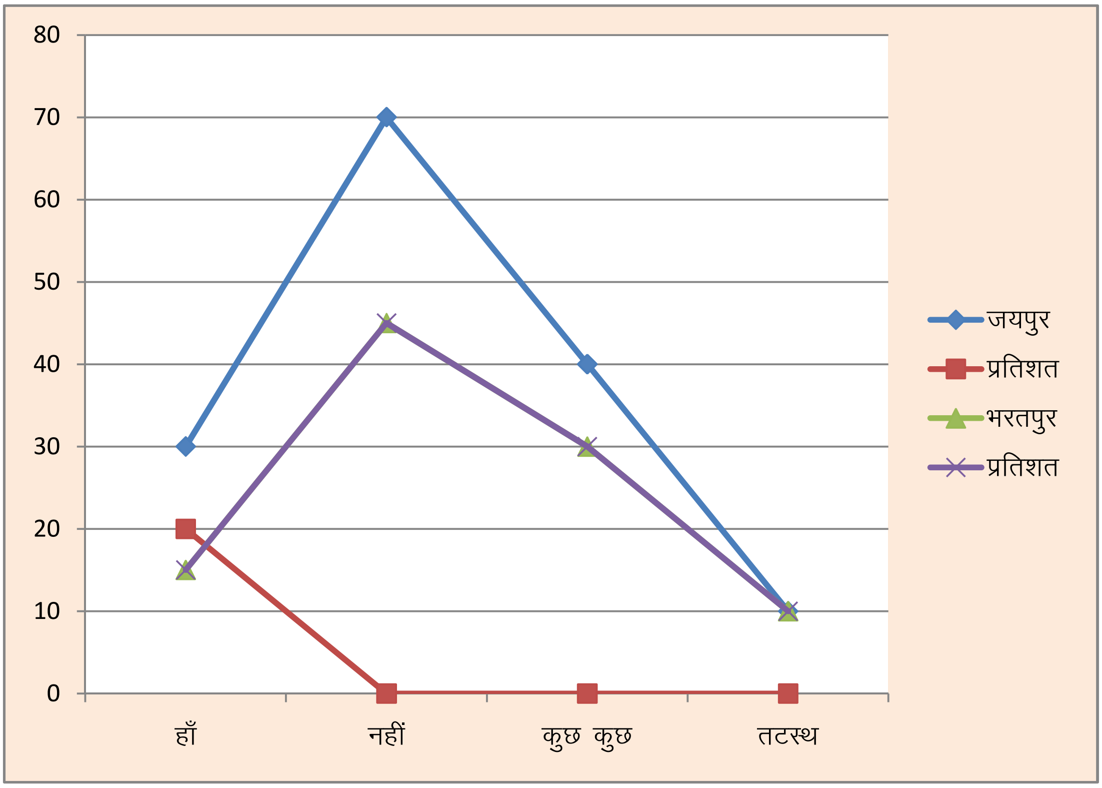

जयपुर तथा भरतपुर में उत्तरदाताओं से प्रश्न में साम्प्रदायिकता की स्थिति को बनाये रखने वाले तत्वों व सम्बन्धों की पूछताछ की गई तो दोनों शहरों में क्रमशः 40, 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऐतिहासिक व परम्परागत घटनाओं को बदलकर लिखने व स्वार्थी राजनेताओं से सावधान रहने की बात दोहराई। 20 प्रतिाश्त उत्तरदाताओं ने आर्थिक आधार पर आर्थिक समानता पर अधिक जोर दिया। शेष उत्तरदाताओं ने आपसी भाईचारे के आधार पर राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया जिससे साम्प्रदायिकता की भावना को रोका जा सके।

साम्प्रदायिकता एवं धर्म

प्रायः साम्प्रदायिकता को धर्म से जुड़ा हुआ माना जाता है, प्रायः सभी धर्म अपने मौलिक एवं औपचारिक रूप में साम्प्रदायिकता का पक्ष लेते हैं, अधिकांश उत्तरदाताओं के विचार उसी प्रकार थे।

किन्तु यह देखा गया है कि वर्तमान समय में लोग अपने धर्म के प्रति न तो उतनी अधिक जानकारी रखते हैं और न ही उतनी अधिक भक्ति भावना। इसलिए पूर्व प्रश्न का उत्तर इस जानकारी से जुड़ा हुआ है कि वे अपने धर्म के प्रति कितनी जानकारी रखते हैं, यह पूछे जाने पर लगभग 43 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि अपने धर्म के प्रति वे सामान्य आस्था ही रखते हैं, केवल 15 प्रतिशत लोग ही अपने धर्म के बारे में गहरी तथा पूर्ण जानकारी रखते हैं।

सारणी सं. 13

साम्प्रदायिकता धर्म का अभिन्न अंग

क्र. सं.	धर्म के विभिन्न अंग	जयपुर में आवृत संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	हाँ	60	40	40	40
2.	नहीं	30	20	25	25
3.	कुछ–कुछ	50	33.33	30	30
4.	तटस्थ	10	6.67	5	5
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

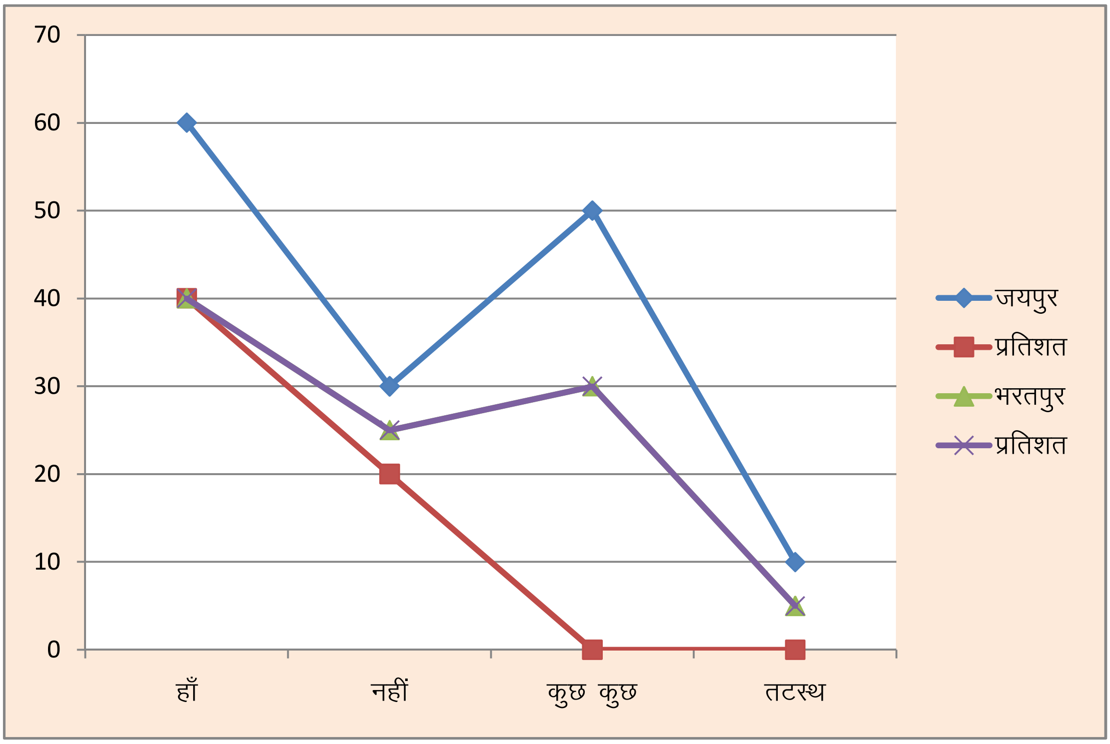

वर्तमान राजनीति और साम्प्रदायिकता की समस्या को बढ़ाने में अधिकांश लोगों की यह विचारधारा नहीं है कि राजनीति ने उसको बढ़ावा दिया है फिर भी उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि वर्तमान राजनीति ने क्या

साम्प्रदायिकता की समस्या को अधिक गहरा बनाया है अथवा उसका स्वरूप बदला है। इस पर जयपुर में 53 प्रतिशत मतदाताओं तथा भरतपुर में 60 प्रतिशत मतदाताओं का यह मानना था कि वर्तमान राजनीति ने साम्प्रदायिकता की समस्या को गहरा किया है। इसी प्रकार 26 या 30 प्रतिशत मतदाताओं का यह मानना है कि राजनीति ने ही साम्प्रदायिकता का विस्तार किया है। शेष उत्तरदाताओं के अनुसार साम्प्रदायिक समस्या वैसी ही है केवल उसका स्वरूप बदला है।

सारणी सं. 14

वर्तमान राजनीति में साम्प्रदायिकता की समस्या की भूमिका

क्र. सं.	साम्प्रदायिकता का स्वरूप	जयपुर में आवृत संख्या 150 में से उत्तरदाताओं के विचार	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से उत्तरदाताओं के विचार	प्रतिशत
1.	साम्प्रदायिक समस्या गहरी हुई है	80	53.33	60	60
2.	साम्प्रदायिक समस्या का विस्तार बढ़ा है	40	26.67	30	30
3.	साम्प्रदायिक समस्या का स्वरूप बदला है	30	20	10	10
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

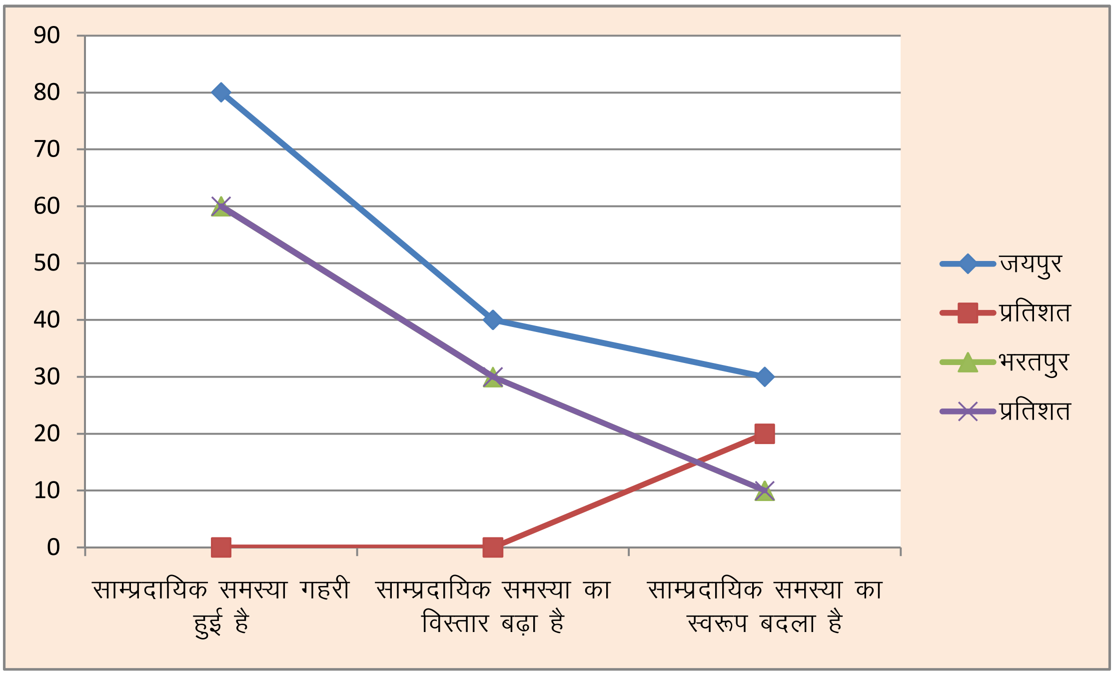

जयपुर तथा भरतपुर में विभिन्न राजनैतिक दलों के विषय में जब उत्तरदाताओं से यह पूछा गया है कि विभिन्न राजनैतिक दलों में से कौनसा राजनैतिक दल साम्प्रदायिकता में वृद्धि के आधार पर (वरीयता) वाला दिखायी पड़ता है तो अधिक से अधिक (59 प्रतिशत) लोगों ने जयपुर में कांग्रेस को साम्प्रदायिकता में वृद्धि के लिए प्रथम वरीयता वाला माना है तथा उसके पश्चात् साम्यवादी पार्टीयों को (23 प्रतिशत) द्वितीय वरीयता वाला तथा जनता दल को (17 प्रतिशत) लोगों ने साम्प्रदायिकता में वृद्धि के लिए तृतीय वरीयता वाला बताया। भारतीय जनता पार्टी, अकाली दल तथा मुस्लिम लीग को क्रमशः 3, 7 व 10 प्रतिशत मतदाताओं ने भी क्रमशः इसी वरीयता को जिम्मेदार माना है। इन उत्तरों से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में कांग्रेस (आई) को साम्प्रदायिकता फैलाने का पक्षधर बहुसंख्या में मानते हैं। जबकि अन्य पार्टियों को इनसे कम मात्रा में साम्प्रदायिकता का पक्षधर मानते हैं।

सारणी सं. 15

जयपुर में राजनैतिक दलों में साम्प्रदायिकता का स्वरूप

क्र. सं.	राजनीतिक दल	जयपुर में राजनीतिक दलों का साम्प्रदायिकता वृद्धि में वरीयता क्रम 150 उत्तरदाताओं में से प्रतिशत		भरतपुर में राजनीतिक दलों का साम्प्रदायिकता वृद्धि में वरीयता क्रम 100 उत्तरदाता में से प्रतिशत	
1.	कांग्रेस (आई)	70	46.67	45	45
2.	साम्यवादी दल	30	20	20	20
3.	जनता दल	20	13.33	10	10
4.	भारतीय जनता पार्टी	5	3.33	3	3
5.	अकाली दल	10	6.67	7	7
6.	मुस्लिम लीग	10	6.67	10	10
7.	क्षेत्रीय पार्टीयां	5	3.33	5	5
	कुल योग	150	100	100	120

जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि जयपुर तथा भरतपुर में उनके धर्म से सम्बन्धित समुदाय में नगरीय, राज्य स्तरीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में कार्यरत नेताओं के नाम पूछे गये तो दोनों क्षेत्रों में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया अर्थात् तटस्था प्रकट की।

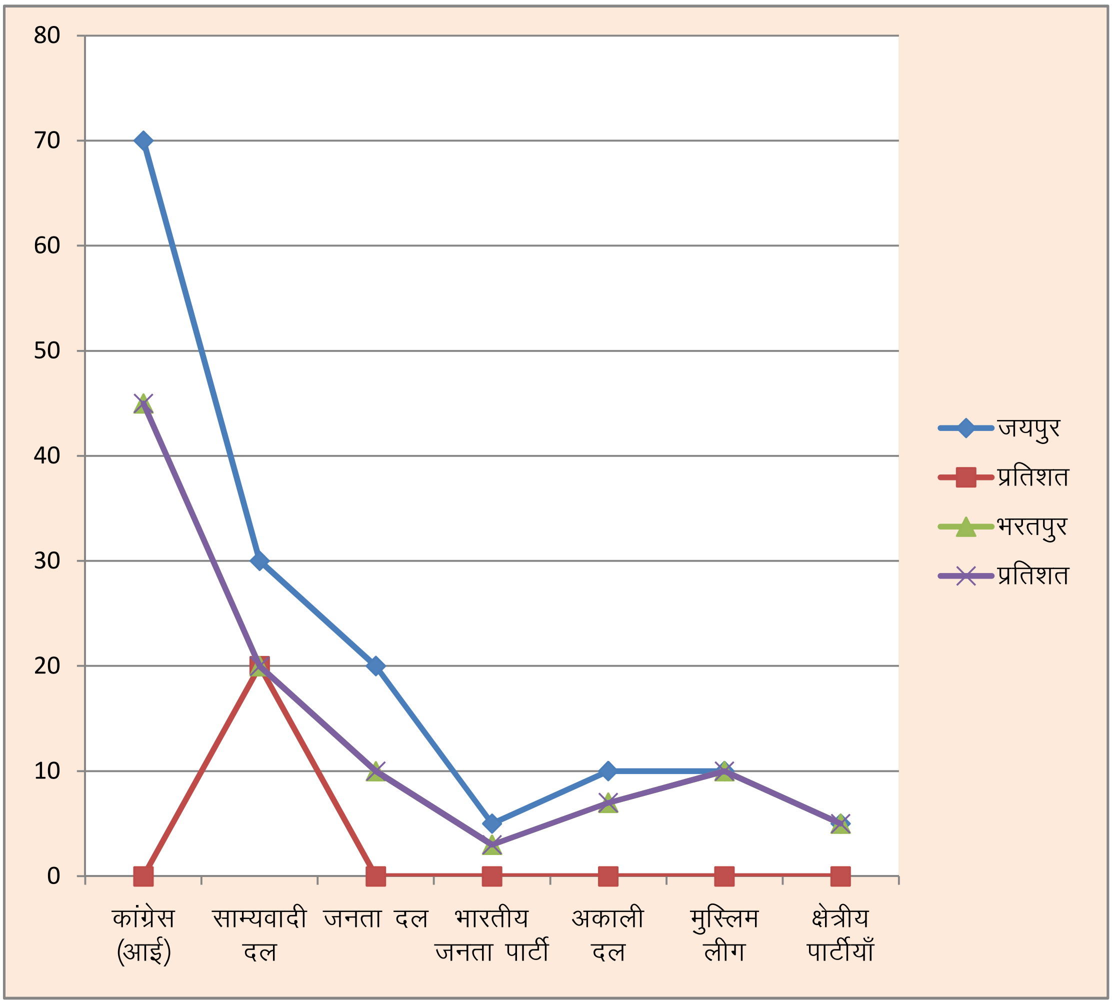

लेकिन जब उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि नेतागण किस सीमा तक सामान्य हितों के लिए कार्य कर पाये हैं तो जयपुर तथा भरतपुर में क्रमशः 46.67 व 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कुछ–कुछ मात्रा में कार्यो को स्वीकार किया तथा 26.66 तथा 20 प्रतिशत लोगों ने तटस्था जाहिर की और लगभग 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अत्यधिक कार्य को स्वीकार किया।

सारणी सं. 16

सम्प्रदायों के मध्य कार्य करने वाले नेताओं का सम्मान

क्र. सं.	सम्मान का स्वरूप	जयपुर में आवृत्त संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	अत्याधिक	25	16.67	15	15
2.	अधिक	35	23.33	30	30
3.	सामान्य	50	33.33	40	40
4.	निम्न	25	16.67	10	10
5.	कुछ नहीं	15	10	5	5
	कुल योग	150	100	100	100

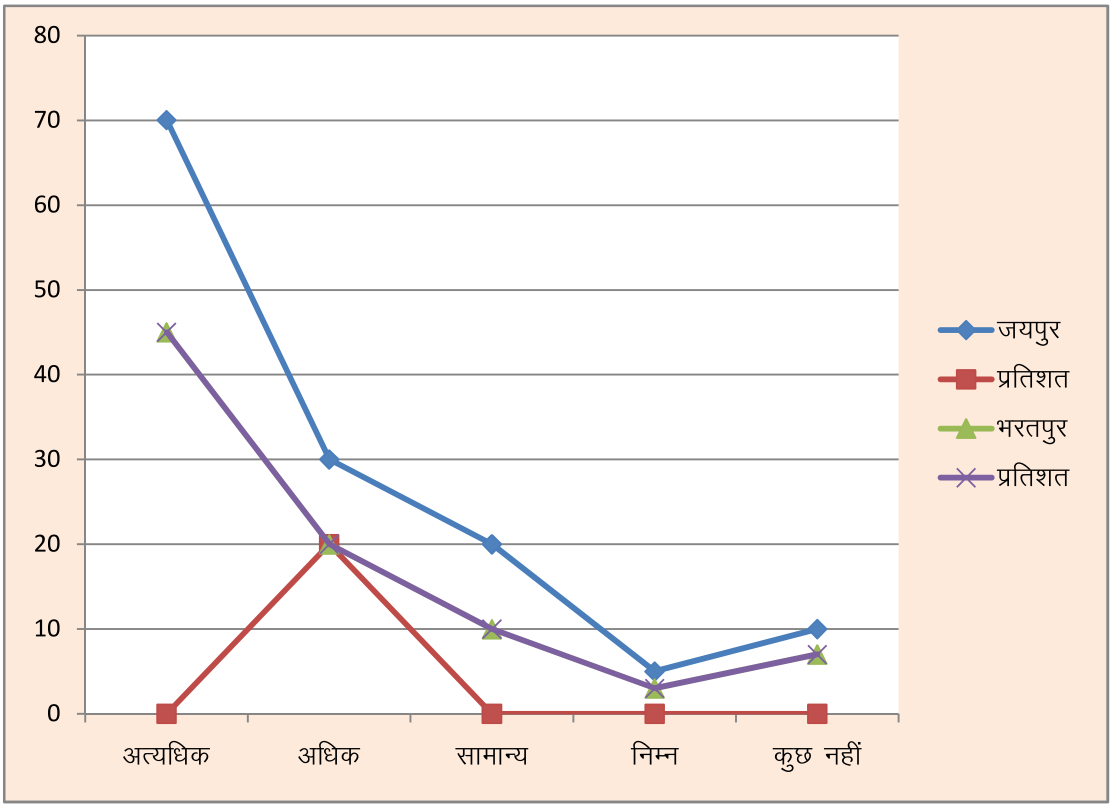

उत्तरदाताओं से जब पाँच प्रश्न निम्नलिखित किये गये थे। तो इन प्रश्नों का उत्तर अधिकांश उत्तरदाता नहीं दे सके, क्योंकि उनमें से बहुत कम पूर्णकालिक राजनेता अथवा राजनीतिक दलों के सदस्य थे। इसी कारण वे चुनाव लड़ने के विषय में अपने मत का प्रत्यक्ष विवेचन भी नहीं कर सके किन्तु उन्होंने बताया कि चुनावों के कारण साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ती है। जब यह पूछा गया कि चुनाव जीतने के लिए क्या बहुसंख्य धर्मावलम्बियों से ही खड़ा होना आवश्यक है तो जयपुर में 45 प्रतिशत तथा भरतपुर में 35 प्रतिशत मतदाताओं का यह मानना था कि ऐसा करना आवश्यक है तथा साथ ही उसी क्रम से 27 प्रतिशत तथा 28 प्रतिशत उत्तरदाता इसे आवश्यक नहीं मानते। इस आधार पर इन क्षेत्रों के उत्तरदाताओं की साम्प्रदायिक प्रवृत्ति का पता चलता है।

सारणी सं. 17

चुनावों के कारण साम्प्रदायिकता में वृद्धि

क्र. सं.	**साम्प्रदायिकता का स्वरूप**	**जयपुर आवृत संख्या 150 में से**	**प्रतिशत**	**भरतपुर आवृत संख्या 100 में से**	**प्रतिशत**
1.	वृद्धि	40	26.67	20	20
2.	कमी	60	40	50	50
3.	तटस्थ	50	33.33	30	30
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

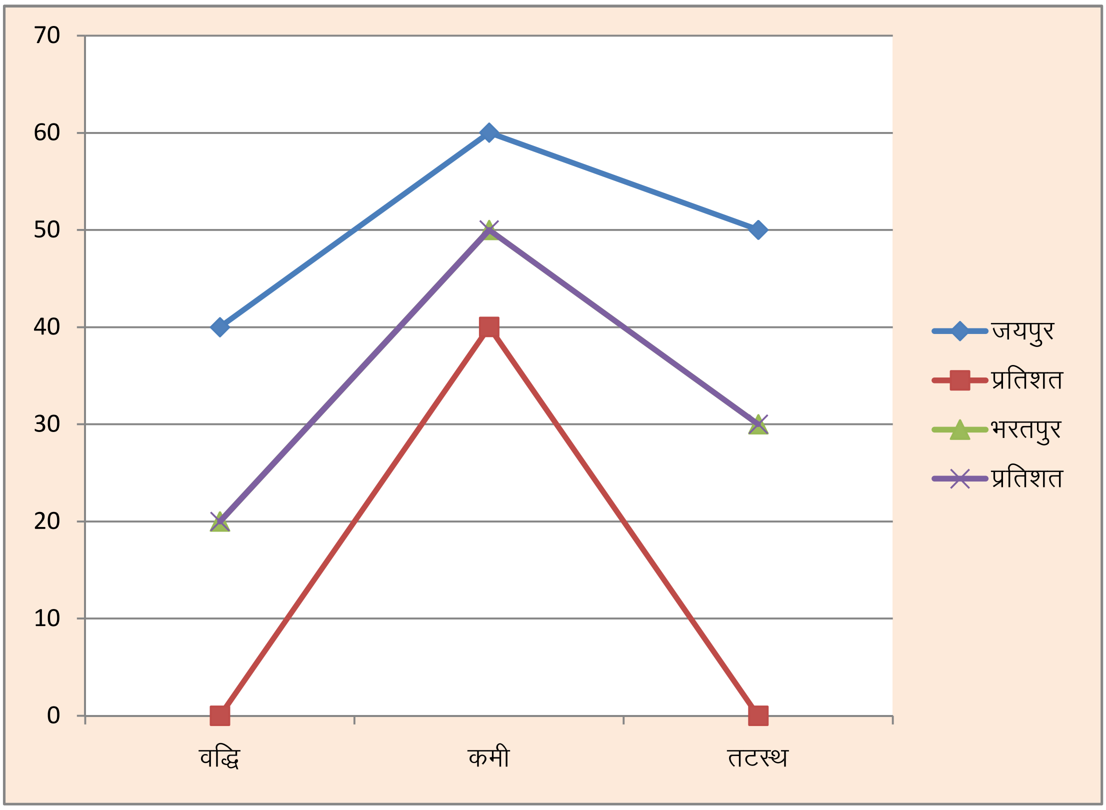

अल्पसंख्यकों की स्थिति एवं साम्प्रदायिकता

यद्यपि यह स्पष्ट है कि जयपुर तथा भरतपुर दोनों स्थानों पर हिन्दू धर्म मतावलम्बियों का बाहुल्य है, फिर भी यह जानना अति आवश्यक था कि क्या अन्य धर्मो के लोग इस बाहुल्य के मध्य अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं तथा वे अपने आपको सुरक्षित बनाने के लिये क्या–क्या उपाय करते हैं। अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह विचार व्यक्त किया कि हिन्दू बहुसंख्य के मध्य में असुरक्षा अनुभव नहीं होती तथा वे अपने समुदाय के लोगों के बीच मिलने जुलने, त्योहार पर्व आदि मनाने, विवाह–शादी तथा समाज सुधार एवं रोजगार आदि के विषय में सेवाएँ करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं करते। जब उनसे पूछा गया कि क्या हिन्दू बहुल सरकार उनके हितों का ध्यान रखती है तो जयपुर व भरतपुर के उत्तरदाताओं ने बहुसंख्यकों का समर्थन किया, यद्यपि

अन्यत्र बहुमत कुछ घटा हुआ पाया गया, सभी उत्तरदाताओं से जब यह पूछा गया कि उनकी दृष्टि से अल्पसंख्यकों के हितों के लिए और क्या उपाय किये जाने चाहिए, तो उन्होंने अनेक सुझाव व विचार प्रकट किए जिनमें अधिकांश उत्तरदाताओं ने –

- सरकार में उचित प्रतिनिधित्व, अल्पसंख्यकों में शिक्षा का प्रसार, रोजगार की सुविधा एवं सामाजिक सुरक्षा।
- धर्म के संस्थात्मक स्वरूप का निराकरण को बताया तथा शेष उत्तरदाताओं ने अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण व्यवस्था करनी चाहिए।
- राजनीति में अल्पसंख्यकों को उचित स्थान देना तथा आर्थिक विकास करना चाहिए।

सारणी सं. 18

बहुसंख्यक धर्मों के मतावलम्बियों से बनी सरकार अल्पसंख्यकों के हितों के पक्ष में विचार

क्र. सं.	उत्तरदाताओं के विचार	जयपुर में आवृत संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	हाँ	50	33.33	35	35
2.	नहीं	25	16.67	15	15
3.	कुछ–कुछ	40	26.67	25	25
4.	तटस्थ	35	23.33	25	25
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

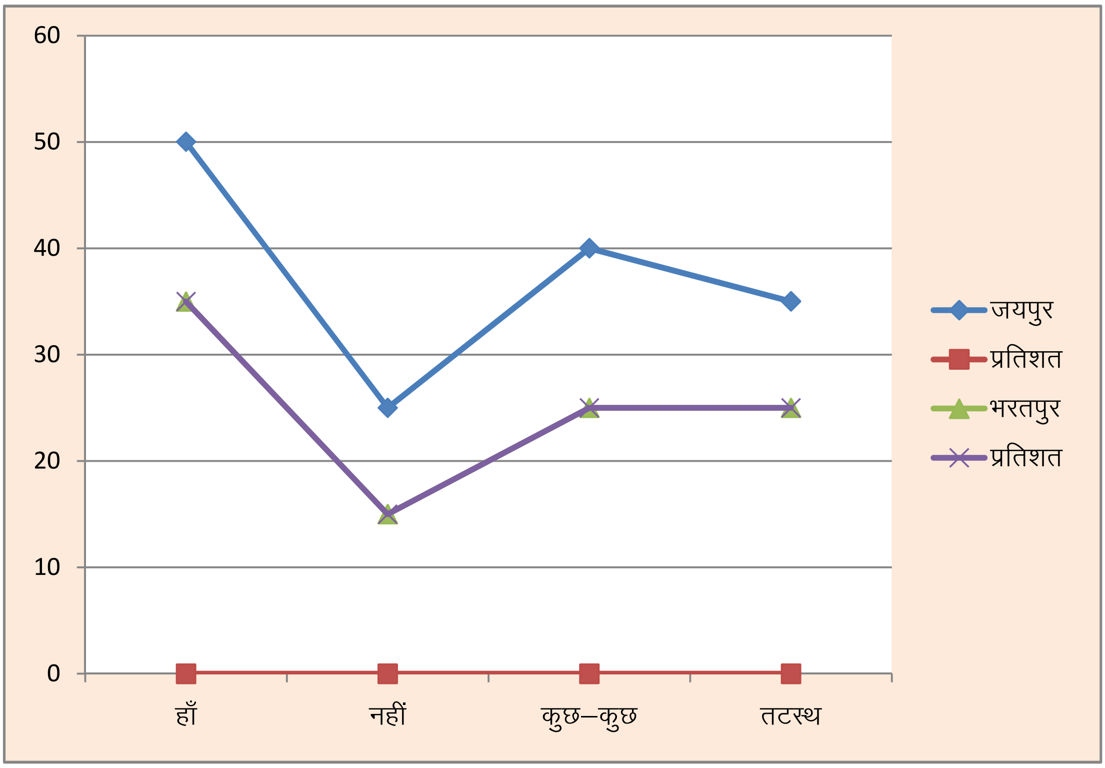

सारणी सं. 19

नौकरशाही का आचरण

क्र. सं.	उत्तरदाताओं का विचार	जयपुर में आवृत्त संख्या 150 में से	प्रतिशत	भरतपुर में आवृत्त संख्या 100 में से	प्रतिशत
1.	हाँ	50	33.33	35	35
2.	नहीं	25	16.67	15	15
3.	कुछ–कुछ	35	23.33	20	20
4.	तटस्थ	40	26.67	30	30
	कुल योग	**150**	**100**	**100**	**100**

वर्तमान राजनीति व समाज में प्रशासन तन्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रशासन तन्त्र राष्ट्रीय शासन में नीचे से ऊपर तक सूत्र एवं स्टाफ एकरूप कार्य करता है अर्थात सभी राष्ट्रीय नीतियों का क्रियान्वयन नौकरशाही करवाती है। नौकरशाही का लोकतन्त्र में महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि लोकतन्त्र में निर्णय लेने व लागू करने में प्रशासन तन्त्र सरकार का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

अतः जब उत्तरदाताओं से नौकरशाही के आचरण के बारे में पूछा गया तो दोनों शहरों में 50 तथा 35 प्रतिशत लोगों के अनुसार निष्पक्ष कार्य करने के आचरण को स्वीकार किया है तथा शेष 26 तथा 30 प्रतिशत ने तटस्थता जाहिर की है।

जब जयपुर तथा भरतपुर में उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि राजस्थान में साम्प्रदायिकता किस सीमा तक पायी जाती है तो दोनों शहरों में अधिकांश उत्तरदाताओं ने बताया कि यहाँ साम्प्रदायिकता न्यूनाधिक रूप में पायी जाती है तथा राजस्थान एक ऐसा राज्य है जहां साम्प्रदायिक सौहार्द अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अधिक है। लेकिन कुछ उत्तरदाताओं का यह भी कहना है कि वर्तमान समय में राजस्थान में भी साम्प्रदायिक घटनाऐं घटने लगी है, निकट भविष्य में खाड़ी राष्ट्रों से प्राप्त आय के दुष्परिणाम प्रतीत होने लगे हैं जिससे यहाँ स्थिति खराब होने लगी है और स्थान विशेष में भी वर्तमान में स्थानीय कारणों तथा लोगों के स्वार्थों से छुट–पुट साम्प्रदायिक घटनाएँ घटने लगी है।

साथ ही कुछ अन्य प्रमुख कारक जैसे, अच्छा व्यवहार पारिवारिक एवं पुश्तैनी स्थिति, शिक्षण संस्थाऐं, राजनैतिक दल एवं समुदाय आदि प्रभाव के आधार के रूप में सामने अवश्य आते हैं। संक्षेप में प्रभाव के आधारों के विषय में यही माना जा सकता है कि सभी कारकों का सम्मिलित सहयोग ही किसी स्थान पर साम्प्रदायिकता के प्रभाव को कम करने में प्रभावशाली बन सकते हैं।

जयपुर तथा भरतपुर के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के इस अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहां 'साम्प्रदायिकता' की समस्या लोगों के परम्परागत दृष्टिकोणों, विचारों, आपसी हितों तथा अभिरूचियों आदि में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है और वर्तमान में भी यहाँ साम्प्रदायिकता की समस्या न्यूनाधिक रूप में बनाये रखने में भी इन प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण सहयोग है।

प्रस्तुत शोध तथा अध्याय में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जयपुर तथा भरतपुर में राजनैतिक जागरूकता तथा सामाजिक एवं राजनैतिक समन्वय के सम्बन्ध

का दृष्टिगोचर होना है। राजनैतिक जागरूकता व आपसी समन्वय के मध्य पाये जाने वाले पूर्ण सकारात्मक सम्बन्ध से प्रतीत होता है कि जागरूकता समन्वय के निर्माण में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कारक है। अतः साम्प्रदायिकता को अन्य आधारों के अतिरिक्त, राजनैतिक रूप से जागरूक रखकर भी रोका जा सकता है, जिससे वह जनसाधारण को पर्याप्त मात्रा में अपने प्रभाव में रख सकने में असमर्थ हो सके।

अन्त में, साम्प्रदायिकता के वर्तमान संदर्भ से सम्बन्धित साधनों या उपायों के बारे में राय जाननी चाही तो दोनों शहरों में उत्तरदाताओं में से अधिकांश अर्थात् 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि आर्थिक समानता पर बल देना, सर्वधर्म समभाव भावना स्थापित करना, परम्परागत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बदलकर लिखना आदि माना है, लेकिन शेष लोगों में से 30 प्रतिशत लोगों ने शिक्षा स्तर में परिवर्तन करने तथा धार्मिक स्थानों पर सभी धर्मो के लोगों को आने–जाने के लिए प्रेरित करने में प्रयास करने आदि पर बल दिया है और शेष 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने धार्मिक कट्टरपन एवं कठमुल्लावाद का अन्त करने एवं संयम रखने पर बल दिया है। जिससे वर्तमान समय में भी इन दोनों शहरों में साम्प्रदायिक समस्या न्यूनाधिक रूप में पायी गयी है।

संदर्भ सूची

1. दीक्षित, प्रभा; "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मैकमिलन, (1980), पृ.सं. 41.
2. आजाद, मौलाना; "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली, ओरियन्टलोंगमैन प्रेस, (1958), पृ.सं. 131.
3. माथुर, पी.सी.; "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 30–31.
4. वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", दी इंडिया जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज, (दिसम्बर, 1987), पृ.सं. 69–86.
5. माथुर, वाई.वी.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", न्यू दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिशिंग, (1972), पृ.सं. 220–221.
6. पुंताम्बेकर; "दी सैक्यूलर स्टैट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949), पृ. सं. 170–171.
7. गाँधी, एम.के.; "दी वे टू कम्यूनल हारमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958), पृ.सं. 36–37.
8. चन्द्रा, विपिन; "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, (1984), पृ.सं. 169.
9. मेहता एवं पटवर्धन; "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इण्डिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान, (1942), पृ.सं. 19.
10. कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988), पृ.सं. 241–253.
11. कृष्ण, गोपाल; "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली, एन.ए. पब्लिशर, (1981), पृ.सं. 29.

12. श्रीनिवास एम.एन.; “आधुनिक भारत में जातिवाद”, भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987), पृ.सं. 159.
13. डी. स्मिथ विल्फ्रेड; “मॉर्डन इस्लाम इन इंडिया”, लाहौर, पेंग्विन बुक हाउस, (1943), पृ.सं. 41.
14. जैन, एम.एस.; “आधुनिक भारत में मुसिलम राजनीतिक विचारक”, दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 27.
15. खाँ, अहमद, सर सैय्यद; “दी कॉज ऑफ दी इण्डिया रिवोल्ट”, दिल्ली, कल्पाज पब्लिकेशन, (1972), पृ.सं. 32–36.
16. शर्मा, जी.एन.; “राजस्थान का इतिहास”, नई दिल्ली, कृष्णा प्रकाशन, (1983), पृ.सं. 12.
17. कालूराम; ”राजस्थान का इतिहास“, जयपुर पंचशील प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 226.
18. अवस्थी, अमरेश्वर; ”आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन“, दिल्ली, नन्दा प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 313.
19. अमिसाज, अहमद; ”परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम“, दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वाटेरटली, (अक्टूबर, 1972), पृ.सं. 230.
20. चटर्जी, पी.सी.; ”सेक्यूलर वेल्यू और सैक्यूलर इण्डिया“, दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985), पृ.सं. 117–119.
21. सोमरा, करणसिंह; ”साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना“, प्रिन्टवैल, (1992), पृ.सं. 120–125.
22. मोहम्मद, चाँद; ”राजस्थान में साम्प्रदायिकता ज़हर के विरूद्ध आह्वान“, दैनिक नवज्योति, (मार्च 27, 1987)
23. सिन्हा, बी.के.; ”सेक्यूलरिज्म इन इण्डिया“, बम्बई, लालवानी पब्लिशिंग हाऊस, (1968), पृ.सं. 230–231.

24. राणदेवे, बी.टी.; "जाति और वर्ग", नई दिल्ली, नेशनल बुक सेन्टर, (1983), पृ.सं. 175–178.
25. चटर्जी, पी.सी.; सेक्यूलर वैल्यू ऑर सेक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985), पृ.सं. 185–190.
26. अमिसाज, अहमद; "परस्पैक्टिव आन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वार्टरली, (1972), पृ.सं. 68–69.
27. इम्तियाज, अहमद; "सैक्यूलर स्टेट, कम्यूनल सोसायटी", फैक्टशीट 2, कम्यूनीलज्म दी रेंजर्स एज, बम्बई फॉकिस्ट कलेक्टर वर्क, (1983), पृ.सं. 89–94.
28. अवस्थी, अमरेश्वर; "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", दिल्ली, विकास पब्लिशिंग (1985), पृ.सं. 313.
29. अन्सारी, एम.ए.; "मुस्लिम एण्ड दी कांग्रेस", दिल्ली, विकास पब्लिशिंग, (1979), पृ.सं. 23–27.
30. इंजीनियर, अली असगर; "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू आवर पेज", बम्बई, इस्लामिक स्टैडिज, (1984), पृ.सं. 138–140.
31. सूरि, सुरेन्द्र; "साइक्लोजी ऑफ कम्यूनोलीजी", टाइम्स ऑफ इण्डिया, जून 13, 1984.
32. नायर, कुलदीप; "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, नवम्बर, 5, 1982.
33. लुबरा बी.पी.; "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967), पृ.सं. 20.
34. श्रीनिवासन, एस.; "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", दिल्ली, इंडिया टूडे, मार्च 22, 2017.
35. डेका, कौशिक;"बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 22, 2017.

36. मेनन के. अपरनाथ; "दलित गौरव के नाम पर", नई दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 22, 2017.
37. श्रीवास्तव, अमिताभ; "पटरियों पर बिछी साजिश", नई दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 15, 2017.
38. कोठारी, रजनी; "क्लास एण्ड कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", जनरल ऑफ इकानॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक 23, क्रमांक 49, दिसम्बर 3, 1989.
39. तालत, कमल; "सेक्यूलरजिम इन इण्डिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन, (जनवरी—जून, 1983), पृ.सं. 1—18.
40. गर्ग, बी.एल.; "सिक्यूलरिजम इन इण्डिया", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूम 1/1 नं. 1 (जनवरी—जून, 1983).
41. खान, रशीउद्दीन; "माईनॉरिटी सेगमेन्ट इन इण्डिया पॉलिटी", इलाहाबाद, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, (सितम्बर 2, 1978), पृ.सं. 570.
42. बघवा, के.के.; "माईनॉरिटी सेकगार्ड इन इण्डिया", न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, (1979), पृ.सं. 3—4.
43. मिल जॉन स्टूअर्ट; "रिप्रेजेन्टेटिव गर्वमेन्ट", लंदन, लंदन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (1947), पृ.सं. 18.
44. कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1998), पृ.सं. 241—253.
45. वैगल एण्ड हैरीसन; "माईनरिटीज इन दी न्यू वर्ल्ड, सिक्ख केस स्टेडिज", न्यूयॉर्क, कोलिम्बया यूनिवर्सिटी प्रेस, (1958), पृ.सं. 347.
46. लेपोन्स, जे.ए.; "दी प्रोटेक्शन ऑफ माईनॉरिटीज", बेकली, यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफोर्निया प्रेस, (1960), पृ.सं. 7.

47. कोठारी, रजनी; "भारत में राजनीति", मेरठ, मिनासी प्रकाशन, (1979), पृ. सं. 129.

48. जैन, पी.एम.; "सेफगार्डस टू माईनॉरिटीज कान्सटीट्यूशनल प्रिंसीपल पॉलीसीज एण्ड फ्रेमवर्क", इन एम इमाम माईनॉरिटीज एण्ड दी लॉ, न्यू दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 20–21.

49. पीरजादा, सैय्यद; "सोल्यूशन ऑफ पाकिस्तान", लाहौर, पेंग्विन बुक हाऊस, (1963), पृ.सं. 18.

50. दीक्षित, प्रभा; "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन, (1980), पृ.सं. 41.

51. आजाद, मौलाना; "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली, ओरियन्ट लोगमैन प्रेस, (1958), पृ.सं. 131.

52. कृष्णा, के.वी.; "द प्रोब्लम ऑफ माईनॉरिटीज", दिल्ली, स्टकलिंग प्रेस, (1969), पृ.सं. 31.

53. माथुर, पी.सी.; "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिपिन्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 227.

अध्याय–षष्ठम्

सारांश एवं सैद्धान्तिक निष्कर्ष

अध्याय–षष्ठम

सारांश एवं सैद्धान्तिक निष्कर्ष

आज विश्व के अधिकांश विकासशील देश धर्म, संस्कृति, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि से सम्बन्धित बहुलताओं के कारण सदैव बिखराव और विघटन की स्थिति में बने रहते हैं। वे पश्चिमी विकसित देशों की अनुकृति पर लोकतन्त्र को अपना लेते हैं किन्तु उसी के कारण ये बहुलताएँ एकता के अभाव में तरह–तरह से सिर उठाती रहती हैं। इससे उनकी राष्ट्रीय एकता, स्वतन्त्रता, विकास की आकांक्षाएँ, शांतिपूर्ण सहजीवन आदि सभी संकटग्रस्त बने रहते है। राजनीतिक अभिजन तथा उनके सहभोगी विशिष्ट वर्ग उन राजनीतिक व्यवस्थाओं को स्वहितार्थ बनाये रखने का प्रयास करते हैं। किन्तु जब कभी ये विशिष्ट वर्ग या अभिजन एकमत न होकर स्वयं विभाजित हो जाते हैं तो उस व्यवस्था को बचाना कठिन होता है। उसे बचाने की दिशा में विभिन्न प्रकार के विचारवाद, युक्तियाँ, बल प्रयोग, राजनीतिक प्रचार आदि करते हैं।[1]

समय–समय पर इन सभी का अध्ययन विश्लेषण विभिन्न विचारकों, विद्वानों, समाजविज्ञानियों, दार्शनिकों आदि ने किया है, किन्तु बहुत कम उन व्यवस्थाओं के स्वरूप में निहित बहुलताओं को यथावत बनाये रखते हुए प्रगति और विकास की दिशा में सोच पाये हैं। प्रस्तुत शोध का लक्ष्य उसी दिशा में साम्प्रदायिकता से ग्रस्त एवं त्रस्त भारतीय समाज को बहुलात्मक स्वरूप को बनाये रखते हुये लोकतन्त्र, समाजवाद, राष्ट्रीय एकता तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करना है। प्रस्तुत शोध की एक आधारभूत प्रस्तावना यही है कि साम्प्रदायिकता, विभाजन और विघटन की प्रवृत्तियों के निरन्तर बने रहने पर भी भारतीय सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था जनता का एक बहुत बड़ा भाग

सद्भावना से परिपूर्ण रहा है, और यह स्थिति दीर्घकाल से न्यूनाधिक मात्रा में, विद्यमान रही है। अतएव, भारतीय राज्यतंत्र को सृजनात्मक एवं रचनात्मक यथार्थ के अध्ययन, विश्लेषण तथा अनुसंधान पर जोर दिया जाना चाहिए।[1] इस तरह 'साम्प्रदायिकता' का विषय भारतीय राजनीति व्यवस्था के एक कार्यकारी एवं जीवन्त स्वरूप का अध्ययन है। एक ओर यह धर्मनिरपेक्षता अथवा लोकवाद जैसी आधारभूत धारणा से अंशतः सम्बन्धित है, दूसरी ओर, उससे विभाजन एवं देशी राज्यों के एकीकरण के पश्चात् उद्भूत नवीन राजनीतिक चेतना के उदय का बोध होता है।[2] वस्तुतः यह समस्या विभिन्न धर्म, भाषा, प्रजाति, संस्कृति आदि विभेदों के द्वारा निर्मित 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' वर्गो के बीच में पाये जाने वाले सम्बन्धों से जुड़ी हुई है। सभी 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' वर्ग अपनी पहचान का प्रभाव तथा अस्मिता बनाये रखना चाहते हैं, ताकि वे न केवल सामाजिक स्तर पर ही बने रह सकें, अपितु आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में भी अपना अस्तित्व बनाये रखते हुए सत्ता में भागीदारी कर सकें। इस दृष्टि से 'साम्प्रदायिकता' की समस्या वर्तमान में न केवल भारत के लिए महत्वपूर्ण है अपितु इस समस्या से ग्रस्त सभी दक्षिण एशिया तथा वैसे ही अन्य देशों के लिए भी सोचनीय है।[3]

'अल्पसंख्य'–'बहुसंख्य' विषयक एवं भ्रान्त धारणाएँ

आधुनिक समय में साम्प्रदायिकता की जड़ 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' की भ्रान्त तथा अतिरंजित धारणाओं में पायी जाती है। अतएव सर्वप्रथम परम्परागत रूढ़ विचारों से हटकर 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' अवधारणाओं का यथार्थ वास्तविकता के रूप में विश्लेषण किया गया है। प्रायः सभी समुदाय, चाहे वे धर्म, भाषा, जाति, संस्कृति आदि पर ही आधारित क्यों न हो, 'अल्पसंख्यकों' के बहुल समूह है और उनमें से किसी एक ही विशेषता पर आधारित समूह को सर्वथा तथा स्थायी रूप से 'बहुसंख्य' अथवा 'अल्पसंख्य'

कहना कठिन है। किन्तु साम्प्रदायिक नेता तथा इन सभी अल्पसंख्यो के मध्यवर्ग यदि वे उस 'अल्पसंख्य' से जुड़े हुए हैं तो यह बताना आवश्यक एवं स्वहितकारी समझते हैं कि 'बहुसंख्य' समुदाय हैं, और वह उनके अस्तित्व एवं पहचान के लिए खतरा हैं, तथा यदि वे 'बहुसंख्य' समुदायों से सम्बन्धित हैं तो उनके सदस्यों को डराना–धमकाना उपयोगी मानते हैं कि 'अल्पसंख्य' उनको मिटाने तथा विघटित करने की तैयारी कर रहे हैं। वर्तमान वास्तविक स्थिति यह है कि किसी एक आधार पर कोई भी समुदाय 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' नहीं है। किन्तु विडम्बना यह है कि सभी समुदाय यह मानने के लिये तैयार नहीं है कि वे स्थायी रूप से 'अल्पसंख्य' या 'बहुसंख्य' नहीं है, तथा एक–दूसरे के लिए एक सम्पूर्ण 'समुदाय' के रूप में खतरा नहीं है। वस्तुतः इनमें से कोई भी नवीन वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है तथा उनके सभी निहित स्वार्थ प्रेरित मध्यवर्गीय नेताओं द्वारा जाने–अनजाने परम्परागत धारणाओं तथा सम्प्रदायवाद से ग्रस्त बना दिये गये हैं।[4]

यदि 'अल्पसंख्य' साम्प्रदायिकता के स्त्रोत होते हैं तो 'बहुसंख्य' भी। वास्तव में 'साम्प्रदायिकता' को सही ढंग से समझा ही नहीं गया है। उसे धर्म एवं अल्पसंख्य समुदायों से जोड़ दिया गया है। रूढ़िवादी मान्यताओं से ऊपर उठकर यदि सोचा जाय तो 'साम्प्रदायिकता' उग्र एवं आक्रामक सामाजिक सम्बन्धों का नाम है। जिसका आधार केवल 'धर्म' ही नहीं होता। साम्प्रदायिकता का आधार धर्म के अतिरिक्त भाषा, प्रजाति, क्षेत्र, संस्कृति अथवा आर्थिक निहित स्वार्थ भी हो सकते हैं तथा वे एक साथ ही दो, तीन या चारों तत्व एक साथ ही 'साम्प्रदायिकता' में भी केन्द्रित हो सकते हैं, जितनी अधिक संख्या एवं मात्रा में साम्प्रदायिकता के ये तत्व समावेश करते जायेगें, साम्प्रदायिकता उतनी ही मात्रा में तीव्र, सघन, भयानक तथा विध्वंसक होती जायेगी। वर्तमान भारत में साम्प्रदायिकता की अवधारणा का प्रयोग सीमित एवं

धर्म के साथ ही किया जाता है, और इसी प्रचलित सन्दर्भ को यहाँ अपनाया गया है। साथ ही, यह भी पाया गया है कि वस्तुतः साम्प्रदायिकता मात्र धर्म केन्द्रित नहीं होकर, सत्ता एवं शक्ति–संघर्ष का परिणाम भी होती है। न्यायालयों ने संख्यात्मक दृष्टि से 'अल्पसंख्य' की परिभाषा ही है, किन्तु इससे सम्बन्धित राजनीतिक प्रभाव, सत्ता एवं शक्ति संघर्ष से जुड़े हुये है।[5] स्वयं भारतीय राजनैतिक तथा संवैधानिक व्यवस्था का ढांचा भी इन्हीं भ्रान्त धारणाओं पर न्यूनाधिक मात्रा में टिका हुआ है। परिणाम स्वरूप स्वयं भारतीय धर्मनिरपेक्षता की धारणा सम्प्रदायवाद को फलीभूत करने में सहायक सिद्ध हो रही है। यही कारण है कि ज्यों–ज्यों धर्मनिरपेक्षता पर जोर दिया गया है, त्यों–त्यों साम्प्रदायिकता की समस्या बढ़ी है। भारत में सम्प्रदायवाद बहुल समाज के विभिन्न समुदायों में उत्पन्न भ्रान्त धारणाओं की 'झूठी चेतना' की उत्पत्ति है।

'साम्प्रदायिकता' विशेष सम्बन्धों तथा विशिष्ट सामाजिक स्थिति का नाम है। 'सम्प्रदायवाद' साम्प्रदायिकता का निहित स्वार्थपूर्ति अथवा सत्ता एवं शक्ति प्राप्ति की विचारधारा है। इनसे मुक्त होने के लिये यह आवश्यक है कि 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' के वास्तविक स्वरूप को समझा जाये। प्रत्येक बड़ा सामाजिक समुदाय 'अल्पसंख्यों' का समूह होता है, क्योंकि वह भाषा, धर्म, जाति, प्रजाति, संस्कृति, क्षेत्र एवं आर्थिक आधार आदि दृष्टियों से लम्बाकार तथा क्षैतिज रीति से बंटा हुआ होता है।[6] यदि इन विभिन्नताओं के आधार पर अवधारणाओं को देखा या समझा जाय तो 'सम्प्रदायवाद' नहीं फैल सकता। इस वास्तविक अवधारणा से तथाकथित 'बहुसंख्य' हिन्दुओं तथा सब से बड़े 'अल्पसंख्य' मुसलमानों को भी लाभ था। न हिन्दू उक्त वास्तविकता के आधार पर अपने को 'बहुसंख्य' मानकर अपने अस्तित्व के लिए भयभीत होते अथवा अल्पसंख्यों पर हावी होने की आशा एवं प्रयास करते, तथा न ही मुसलमान

अपने को ''अल्पसंख्य'' मानकर ''बहुसंख्य'' हिन्दुओं से भयभीत होते। इस वास्तविकता के ज्ञान से सिक्खों, जैनों, ईसाइयों आदि को भी परम्परागत लाभ होता और सभी अपने को वैविध्यपूर्ण परिवर्तनशील ''अल्पसंख्य'' मानकर बराबरी की साझेदारी का अनुभव करते हैं।[7] लेकिन जब किसी एक आधार या तत्व पर बने हुए ''अल्पसंख्य'' में और भी भाषा, धर्म, संस्कृति, प्रजाति आदि के आधार या तत्व साथ मिल जाते हैं, तो उस अवस्था में वह ''अल्पसंख्य'' बड़ा प्रबल हो जाता है, और दूसरे एकाधिक आधारों वाले ''अल्पसंख्यों'' पर वह हावी होने का प्रयास करने लगता है। प्रायः प्रत्येक '':अल्पसंख्यों'' के मध्यवर्गीय नेता या अभिजन एक ही आधार पर निर्मित अल्पसंख्य को अनेक आधारों वाला बनाने का प्रयास करते हैं। इससे एक ओर अल्पसंख्यकों का विस्तार होता है, तो दूसरी ओर, उनकी मारक शक्ति बढ़ जाती है। साम्प्रदायिकता सघन होकर ''सम्प्रदायवाद'' बन जाती है।[8]

आधुनिक समय में साम्प्रदायिकता के विकास की अवस्थाऐं –

ब्रिटिश सरकार ने सोच समझकर अनेक ''अल्पसंख्य'' उसी तरह बनाये तथा उन्हें प्रबल किया। उन्होनें सहज, स्वाभाविक एवं शान्तिपूर्ण समुदायों को ''अल्पसंख्य'' एवं ''बहुसंख्यों'' में रूपान्तरित किया। साम्प्रदायिकता के विकास और संघर्ष का स्वतन्त्रता से पूर्व का इतिहास इन प्रयासों का साक्षी है। ''सम्प्रदायवाद'' के इतिहास के आधार पर उसके विकास की प्रक्रिया के अधोलिखित मोड़, चरण या अवस्थाऐं पायी जाती हैं, जो वर्तमान में भी कार्यरत हैं।

ये अवस्थायें अलगावपूर्ण विभिन्न सम्प्रदायों, समुदायों तथा जातियों के शून्य से प्रारम्भ होती है, जहाँ वे एक दूसरे की उपस्थिति को मात्र सहन करते हैं। उसके पश्चात् उनका क्रम निम्न है –

प्रथम अवस्था	–	पृथकता एवं सम्पर्क का अभाव, विशिष्ट क्षेत्रों में निवास।
द्वितीय अवस्था	–	दूसरे समुदायों से घृणा तथा असुरक्षा का भाव।
तृतीय अवस्था	–	निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु विशेष, भारित एवं पृथक प्रतिनिधित्व, पदों में आरक्षण आदि।
चतुर्थ अवस्था	–	साम्प्रदायिक संघर्ष हेतु संगठन, प्रचार आदि।
पंचम अवस्था	–	असामाजिक तत्वों द्वारा हिंसा, दंगों, हत्याओं, आगजनी आदि को प्रोत्साहन पूर्वाभासित सम्प्रदायवाद।
छठीं अवस्था	–	शासकों द्वारा सम्प्रदायवादी मध्यमवर्गीय नेताओं के साथ बातचीत, समझौता, पद ग्रहण हेतु आमन्त्रण आदि।
सातवीं अवस्था	–	शत्रु राज्यों द्वारा सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन।
आठवीं अवस्था	–	पृथक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्र की घोषणा स्वतन्त्र राज्य समिति करने का लक्ष्य।
नवीं अवस्था	–	गृह–युद्ध तथा राजनैतिक समझौता।
दसवीं अवस्था	–	पृथक सम्प्रदायवाद पर आधारित अथवा धर्म–राज्य की स्थापना।[9]

इन दस अवस्थाओं को घटाकर सरलता एवं स्प्टता के लिये पाँच व्यापक अवस्थाओं, प्रतिमानों में भी व्यक्त किया जा सकता है –

(1)	गर्भस्थ सम्प्रदायवाद	1 व 2 अवस्था
(2)	प्रारम्भिक सम्प्रदायवाद	3 व 4 अवस्था
(3)	पृथकतावादी सम्प्रदायवाद	5 व 6 अवस्था

(4) ध्वंसात्मक सम्प्रदायवाद 7 व 8 अवस्था

(5) पृथक राज्य सम्प्रदायवाद 9 व 10 अवस्था

उक्त साम्प्रदायिकता की अवस्थाएँ मूलतः धर्म से सम्बद्ध है। यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार 'धर्म' और 'धार्मिकता' दो शुद्ध वस्तुऐं हैं। जब 'धार्मिकता' में इहलौकिक, भौतिक तथा सत्ता उद्देश्य मिल जाते हैं। इनको 'सम्प्रदायवाद' के रूप में निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु मध्यवर्गीय नेताओं अथवा अभिजनों द्वारा बदला जाता है। सम्प्रदायवाद को गहरा रंग धर्मेत्तर कारकों द्वारा दिया जाता है। ये धर्मेत्तर निम्न में से कोई अनेक अथवा कुछ मिलकर या सभी संयुक्त हो सकते हैं। इन सबके साथ संयुक्त होने पर सम्प्रदायवाद अजेय तथा अदम्य हो जाता है –

1. प्रभावित लोगों की संख्या
2. साम्प्रदायिकता से प्रभावित क्षेत्र
3. अंगभंग जीवन की हानि, तथा
4. सम्पत्ति नाश के आधार पर आंकलित किया जा सकता है।

सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता को विकास के क्रम या चरणों के अतिरिक्त ही नहीं, उसकी रोकथाम तथा शांति स्थापना के लिए किया गया राजकीय व्यय तथा मानवीय शक्ति की मूल्यांकन का आधार हो सकती है।[10] धर्म के आधार पर भी सम्प्रदायवाद के अनेक रूप हो सकते हैं।

सम्प्रदायवाद का प्रतिसंतुलन एवं धर्मनिरपेक्षता –

सम्प्रदायवाद को तभी दबाया या प्रति संतुलन किया जा सकता है जबकि धर्म पर आधारित 'साम्प्रदायिकता' के रचनात्मक तथा निर्णयकारी तथ्य के साथ अधिकाधिक मात्रा में विभिन्न कारकों को एक साथ जोड़ा जाये, अर्थात् एक धर्म सम्बद्ध सम्प्रदाय, भाषा, जाति, प्रजाति, क्षेत्रीयता, संस्कृति आदि आधारों पर अधिकाधिक मात्रा में बंद हुआ हो तथा उसके अभिजन धर्म और धार्मिकता का व्यापक अर्थग्रहण करते हैं, अन्यथा 'साम्प्रदायिकता' अपने आप में उतनी ही शक्तिशाली सिद्ध हो सकती है। किन्तु ऐसा प्रतिकारी सन्तुलनकारी धर्मनिरपेक्षता विकसित करना सरल कार्य नहीं है।[11]

इस कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने 'धर्मनिरपेक्षता' या 'लोकवाद' को अपना आदर्श बनाया है। किन्तु यह पूर्णतः धर्मनिरपेक्षतावाद न होकर 'सर्वधर्मस्वभाव' या 'पंथ' या 'सम्प्रदाय' से निरपेक्षता तथा पृथकता मात्र थी। इसके अन्तर्गत साम्प्रदायिकता घटने के बजाय बढ़ती गई। वस्तुतः भारतीय समाज तथा उसमें पाये जाने वाले विभिन्न समुदाय धर्म से सम्बद्ध होने के कारण 'सम्प्रदाय' है। ऐसे, 'सम्प्रदाय' प्रधान राज्य में धर्मनिरपेक्षता राज्य का बना रहना कठिन होता है। इसलिए भारत के विभाजन के पश्चात् साम्प्रदायिकता और अधिक बढ़ी है।

इसलिए प्रथम अध्याय में साम्प्रदायिकता को स्वतन्त्रता से पूर्व, बाद में और वर्तमान के बदलते परिदृश्य के रूप में बताया गया है। साम्प्रदायिकता के अर्थ एवं प्रकृति के साथ इसके विभिन्न स्वरूपों की भी व्याख्या की गई है तथा धर्म एवं धार्मिकता के आधार पर साम्प्रदायिकता को दर्शाया गया है। इसके साथ ही वर्तमान साम्प्रदायिकता के वीभत्स स्वरूप को भी बताया गया है। इसी के अन्तर्गत लोकतन्त्रीय राष्ट्रवाद एवं साम्प्रदायिकता की विचारधारा के यूरोपीय

पूर्वाग्रह के अनुसार कैथोलिक प्रोटेस्टेन्ट संघर्ष को भारत में हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष के रूप में देखा गया है तथा इनकी व्याख्या की गई है।

द्वितीय अध्याय में अल्पसंख्य, बहुसंख्य समस्या एवं सम्प्रदायवाद की विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है और सम्प्रदायवाद की समस्या को अल्पसंख्य एंव बहुसंख्य स्वरूप के रूप में देखा गया है तथा साथ ही साम्प्रदायिकता के प्रकारों में विभिन्न अल्पसंख्य धर्मों का वर्णन किया गया है, जिनमें हिन्दू सम्प्रदाय, मुस्लिम सम्प्रदाय, ईसाई सम्प्रदाय, सिक्ख सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायों को बताया गया है। अध्याय के अन्त में राजस्थान में अल्पसंख्य व बहुसंख्य समस्या को भी बताने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में साम्प्रदायिकता प्रक्रिया, मापन एवं शोध प्रविधि के साथ–साथ शोध साहित्य की भी समीक्षा की गई है जो इस शोध की गुणवत्ता को अधिक उपयोगी बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इसके अलावा इस अध्याय में शोधार्थी ने साम्प्रदायिकता की विभिन्न अवस्थाओं को विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयास किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि साम्प्रदायिकता एका–एक पैदा होने वाली प्रक्रिया नहीं है इसको अपनी जड़े जमाने में इन दस अवस्थाओं की प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। इसी अध्याय में शोधार्थी ने शोध को तथ्यात्मक बनाने के लिए एक शोध प्रश्नावली भी तैयार की है जिसके द्वारा चयनित क्षेत्रों में उत्तरदाताओं से प्रश्नावली के द्वारा उनके विचारों को जानकर शोध को नवीनरूप देने का प्रयास भी किया है।

अध्याय चतुर्थ में राजस्थान में वर्तमान बदलते परिदृश्य में 'साम्प्रदायिकता' के विभिन्न आयामों एवं भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाओं की विभिन्न विशेषताओं के आधार पर साम्प्रदायिकता की समस्या को वर्णित किया गया है और साथ ही राजस्थान के गठन के विभिन्न चरणों को समझाने का

प्रयास किया गया है। इसके अलावा राजस्थान की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विशेषताओं को बताने का प्रयास किया गया है तथा साथ ही में यह भी बताया गया है कि ये विभिन्न विशेषताऐं राजस्थान में साम्प्रदायिक समस्या को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कैसे देखते हैं और उनकी स्थिति को भी स्पष्ट किया है। अध्याय के अन्त में शोधार्थी ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि यहाँ साम्प्रदायिकता की स्थिति कैसे, क्यों और किन कारणों से उत्पन्न होती है।

अध्याय पांच में साम्प्रदायिकता के आनुभाविक प्रतिमानों की खोज करने का प्रयास किया गया है। इसके लिए अध्ययन–क्षेत्र के चयन की पृष्ठभूमि में 'साम्प्रदायिकता' के आनुभाविक अध्ययन के लिए राजस्थान के एक बड़ा तथा दूसरा मध्यम श्रेणी के शहरों जयपुर तथा भरतपुर का चयन किया गया है। क्योंकि राजस्थान में पहले तथा वर्तमान में भी साम्प्रदायिकता शहरों तक ही सीमित है। इसी अध्याय के अन्तर्गत शोधार्थी ने इन दोनों शहरों की पृष्ठभूमि को भी बताने का प्रयास किया है, जिसके अन्तर्गत क्षेत्र परिचय, पृष्ठभूमि की परम्परा, सामाजिक जीवन, आर्थिक स्थिति एवं धार्मिक जीवन के बारे में वर्णन किया गया है, और साथ ही जयपुर एवं भरतपुर में राजनीतिक सामाजीकरण एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अर्थ एवं महत्व को पृथक–पृथक रूप से बताया गया है। जिसमें परिवार, शिक्षण संस्थाऐं, मित्र मण्डली एवं अन्य द्वितीयक समूह एवं संस्थाओं का वर्णन किया गया है तथा साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि ये समूह एवं संस्थाऐं साम्प्रदायिकता को प्रभावित करने में कितनी सहयोगी एवं अनुपयोगी है। अध्याय के अन्त में शोधार्थी ने जयपुर एवं भरतपुर शहरों में 'साम्प्रदायिकता' के वास्तविक प्रतिमान को जानने क्षेत्रीय अध्ययन एवं अवलोकन करना महत्वपूर्ण मानते हुये तीन प्रविधियों को प्रमुख मानते हुये इस शोध कार्य में सहायक माना है, तथा अन्त में साम्प्रदायिकता की वास्तविक

स्थिति को जानने के लिये सीमित मात्रा में लिये गये सहभागी अवलोकन पद्धति के द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली के आधार पर जयपुर एवं भरतपुर की जनसंख्या में से दैवनिर्देशन विधि के आधार पर उत्तरदाताओं का चयन करके उनसे पूछे गये प्रश्नों के जवाब के आधार पर तथ्यात्मक अध्ययन किया गया है। जिसका विवरण अध्याय में दिया गया है।

इसके पश्चात् सर्वप्रथम भारत तथा राजस्थान के समष्टि संदर्भ (Macro contest) का आकलन किया गया। इसके पश्चात् जयपुर तथा भरतपुर के सम्प्रदायों के विषय में बताया गया। ऐसा करने के साथ–साथ उत्तरदाताओं तथा साक्षात्कारदाताओं द्वारा दी गई रचनाओं का वर्गीकरण व सारणीयन किया गया।

समष्टि सन्दर्भ : राजस्थान में साम्प्रदायिकता

'साम्प्रदायिकता' कोई सर्वथा एकाकी तथा पृथक विषय नहीं है। इसका अध्ययन सम्पूर्ण भारत के व्यापक क्षेत्र में किया जाना चाहिए। किन्तु ऐसा करना शोधकर्ता के स्तर पर सम्भव नहीं था। लेकिन भारत में दो राज संस्कृतियों रही है। प्रथम ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में पाये जाने वाली तथा द्वितीय, देशी रियासतों में पायी जाने वाली। ब्रिटिश भारत में पायी जाने वाली राज संस्कृति तथा राजनैतिक विकास पूरी तरह साम्प्रदायिकता से प्रभावित रहे हैं, किन्तु देशी रियासतें न्यूनाधिक रूप से 'साम्प्रदायिकता' को बनाये रखती रही तथा विलय होने पर भी उनकी पृथकतावादी परम्परा निरन्तर बनी रही। इन देशी रियासतों में से राजस्थान के समष्टि सन्दर्भ को चुना गया है। राजस्थान में एकीकरण से पूर्व राजा–महाराजाओं के शासन की पृष्ठभूमि रही है। राजस्थान में 'साम्प्रदायिकता' की वर्तमान बदलती भूमिका का अध्ययन

सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ को ध्यान में रखकर किया गया है।[11]

स्वतन्त्रता के पश्चात राजस्थान में 'साम्प्रदायिकता' बने रहने के समष्टिगत बाह्य एवं आन्तरिक कारक पाये गये हैं। बाह्य कारकों में भारतीय राज व्यवस्था की प्रकृति, विशेषतः, कांग्रेस का केन्द्र में दीर्घकालीन एकदलीय प्रभुत्व, शक्तिशाली प्रधानमंत्री व्यवस्था, तथा राज्यों का केन्द्र पर निर्भर बने रहना है। स्वयं भारतीय संविधान मौलिक अधिकारों को धर्म, जाति, जनसंख्या, भाषा, संस्कृति आदि का भेदभाव किये बिना सभी नागरिकों को प्रदान करता हुआ ''साम्प्रदायिकता की संवैधानिक स्थिति स्थापित नहीं कर सका।[12]

राजस्थान भी एक नवीन राजनीतिक शासकीय इकाई है जिसका निर्माण देशी रियासतों के भारतीय विलयन तथा 'राजस्थान' के रूप में एकीकरण के माध्यम से हुआ। देशी राजा–महाराजाओं ने स्वदेशी होने के कारण अपनी प्रजाओं में साम्प्रदायिकता को रोकने का निरन्तर प्रयास किया तथा अपने प्रशासन में सभी धर्मों, जातियों, क्षेत्रों आदि के योग्य व्यक्तियों को स्थान दिया। स्वतन्त्रता के पश्चात् राजस्थान राज्य के मन्त्रीमण्डलों तथा विधान सभाओं में सभी धर्मों, दलों, जातियों, क्षेत्रों, अल्पसंख्य वर्गो, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रतिनिधि मिलता आया है। अकाली दल, मुस्लिम लीग आदि साम्प्रदायिक राजनैतिक दलों को छोड़कर अन्य दलों में सभी धर्मों, जातियों तथा वर्गो के लोग पाये जाते हैं।

राजस्थान का भौगोलिक परिवेश भी अनुकूलता लिये हुये है। इस विशाल प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व कम है तथा सामान्यतः वर्षा की कमी, आवागमन के साधनों का अभाव, तथा सीमित प्राकृतिक साधन एक दूसरे को अलग बनाये रखते हैं। राजस्थान की सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषता भी

बोलियों तथा पहनावे के अतिरिक्त लगभग एक सी पायी जाती है। यद्यपि मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि हिन्दुओं की जाति प्रथा तथा उससे सम्बन्धित व्यवहारों को स्वयं नहीं अपनाते किन्तु उनका सम्मान करते हैं। हिन्दुओं के व्यवहारों पर भी उनसे न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता है। 'साम्प्रदायिकता' को बढ़ावा देने वाले अनेक तत्व, जैसे क्षेत्रीयता आदि का यहाँ पर अधिक प्रभाव नहीं पाया जाता है। प्रायः सभी राजनीतिक दल राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था के मूल ढांचे से सन्तुष्ट है।

राजस्थान में एक विभिन्न विशेषता यह देखने को मिलती है कि यहाँ धार्मिक स्थानों तथा तीर्थों में यदि किसी एक धर्म या सम्प्रदाय के तीर्थ स्थल या धार्मिक स्थान है तो यहाँ कुछ अन्य धर्मों के भी तीर्थस्थल या स्थान देखने को मिलते हैं। यही बात यहाँ के लोग संतो, धर्मसुधारकों, आदि के विषय में कही जाती है।[13]

यहाँ भाषा तथा बोलियों के विषय में भी विचारों का अभाव है। सभी राजे–रजवाड़ो व रियासतों की अपनी–अपनी स्थानीय भाषाएँ व उपभाषाएँ थी जिन्हें 'राजस्थानी' भाषा का उप प्रकार माना गया है। किन्तु इन्हें समझने में आम जनता को कोई अधिक कठिनाई नहीं होती। यहाँ एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक उपभाषा या बोली के बोलने वालों में प्रायः सभी धर्म, जातियों, वर्गो आदि के लोग पाये जाते हैं। राजस्थान की अधिकांश जनता अशिक्षित निर्धन तथा पिछड़े होने के कारण यह 'भाषायी समरसता' और भी अधिक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात हुए सत्ता परिवर्तन तथा लोकतन्त्र के आविर्भाव से शनैः शनै मूलभूत परिवर्तन आ रहा है। संविधान द्वारा स्वीकृत न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के प्रावधानों के अन्तर्गत सभी लोग स्वेच्छानुसार व्यवसाय, धन्धों आदि को करने के लिए स्वतन्त्र है।[14]

उक्त अनुकूल 'समष्टि सन्दर्भ' के होते हुये भी पिछले कुछ वर्षो में साम्प्रदायिक घटनाओं में वृद्धि होती जा रही है। अतएव यह आवश्यकता प्रतीत हुई है कि 'साम्प्रदायिकता' के व्यष्टि सन्दर्भ (Microcontext) का अवलोकन किया जाये ताकि दोनों शोध नगरों की शोध समस्याओं पर अधिक प्रकाश डाल सकें तथा विश्वसनीय तथ्यों को प्रस्तुत कर सकें।

व्यष्ठि सन्दर्भ (Micro-context)–

वैसे तो सम्पूर्ण राजस्थान में साम्प्रदायिकता की समस्या प्रमुखतः शहरी अथवा नगरीय समस्या है। अतएव राजस्थान में साम्प्रदायिकता की वास्तविक स्थिति को व्यष्टि रूप में जानने के लिये दो नगरों को आधार बनाया गया है।

अध्ययन क्षेत्र के रूप में जयपुर एवं भरतपुर

राजस्थान में पिछले कुछ वर्षों में कई क्षेत्रों (पाली, जैतारण, सोजत, कोथून, कमखेड़ा, सिरोही, नाथद्वारा) में साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं। इनसे यह आभास हुआ है कि अपेक्षाकृत शान्त शहरों की क्या स्थिति है तथा वहां ऐसे कौनसे कारक है, जिनके कारण वहां साम्प्रदायिकता का वातावरण बना हुआ है। इसका अनुभवपरक अध्ययन करके साम्प्रदायिकता के प्रतिमानों का पता लगाया जा सकता है।

इसके लिए जयपुर तथा भरतपुर दो शहरों को चुना गया है। जयपुर राजस्थान की राजधानी, जयपुर जिले का मुख्यालय तथा सबसे बड़ा शहर है। ब्रिटिश काल में यह अर्द्ध स्वतन्त्र देशी रियासत के रूप में था, जिसका भारत में विलीनीकरण हुआ तथा राजस्थान के एकीकरण में प्रमुख भागीदार बना। यहाँ सभी धर्मों, जातियों, भाषाओं, वर्गो, क्षेत्रों तथा संस्कृतियों के लोग रहते हैं किन्तु हिन्दुओं, तथा राजस्थानी संस्कृति एवं भाषा की प्रधानता है। हिन्दुओं की

विविधता भी यहाँ सभी क्षेत्रों में दिखायी देती है। यहाँ इस्लाम, जैन धर्म, सिक्ख आदि भी राजाओं के काल से फलते फूलते रहे हैं। प्रायः सभी समाज जातियों एवं उपजातियों, वर्गों आदि में बंटे हुए हैं और यह कहना कठिन है कि किस दृष्टि से एकमात्र बहुसंख्य अथवा अल्पसंख्य है। आर्थिक दृष्टि से भी वैसी ही बहुलता पायी जाती है तथा विभिन्न समुदायों, समूहों तथा वर्गो के उद्योग–धन्धों, व्यवसाय आदि एक दूसरे के पूरक बनकर बंटे हुये है। यद्यपि यह बहुल संस्कृति वाले शहरों में से एक है, फिर भी साधारण एवं निर्धन लोग आजीविका के साधन तलाश लेते हैं। राजनैतिक दृष्टि से यहाँ लगभग सभी राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल कार्यरत है तथा साम्प्रदायिक एवं क्षेत्रीय दल का प्रभाव शून्य प्राय है। राजस्थान में ही मध्य श्रेणी का शहर भरतपुर है, जो स्वयं जिला है और जिला मुख्यालय का केन्द्र है। यहाँ मुसलमानों का अनुपात जयपुर की तुलना में कम है, यहाँ व्यापार, धन्धे परम्परागत रूप से जुड़े हुये हैं तथा लोगों की आय का मुख्य साधन कृषि है। यहाँ आर्थिक क्षेत्र में प्रतियोगिता के इस नये तत्व को यदा–कदा अलगाव, पृथकता एवं साम्प्रदायिकता के रूप में देखा जा सकता है। निम्न जाति के लोगों की स्थिति हिन्दू और मुसलमानों की दृष्टि से वैसे ही बनी हुई है। राजनैतिक दृष्टि से यहाँ राजनीतिक दलों की स्थिति जयपुर जैसी ही पायी गयी है।[15]

जयपुर–भरतपुर में 'साम्प्रदायिकता' का प्रतिमान–

जयपुर तथा भरतपुर में 'साम्प्रदायिकता' का प्रतिमान खोजने के लिये अनुसूचियों, सहभागी अवलोकन तथा विशिष्ट व्यक्तियों से साक्षात्कार का उपयोग किया गया।[16]

उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये जिनका संक्षिप्त विश्लेषण निम्न है–

'साम्प्रदायिकता' अथवा जयपुर–भरतपुर के प्रतिमान को प्राप्त करने के लिए उनके उपलब्ध तत्वों, संरचनाओं, कारकों, प्रक्रियाओं तथा लक्ष्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए। यही स्थिति 'साम्प्रदायिक संघर्ष' की है, दोनों एक–दूसरे के साथ जुड़े हुये हैं। इन उपलब्ध तथ्यों एवं आंकड़ो के अनुसार, जयपुर एक बहुत बड़ा बहुधर्मी एवं विविधापूर्ण शहर है जहाँ हिन्दू धर्म का बाहुल्य होते हुये भी अनेक धर्म, जातियों, भाषाओं, वर्गो तथा संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं। इनका समष्टि सन्दर्भ सम्पूर्ण भारतीय संविधान तथा राज व्यवस्था के भीतर उसकी सीमित स्वशासी राज्य की स्थिति है। जयपुर के निवासी उत्तरदाताओं की सूचना एवं अनुभव के अनुसार न केवल साथ–साथ रहते हैं, अपितु एक दूसरे धर्मों के सभी मोहल्लों में निश्चिन्तापूर्वक रहते हैं सारणी सं. 1 एवं 5 में स्पष्ट है। उनके बच्चों कतिपय, मंदिर, मस्जिद केन्द्रित निजी विद्यालयों को छोड़कर, सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में प्राथमिक से लेकर स्नातक तक शिक्षा उन्हीं संस्थानों में समान रूप से प्राप्त करते हैं, तथा विश्वविद्यालय में जाने अथवा उनके छात्रावासों में रहने वालों के लिये भी समान रूप से ही है।

यह सही है कि जैन धर्मानुयायी व्यापार करते हैं तथा सिक्ख भी विशेष उद्योगों तथा मुसलमान कारीगरी तथा दस्तकारी में लगे हुये हैं तथा विशेष क्षेत्रों में रहते हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य लोगों का निषेध है या वे कुछ कार्य नहीं करते। यहाँ नवीन सामाजिक परिवर्तन के अधीन अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां भी इन सभी आर्थिक क्षेत्रों में विशेषतः नौकरियों में प्रवेश कर रही है, जो सारणी सं. 4 में स्पष्ट है। यही स्थिति लगभग रूप से भरतपुर शहर में भी पायी गई है।

इन दोनों शहरों में अधिकांश व्यक्ति साम्प्रदायिक प्रभाव को अपने धर्म का अभिन्न अंग मानते है सारणी सं. 6(i) व 6(ii) में स्पष्ट है। इसके अनुसार

सभी अपने–अपने धर्म के प्रति आस्था रखने का दावा करते हैं। यद्यपि दूसरे धर्मों के बारे में अधिक जानकारी नहीं रखते है लेकिन वे अपनी धार्मिक जिज्ञासा या पिपासा शान्त करने के लिए विभिन्न स्थानों पर जाते है।

धर्म की तुलना में राज्य, समाज अथवा राष्ट्र की सर्वोपरिता के बारे में भिन्न–भिन्न विचार थे। उनकी दृष्टि से धर्मनिरपेक्षता, धर्म से पूर्ण पृथकता नहीं होकर सभी धर्मों को समान भाव से देखना है। यही नहीं, जयपुर तथा भरतपुर के प्रत्येक क्षेत्र में बहुसंख्य अन्य सभी प्रकार के अल्संख्यों विशेषतः धार्मिक अल्पसंख्यों के प्रति सम्मान का भाव रखते है। वे जानते है कि उन्हें संविधान के अन्तर्गत सभी मौलिक अधिकार बराबरी के प्राप्त है। इन्हें अन्य धर्म के लोगों से पर्याप्त सहयोग मिलता है। अधिकांश लोगों को अपने धर्म से सम्बन्धित उत्सवों, प्रदर्शनों आदि को संगठित करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होती है। लोग अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा सामान्य जीवन में अपने किये गये व्यवहार से काफी संतुष्ट दिखायी पड़ते है, जो सारणी सं. (7, 9, 10) में स्पष्ट किया गया है।

वर्तमान बदलते भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन दोनों शहरों में यहाँ के लोग अपने अधिकारों के आधार पर निःसन्देह होकर स्थानीय, राज्य–स्तरीय तथा राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेते हैं। राजस्थान राज्य में बरकतुल्ला खां जैसे मुख्यमंत्री तथा गुरूमुख निहाल सिंह जैसे सिक्ख राज्यपाल रहे हैं, तथा सुखदेव प्रसाद जैसे हरिजन राज्यपाल रहे हैं अर्थात् वर्तमान में यहाँ भारतीय सेवाओं में भी अल्पसंख्य भी दिखायी देने लगे हैं तथा वे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड आदि संस्थाओं में उच्च स्थानों पर मिले हैं। इन दोनों शहरों में सभी राजनीतिक दल हैं जो राजनीति में अपना प्रभाव रखते हैं। जो सारणी सं. (14 व 15) में स्पष्ट दर्शाया गया है।

वर्तमान भारत में साम्प्रदायिकता के बदलते परिप्रेक्ष्य में राजस्थान के इन दो शहरों जयपुर एवं भरतपुर में शिक्षा प्रणाली के महत्व को स्वीकार किया गया है जो सारणी सं. (11 व 12) में वर्णित किया गया है। यद्यपि कुछ लोग वर्तमान शिक्षा तथा आधुनिक सुविधाओं को साम्प्रदायिकता के लिए बाधक बनते है।

इन दोनों शहरों में साम्प्रदायिकता को धर्म से जुड़ा हुआ भी मानते हैं। प्रायः सभी धर्म अपने मौलिक एवं अनौपचारिक रूप में साम्प्रदायिकता का पक्षधर मानते है, अधिकांश उत्तरदाताओं के विचार इसी प्रकार के थे, जो सारणी सं. (13 व 14) में स्पष्ट किये गये हैं।

जब जयपुर तथा भरतपुर में उत्तरदाताओं ने राजस्थान में साम्प्रदायिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न्यूनाधिक रूप में पाया जाना बताया गया है तथा राजस्थान को भारत के अन्य राज्यों की तुलना में सौहार्द व सद्भावपूर्ण माना है। जो सारणी सं. (17) में दर्शाया गया है।

सम्पूर्ण मानव बन्धुत्व तो अभी दार्शनिक अवधारणा का धार्मिक विचार या आदर्श मात्र है। किन्तु उनमें आस्था रखते हुये भी अपने धर्म के विषय में तथा अन्य धर्मों के विषय में सीमित आस्था रखते हुये भी यह अनुभव करते हैं कि सभी धर्मों में मूल समानताऐं पायी जाती है। जो सारणी सं. (15, 16) में वर्णित है।

जयपुर तथा भरतपुर में 'साम्प्रदायिक संघर्ष' के कारकों की स्थिति–

अध्याय तीन में बताये गये ''साम्प्रदायिक संघर्ष'' के मापन का प्रयोग करके भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिकता की स्थिति के बारे में दो प्रश्न (सं. 2, 3) पूछे गये कि क्या सम्पूर्ण देश में सामान्यतः साम्प्रदायिकता बढ़ी

है ? तथा क्या आपकी राय में बढ़ी है? अथवा साम्प्रदायिक स्थिति किस रूप में पायी जाती है।

तो उनके उत्तरों के अनुसार यह पाया कि साम्प्रदायिक समस्या समाप्त नहीं हुई है और वह काफी मात्रा में बढ़ रही है। सारणी सं. (2, 3) में वर्णित है।

साम्प्रदायिक विद्वेष के कारणों का पता लगाने के लिये अनेक कारण सुझाये जाने पर उन्होंने आर्थिक प्रतिस्पर्धा को प्राथमिकता दी जो सारणी संख्या (4) में यह बताया गया है कि इसके भी कतिपय कारण तथा विशेषताऐं होती है, तथा उसे उसकी विकास–अवस्थाओं या चरणों के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

जयपुर तथा भरतपुर की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति का इस दृष्टि से भी अध्ययन किया गया तथा उत्तरदाताओं से विशिष्ट प्रश्न पूछे गये। इसमें उन्होंने यह बताया कि इन्हीं दृष्टि से साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं हुई है तथा समस्या पहले जैसे ही वर्तमान में इन दोनों शहरों में बनी हुई है। जो सारणी संख्या (6.1, 6.2 एवं 7) में वर्णित है। यद्यपि वर्तमान समय में राजस्थान के इन दोनों शहरो में कोई साम्प्रदायिक उपद्रव, दंगे आदि नहीं हुए हैं। वैसे इन दोनों शहरों में कुछ कट्टरपंथियों या उपद्रवियों द्वारा एक–दो बार कोई छोटी–मोटी घटनाओं को लेकर झगड़ा–फसाद खड़ा करने का प्रयास किया गया किन्तु जनमत के दबाव तथा प्रशासन की चुस्ति के कारण नहीं फैल पाया।

'साम्प्रदायिक संघर्ष' की प्रथम दो अवस्थाओं में भी देखा जाये तो ये दोनों अवस्थाऐं इन दोनों शहरों में पायी जाती है, लेकिन वर्तमान तक इतनी शताब्दियां बीत जाने पर भी यहाँ साम्प्रदायिक संघर्ष न्यूनाधिक मात्रा में पाये गये हैं। इन दोनों शहरों में विभिन्न अल्पसंख्य–बहुसंख्य न केवल अलगाव

रखते हैं तथा अपनी विशिष्ट पहचान बनाकर भी रखते हैं, लेकिन वे पृथक सम्प्रदाय व्यवस्था, विशेषाधिकार तथा राजनैतिक प्राथमिकता भी चाहते हैं। सारणी संख्या (14, 15, 18) में वर्णित किया गया है।

साम्प्रदायिकता का समाधान उत्तरदाताओं के अनुसार उतना आसान नहीं है क्योंकि वे अपनी धार्मिक या जातिगत पहचान को बनाये रखना चाहते है। सारणी सं. (6) इसका प्रमुख कारण यह है कि अन्य धर्मावलम्बियों से भाईचारा या मेलजोल करने का प्रयत्न करते ही उसके स्वधर्मी उनके विरूद्ध हो जाते हैं।

उक्त अध्ययन को देखकर ऐसा लगता है कि 'साम्प्रदायिकता' एवं 'साम्प्रदायिक संघर्ष' की अवस्थाओं में एकरूपता पायी जाती है। दूसरे शब्दों में, यदि साम्प्रदायिक संघर्ष की विकास अवस्थाऐं ऊंची होती है तो 'साम्प्रदायिकता' विकास अवस्थाऐं भी ऊँची होगी। इस तरह 'साम्प्रदायिक संघर्ष' और साम्प्रदायिकता की विकास अवस्थाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया है।

जयपुर–भरतपुर प्रतिमान की सीमाएँ

उपर्युक्त आनुभविक अध्ययन से प्राप्त 'साम्प्रदायिकता' के वर्तमान में बदलते प्रतिमानों की अपनी सीमाएँ है। वह वस्तुतः सभी शोध सीमाओं में बंधा हुआ है। उसका वास्तविक सम्बन्ध केवल जयपुर तथा भरतपुर से ही है तथा उसे सामान्य तौर पर भी सम्पूर्ण राजस्थान पर लागू किया जा सकता है। सम्पूर्ण राजस्थान पर भी उसे राजस्थान की समष्टि तथा व्यष्टि समानताओं के आधार पर ही लागू किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त इस प्रतिमान में कई स्थितियाँ, सामाजिक प्रक्रियाएँ आदि नहीं आ पायी हैं, क्योंकि यदि मुसलमानों का बाहुल्य हो तो राजस्थान में

अथवा अन्यत्र 'साम्प्रदायिकता' का प्रतिमान होगा, अथवा अन्य भाषा, संस्कृति या प्रजाति के कारक की प्रधानता होने पर उसके इस स्थापित प्रतिमान का क्या रूप होगा। इसी तरह प्रतिमान में अल्पसंख्यों से भी अधिक मात्रा में पाये जाने वाली अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की भूमिका का भी आकलन नहीं किया गया है। इस तरह राजनीतिक दलों द्वारा भड़काई जाने वाली साम्प्रदायिकता तथा केन्द्र राज्यों के हस्तक्षेप को भी आधार ही बनाया गया है।

अन्त में, इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय राजव्यवस्था में 'धर्मनिरपेक्षता' को नये रूप में स्थान दिया जाये तथा 'अल्पसंख्य'–'बहुसंख्य' की धारणाओं को वास्तविक बनाया जाये। कोई भी भारतीय–राजनीतिक व्यवस्था का अनुभवपरक राजनीतिक सिद्धान्त विकसित नहीं किया जा सकता। यदि उसे वास्तविक 'धर्मनिरपेक्ष' की धारणाओं पर आधारित नहीं किया जाता। राजस्थान के 'साम्प्रदायिकता' का जयपुर–भरतपुर प्रतिमान अन्य क्षेत्रों में वर्तमान शोध के लिए मार्गदर्शन का कार्य कर सकता है, तथा नीति निर्माताओं, राजनेताओं, प्रशासकों तथा नागरिकों को दिशा निर्देश दे सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. चन्द्रा, विपिन; "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, (1984), पृ.सं. 69–74.
2. डूसाल्ट, लुईस; "कलेक्टेड पेपर्स इन इण्डियन सोसोलोजी", (पेरिस 1970), पृ.सं. 90–91.
3. स्मिथ, डब्ल्यू.सी.; "मॉडर्न इस्लाम इन इंडिया", लाहौर, बुक्स रीड, (2006), पृ.सं. 203–204.
4. मिश्रा, बी.बी.; "दी इण्डियन मिडिल क्लासेज पेपर ग्रोथ इन मॉडर्न टाइम्स", लंदन, (1961), पृ.सं. 90–91.
5. चन्द्रा, विपिन; तदैव, पृ.सं. 10.
6. मेहता, बी.आर.; "आइडोलोजी मॉर्डनाइजेशन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", नई दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन (1983), पृ.सं. 71.
7. माथुर, वाई.बी.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", नई दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिकेशन, (1972), पृ.सं. 31–34.
8. पुंताम्बेकर; "दी सेक्यूलर स्टेट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिन्टिंग प्रेस (1949), पृ. सं. 13–17.
9. अरोड़ा एवं आनन्द; "भारतीय राजनीति व्यवस्था के आदर्श एवं दर्शन", दिल्ली, सुल्तानचन्द एण्ड कम्पनी (1996), पृ.सं. 11.
10. जैन, आर.बी.; "पॉलिटिकल साइन्स इन ट्रान्जीशन", नई दिल्ली, गीतांजली प्रकाशन, (1981), पृ.सं. 226.
11. देसाई, ए.आर.; "भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियाँ", लंदन, मैकमिलन, (1978), पृ.सं. 81.
12. नारायण, प्रकाश; "अपना राजस्थान", जयपुर, पिंकसिटी पब्लिशर्स, (1988), पृ.सं. 159.

13. जैन, एस.एस.; "राजस्थान का इतिहास", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (1986), पृ.सं. 105.
14. पटेल, सरदार; "संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के समय दिया गये भाषण के अंश, (मार्च 29, 1949).
15. पायली, एम.वी.; "कान्स्टीट्यूशनल गर्वनमेंट इन इंडिया", नई दिल्ली, एशिया पब्लिशिंग हाउस, (1977), पृ.सं. 679.
16. चन्द्रा, विपिन; "आधुनिक भारत में विचारधारा एवं राजनीति", दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, (1977), पृ.सं. 220.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- आजाद, मौलाना; "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली, ओरियन्टलोंगमैन प्रेस, (1958).
- अमिसाज, अहमद; "परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वाटेरटली, (अक्टूबर, 1972).
- अन्सारी, एम.ए.; "मुस्लिम एण्ड दी कांग्रेस", दिल्ली, विकास पब्लिशिंग, (1979).
- अरोड़ा एवं आनन्द; "भारतीय राजनीति व्यवस्था के आदर्श एवं दर्शन", दिल्ली, सुल्तानचन्द एण्ड कम्पनी (1996).
- अवस्थी, अमरेश्वर; "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", दिल्ली, नन्दा प्रकाशन, (1980).
- बघवा, के.के.; "माईनॉरिटी सेकगार्ड इन इण्डिया", न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, (1979).
- चन्द्रा, विपिन; "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस (1984).
- चन्द्रा, विपिन; "आधुनिक भारत में विचारधारा एवं राजनीति", दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, (1997).
- चन्द्रा, अशोक; "फेडरलिज्म इन इण्डिया", लंदन, प्रिंट स्टोन प्रेस, (1986).
- चटर्जी, पी.सी.; सेक्यूलर वैल्यू ऑर सेक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985).
- डी. स्मिथ विल्फ्रेड; "मॉर्डन इस्लाम इन इंडिया", लाहौर, पेंग्विन बुक हाउस, (1943).

- डेका, कौशिक; "बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 22, 2017.
- देसाई, ए.आर.; "भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियाँ", नई दिल्ली, मेकमिलन, (1978).
- धर्मवीर; "राजनीति समाजशास्त्र", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (1988).
- दीक्षित, प्रभा; "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन (1980).
- डूसाल्ट, लुईस; "कलेक्टेड पेपर्स इन इण्डियन सोसोयोलॉजी", पेरिस, मैकमिलन पब्लिशर्स, (1970).
- इंजीनियर, अली असगर; "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू ऑवर पेज", बम्बई, इस्लामिक स्टैडिज, (1984).
- गाँधी, एम.के.; "दी वे ऑफ कम्यूनल हॉरमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958).
- गर्ग, बी.एल.; "सिक्यूलरिजम इन इण्डिया", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूम 1/1 नं. 1 (जनवरी–जून, 1983).
- इम्तियाज, अहमद; "सैक्यूलर स्टेट, कम्यूनल सोसायटी", फैक्टशीट 2, कम्यूनीलज्म दी रेंजर्स एज, बम्बई फॉकिस्ट कलेक्टर वर्क, (1983).
- जैन, एम.एस.; "आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक", दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980).
- जैन, एस.एस.; "राजस्थान का इतिहास", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1986).

- जैन, पी.एम.; "सेफगार्डस टू माईनॉरिटीज कान्सटीट्यूशनल प्रिंसीपल पॉलीसीज एण्ड फ्रेमवर्क इन.एम. इमाम माईनॉरिटीज एण्ड दी लॉ", न्यू दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980).
- जैन, आर.बी.; "पॉलिटिकल साइंस इन ट्रान्जीशन", नई दिल्ली, गीतांजली प्रकाशन, (1981).
- जोन्स, मोरिस; "पार्लियामेंट इन इंडिया", लंदन, लोंगमैन प्रेस, (1957).
- कालूराम; "राजस्थान का इतिहास", जयपुर, पंचशील प्रकाशन, (1984).
- कश्यप, सुभाष; "संविधान की आत्मा : प्रस्तावना, लोकतंत्र समीक्षा" (अप्रेल–जून, 1969).
- कश्यप, सुभाष; "दल बदल और राज्यों की राजनीति", मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, (1970).
- खाँ, अहमद, सर सैय्यद; "दी कॉज ऑफ दी इण्डिया रिवोल्ट", दिल्ली, कल्पाज पब्लिकेशन, (1972).
- खान, रशीउद्दीन; "माईनॉरिटी सेगमेन्ट इन इण्डिया पॉलिटी", इलाहाबाद, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, (सितम्बर 2, 1978).
- कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988).
- कोठारी, रजनी; "क्लास एण्ड कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", जनरल ऑफ इकानॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक 23, क्रमांक 49, दिसम्बर 3, 1989.
- कोठारी, रजनी; "भारत में राजनीति", मेरठ, मिनाक्षी प्रकाशन, (1970).
- कोठारी, रजनी; "पॉलिटिकल्स इन इंडिया", नई दिल्ली, ओरियन्टल, लोंगमैन प्रेस, (1977).

- कोठारी, रजनी; "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1998).
- कोठारी, रजनी; "भारत में राजनीति", मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, (1979).
- कोठारी, रजनी; "पॉलिटिकल सिस्टम", बम्बई, अलीई पब्लिशर्स, (1979).
- कृष्ण, गोपाल; "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली, एन.ए. पब्लिशर (1981).
- कृष्णा, के.वी.; "द प्रोब्लम ऑफ माईनॉरिटीज", दिल्ली, स्टकलिंग प्रेस, (1969).
- लेपोन्स, जे.ए.; "दी प्रोटेक्शन ऑफ माईनॉरिटीज", बेकली, यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफोर्निया प्रेस, (1960).
- लोहिया, राम मनोहर; "कास्ट सिस्टम इन इंडिया", हैदराबाद, हिन्द प्रकाशन, (1961).
- लुबरा बी.पी.; "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967).
- मारकेन्द्रन, के.सी.; "सेन्टर स्टेट रिलेशन्स", जालन्धरन, ए.वी.सी. पब्लिकेशन, (1986).
- माथुर, पी.सी.; "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984).
- माथुर, वी.वाई.; "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इंडिया", न्यू दिल्ली, त्रिमूर्ति पब्लिशिंग (1972).
- मेहता एवं पटवर्धन; "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इंडिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान (1942).
- मेहता, बी.आर.; "आइडोलोजी मॉर्डनाइजेशन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन (1983).

* मेनन के. अपरनाथ; "दलित गौरव के नाम पर", नई दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 22, 2017.
* मिल, जॉन स्टूअर्ट; "रिप्रेजेन्टेटिव गर्वमेन्ट", लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (1947).
* मिश्रा, बी.बी.; "दी इण्डियन मिडिल क्लासेज पेपर ग्रोथ इन मॉडर्न टाइम्स", लंदन, (1961).
* नारायण, प्रकाश; "अपना राजस्थान", जयपुर, पिंकसिटी पब्लिशर्स, (1988).
* नायर, कुलदीप; "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, नवम्बर, 5, 1982.
* पटेल, सरदार; "संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के समय दिया गये भाषण के अंश", (मार्च 29, 1949)
* पावली, एम.वी.; "कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया", नई दिल्ली, एशिया पब्लिशिंग हाउस, (1977).
* पीरजादा, सैयद; "सोल्यूशन ऑफ पाकिस्तान", लाहौर, पेंग्विन बुक हाऊस, (1963).
* प्रसाद, एस.एस.; "सेन्टर स्टेट रिलेशन, नीड फॉर चेन्ज इन दी कान्सटीट्यूशन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन", अंक–7, नं. 2, (जनवरी–जून, 1984).
* पुंताम्बेकर; "दी सैक्यूलर स्टैट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949).
* रॉय, सत्या एम.; "भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवादी", हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, (1983).
* राणदेवे, बी.टी.; "जाति और वर्ग", नई दिल्ली, नेशनल बुक सेन्टर, (1983).

- रूश्दी, सलमान; "द सेटेनिक वसैज", इण्डिया टूडे, (जून, 1989).
- शर्मा, प्रभुदत्त; "केन्द्र राज्य सम्बन्ध प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में", जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1976).
- शर्मा, जी.एन.; "राजस्थान का इतिहास", नई दिल्ली, कृष्णा प्रकाशन, (1983).
- सिंह, करण; "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", जयपुर, रूपा बुक्स प्रा.लि. (1992).
- सिन्हा, बी.के.; "सेक्यूलरिज्म इन इंडिया", बम्बई, लालवानी पब्लिशिंग हाउस (1986).
- स्मिथ, डब्ल्यू.सी.; "मॉडर्न इस्लाम इन इंडिया", लाहौर, बुक्स रीड, (2006).
- सोमरा, करण सिंह; "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", नई दिल्ली, प्रिन्टवैल, (1992).
- श्रीनिवास एम.एन.; "आधुनिक भारत में जातिवाद", भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987).
- श्रीनिवासन, एस.; "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", दिल्ली, इंडिया टूडे, मार्च 22, 2017.
- श्रीवास्तव, अमिताभ; "पटरियों पर बिछी साजिश", नई दिल्ली, इण्डिया टूडे, मार्च 15, 2017.
- स्वर्णकार; "पॉलिटिकल इलीट", जयपुर, रावत पब्लिकेशन, (1988).
- तालत, कमल; "सेक्यूलरजिम इन इण्डिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन, (जनवरी–जून, 1983).

- तैय्यब, बहरूद्दीन; "दी सैल्फ इन सेक्यूलरिज्म, नई दिल्ली, ओरियन्ट लोंगमैन पब्लिशिंग लिमिटेड, (1972).
- वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिजम इन इण्डिया", दी इण्डियन जनरल ऑफ पॉलीटिकल स्टेडिज, दिसम्बर 1887.
- वर्मा, एस.एल.; "राजनीति विज्ञान में अनुसंधान–प्रतिनिधि", जयपुर, हिन्द ग्रंथ अकादमी, (1980).
- वर्मा, एस.पी.; "वोटिंग बिहेवियर इन राजस्थान", ए स्टेडी ऑफ जनरल इलेक्शन, (1971).
- बघवा, के.के.; "माईनॉरिटी सेकगार्ड इन इण्डिया", न्यू दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, (1979).
- वैगल एण्ड हैरीसन; "माईनरिटीज इन दी न्यू वर्ल्ड, सिक्ख केस स्टेडिज", न्यूयॉर्क, कोलिम्बया यूनिवर्सिटी प्रेस, (1958).

प्रमुख लेख एवं जनरल

- सूरि, सुरेन्द्र; "साइक्लोजी ऑफ कम्यूनोलीजी", टाइम्स ऑफ इण्डिया, (जून 13, 1984)
- नायर कुलदीप; "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, (नवम्बर, 5, 1982)
- लुबरा बी.पी.; "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", सेमिनार इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967).
- श्री निवासन, एस.; "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", इण्डिया टूडे, (फरवरी 8, 2017)
- डेका, कौशिक; "बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

- मेनन के. अपरनाथ; "दलित गौरव के नाम पर", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)
- श्रीवास्तव, अमिताभ; "पटरियों पर बिछी साजिश", इण्डिया टूडे, (मार्च 15, 2017)
- कोठारी, रजनी; "क्लास एण्ड कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", जनरल ऑफ इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक 23, क्रमांक 49, (दिसम्बर 3, 1989)
- कोठारी, रजनी; "इन्टीग्रेशन एण्ड एक्सक्ल्यूजन इन इण्डियन पॉलिटिक्स", जनरल ऑफ इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, (अक्टूबर 22, 1989)
- तालत, कमल; "सेक्यूलरजिम इन इण्डिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन, (जनवरी–जून, 1983).
- गर्ग, बी.एल.; "सिक्यूलरिजम इन इण्डिया", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन वॉल्यूम 1/1 नं. 1 (जनवरी–जून, 1983)
- प्रसाद, एस.एस.; "सेन्टर–स्टेट रिलेशन, नीडफार चेन्ज इन दी कान्सटीट्यूशन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, अंक 7, नं.2, (जनवरी–जून, 1984)
- वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", दी इण्डिया जनरल ऑफ पॉलिटिकल स्टेडिज, (दिसम्बर 11, 1987)
- तालत, कमल; "सेक्यूलरिजम इन इण्डिया, कन्सेपचुअल एण्ड ऑपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, (जनवरी–जून, 1983)

- शर्मा, सुधेश कुमार; "इन्टर स्टेट काउन्सील–एन आसपेक्ट ऑफ कॉपरेटिव फूडरिलिडंग", दी इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, (जुलाई–1976)
- सूरि, सुरेन्द्र; "साइक्लॉजी ऑफ कम्यूनोलॉजी", दी टाइम्स ऑफ इण्डिया, (जून, 1984)
- माथुर, शिवचरण; "राष्ट्रीय एकता के लिए निजी स्वार्थों को तिलांजली देने जरूरी", दैनिक नवज्योति (जनवरी–1988)
- वर्मा, एस.एल.; "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कयूनलिजम इन इण्डिया", दी इण्डियन जनरल ऑफ पालीटिकल स्टेडिज, दिसम्बर 1887.

समाचार–पत्र एवं पत्रिकाएँ

- वर्ल्ड इकोनॉमिक रिव्यू
- इकोनॉमिक पॉलिटिकल विकली
- वर्ल्ड फोकस
- डाउन टू अर्थ
- कुरूक्षेत्र
- योजना
- सेन्टर फॉर सिविल सोसायटी रिपोर्ट
- इन्स्टिट्यूट ऑफ पीस एण्ड कॉन्फ्लिक्ट स्टडीज
- सेन्टर फॉर पब्लिक पॉलिस रिसर्च
- इन्स्टिट्यूट ऑफ रीजनल स्टडी
- द इण्डियन एक्सप्रेस
- द एशियन ऐज
- दक्कन हेराल्ड

- दैनिक भास्कर
- पंजाब केसरी
- हरिभूमि
- नवज्योति
- दैनिक जागरण
- जनसत्ता
- राष्ट्रदूत
- द हिन्दू
- जनसत्ता
- इण्डिया टूडे
- टाइम्स ऑफ इण्डिया
- हिन्दुस्तान टाइम्स
- बिजनेस स्टैण्डर्ड
- इण्डिया डिफेन्स स्टडी एनालाइसिस
- द ट्रिब्यून
- लोकमत
- द पायनियर
- द स्टेट्समैन
- द टेलीग्राफ
- महाराष्ट्र टाइम्स

प्रमुख वेबसाइट्स

- http://www.wcd.nic.in
- http://www.wcd.rajasthan.gov.in
- http://www.ncw.nic.in
- http://www.nhrc.nic.in
- http://www.rshrc.nic.in
- http://www.labour.nic.in
- http://www.cswb.gov.in
- http://www.cswb.gov.in
- http://sje.rajasthan.gov.in
- http://unifem.org
- http://constitution.org
- http://censusindia.gov.in
- http://www.un.org/instraw
- http://www.un.org

सेमिनार प्रमाण–पत्र

(157)

NATIONAL CONFERENCE ON REVISITING **gandhi** AND CONTEMPORARY MASS MOVEMENTS IN HISTORY WRITING

04TH-05TH NOVEMBER 2019

SPONSORED BY

ICHR

ORGANISED BY

Department of History and Indian Culture
University of Rajasthan, Jaipur

Bharatiya Itihasa Sankalan Samiti
Jaipur Prant

CERTIFICATE

This is to certify that Prof. / Dr. / Mr. / Ms. Saroj Meena, Lectures (Pol. Sc.)

of Swami Totaram Rampratap Govt. Girls SS School, Pano Ka Dariba, Jaipur

has participated/ presented a paper entitled "समकालीन भारतीय दृष्टिकोण गांधी का मानवाधिकारवादी दर्शन" in the Conference.

Dr. Pramila Poonia	Dr. Neekee Chaturvedi	Dr. D.C. Choubey
Conference Convenor	Conference Director	Conference Coordinator

Department of Political Science,
University of Rajasthan, Jaipur

University Leadership Programme

Certificate

This is to certify that Prof./Dr./Mr./Ms. Saroj Meena *has participated in a ULP national seminar on* **Contemporary Indian Politics: Trends and Challenges** *organised by Department of Political Science, University of Rajasthan Jaipur on 26-27 February, 2020. He/she has presented a paper titled* भारत मे शिक्षा गुणवत्ता : चुनौतियां और समाधान

Dr. Raka Singh
(Head & Director ULP)

Mr. L.R. Choudhary
(Seminar Co-Convener)

Dr. Rakesh Kumar Jha
(Seminar Convener)

प्रकाशित शोध–पत्र
एवं
प्रमाण–पत्र

INSPIRA

Reg. No. SH-481 R- 9-V P-76/2014
www.inspirajournals.com

Dated : 30–04–2020

Certificate of Publication

This certifies that research paper / article titled

Paper titled : समकालीन भारतीय दृष्टिकोण में गाँधी जी का मानवाधिकारवादी दर्शन

authored by : *प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह एवं सरोज मीना*

शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

has been published in **Volume 02 No. 01** Issue **January - March, 2020** of INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION, MODERN MANAGEMENT, APPLIED SCIENCE & SOCIAL SCIENCE (IJEMMASSS), ISSN : 2581-9925, COSMOS IMPACT FACTOR: 5.143.

Indexing Status: Inspira- IJEMMASSS is Indexed and Included in:
COSMOS Foundation & Electronic Journal Library EZB, Germany
International Scientific Indexing (ISI) || General Impact Factor (GIF)

(A bi-lingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Journal)

Prof. (Dr.) S.S. Modi
Chief Editor

ISSN: 2581-9925
COSMOS Impact Factor 5.143

INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION, MODERN MANAGEMENT APPLIED SCIENCE & SOCIAL SCIENCE (IJEMMASSS)

A bi-lingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Journal
Vol. 02 | No. 01 | January-March, 2020

Indexing Status: IJEMMASSS is Indexed and Included in:
COSMOS Foundation & Electronic Journal Library EZB, Germany
International Scientific Indexing (ISI) || General Impact Factor (GIF)

INSPIRA
JAIPUR - INDIA

International Journal of Education, Modern Management Applied Science & Social Science
Vol. 02 No. 01, January-March, 2020

ISSN: 2581-9925

INTERNATIONAL JOURNAL OF
EDUCATION, MODERN MANAGEMENT, APPLIED SCIENCE
& SOCIAL SCIENCE (IJEMMASSS)

A bi-lingual Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Quarterly Journal

Volume 02	No. 01	January - March, 2020

CONTENTS

1	BALANCING WORK-LIFE AMONG EMPLOYEES WORKING FOR INSURANCE SECTOR IN MUMBAI & SURROUNDING AREAS ***Dr. Mangesh R Jadhav & Dr. Pradip Manjrekar***	01-11
2	STUDY ON IMPACT OF TRAINING ON EMPLOYEE PERFORMANCE IN MANUFACTURING INDUSTRY ***Ms. Sonali Gaur & Ms. Hemlata***	12-17
3	INITIATIVES OF GOVERNMENT OF INDIA TO COMBAT THE CRISIS OF RECESSION: AN EVALUATION ***Dr. Santosh Kumar Singh***	18-20
4	SUSTAINABLE DEVELOPMENT THROUGH CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY: A CASE STUDY OF ITC LTD. ***Dr. Kumari Soni***	21-28
5	APPRAISAL OF NON PERFORMING ASSETS IN BANKING SECTOR: AN INDIAN PERSPECTIVE ***Dr. Jyoti Kumar & Dr. Pratyush Chandra Mishra***	29-35
6	KNOWLEDGE ABOUT UMBILICAL CORD STEM CELL BANKING: METHODOLOGY AND FINDINGS ***Minaxi Vyas***	36-40
7	IMPACT OF PRIVATIZATION ON QUALITY OF HIGHER EDUCATION ***Dr. Dimple Bhalla & Aditi Anish Kuttappan***	41-47

8	IMPACT OF LIBERALIZATION ON THE LIFE INSURANCE SECTOR IN INDIA ***Vibha Johia***	48-56
9	GREEN BANKING AND CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY: A STEP TOWARDS SUSTAINABLE DEVELOPMENT ***Dr. Inderjit Singh & Yogesh Paul***	57-61
10	IMPACT OF EMPLOYEE WELFARE PRACTICES IN EDUCATION SECTOR ON TEACHING EMPLOYEES ***Dr. Urvesh Chaudhery & Urja Chopra***	62-70
11	STUDY OF MARKET OPPORTUNITIES FOR M.L. INDUSTRIES ***Ms. Smriti Khanna & Sahil***	71-76
12	A STUDY ON BANKING SERVICES, CUSTOMER SATISFACTION & AWARENESS ***Ms. Sonali Gaur & Ms. Sonali Saini***	77-82
13	KNOWLEDGE ABOUT EXCLUSIVE BREASTFEEDING: METHODOLOGY AND FINDINGS ***Gianta Devi***	83-86
14	A STUDY ON BARRIERS TO THE SUCCESS OF WOMEN ENTREPRENEURS IN KANYAKUMARI DISTRICT ***R.Jackulin Ancy & Dr. Herald M Dhas***	87-92
15	ROLE OF COMMERCIAL BANKS IN ECONOMIC DEVELOPMENT OF INDIA ***Dr. Vandana Tiwari***	93-96
16	STUDY ON EMPLOYEE JOB SATISFACTION IN DONALDSON INDIA FILTER SYSTEM LIMITED ***Shweta Sharma & Man Mohit***	97-102
17	INCLUSIVE EDUCATION PRACTICES, OUTCOMES AND LIMITATIONS IN PRIMARY SCHOOLS OF WEST BENGAL: A MIXED METHOD STUDY ***Chelsea Ann Scolt***	103-107

18	A STUDY OF INCREASING ATTRITION RATE OF EMPLOYEES IN HOTEL INDUSTRY W.R.T HOTELS IN KERALA ***Ms. Radhika Menon & Dr. Pradip Manjrekar***	108-114
19	STUDY ON EMPLOYEE SATISFACTION IN AUTOMOBILE INDUSTRY ***Sandeep Dubey & Rohit Dubey***	115-124
20	ENVIRONMENT SUSTAINABILITY THROUGH TECHNOLOGICAL ADVANCEMENT AND INNOVATION: A CASE FROM INDIAN CEMENT INDUSTRY ***Megha Adlakha & Dr. L.C. Panjabi***	125-130
21	OPINION OF POLICY MAKERS ABOUT PRIMARY HEALTH CENTERS IN MYSORE DISTRICT: AN OVERVIEW ***Dr. Bhavani***	131-136
22	A STUDY OF OCCUPATIONAL STRESS AMONG SCHOOL TEACHERS IN SELECTED AREAS OF NAVI MUMBAI ***Shilpi Saxena & Dr. Pradip Manjrekar***	137-143
23	MID DAY MEAL PROGRAMME AN EFFECTIVE TOOL TO HUNGER FREE EDUCATION FOR SCHOOL GOING CHILDREN: A STUDY IN LOCAL AND CENTRALIZED KITCHEN MODEL IN GANJAM DISTRICT ***Dr. Jyoti Prakash Mohanty & Dasarathi Tripathy***	144-150
24	EFFECT OF CONSTRUCTIVIST APPROACH ON ACHIEVEMENT IN MATHEMATICS AMONG UPPER PRIMARY STUDENTS OF BHOPAL DISTRICT ***Dr. Sheena Thomas***	151-160
25	ACCESS TO COMMON PROPERTY RESOURCES AND ITS IMPACT ON HOUSEHOLD FOOD SECURITY IN INDIA ***Shreya Mitra***	161-167
26	IMPACT OF COVID-19 ON OUR LIVES ***Dr. Priyanka Sharma***	168-171

27	A STUDY OF INCREASING ATTRITION RATE OF EMPLOYEES IN HOTEL INDUSTRY: SPECIAL REFERENCE, HOTELS IN & AROUND WORLD FAMOUS ARAMBOL BEACH, NORTH GOA ***Dr. Alpha Lokhande & Dr. Pradip Manjrekar***	172-179
28	माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, भावात्मक लब्धि एवं बुद्धिलब्धि में सम्बन्ध ***डॉ. नवप्रभाकर लाल गोस्वामी एवं श्रीमती बबीता शर्मा***	180-184
29	शिक्षण व्यवसाय में ई–लर्निंग की प्रासंगिकता ***अनिल कुमार खण्डेलवाल एवं डॉ. सी.पी. पालीवाल***	185-189
30	बुद्धकालीन समाज और आर्थिक व्यवस्था ***डॉ. सतीश कुमार***	190-192
31	समकालीन भारतीय दृष्टिकोण में गाँधी जी का मानवाधिकारवादी दर्शन ***प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह एवं सरोज मीना***	193-196
32	मुहूर्त्त का महत्त्व ***दीपावली व्यास***	197-200
33	छात्र असंतोष के कारण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***अखिलेश कुमार एवं कपिला यादव***	201-203
34	उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता एवं समायोजन का शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन ***डॉ. नवप्रभाकर लाल गोस्वामी एवं श्रीमती सोनल सिंह***	204-208

❖❖❖

International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 02, No. 01, January - March, 2020, pp.193-196

समकालीन भारतीय दृष्टिकोण में गाँधी जी का मानवाधिकारवादी दर्शन

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह*
सरोज मीना**

परिचय

गाँधीजी के चिंतन की विशिष्ट प्रकृति है जिसे समकालीन चिंतन की किसी धारा में समाहित नहीं किया जा सकता। गाँधी जी के विचार न तो उदारवादी, न मार्क्सवादी और न ही समुदायवादी है बल्कि इन सभी चिंतन धाराओं से आगे बढ़कर वे मानववाद दर्शन का सूत्रपात करते हैं। वे कर्तव्य परायण व्यक्ति की अस्मिता व स्वातंत्र्य सुरक्षित करने की बात करते हैं। गाँधीजी का मानववादी दर्शन व्यक्ति स्वातंत्र्य व अस्मिता का संरक्षण करते हुए राजनीति को धर्म, सत्य व अहिंसा से जोड़ने का ऐसा प्रयास है जिससे राजनीति आत्मसाक्षात्कार का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाए।

उदारवाद व व्यक्तिवाद ने व्यक्ति को उसके हितों के संदर्भ में परिभाषित करते हुए व्यक्ति को साध्य माना है। बेंथम ने व्यक्ति के हितों को अंतःचेतना का स्थान दे दिया। इसी क्रम में उपयोगितावादी अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की वकालत करते हुए गुण के स्थान पर मात्रा को प्राथमिकता देते हैं। इस व्यक्ति केंद्रित चिंतन के विरुद्ध आदर्शवादी विचारधारा ने व्यक्ति की स्वतंत्रता व नैतिकता को राज्य पर निर्भर बना दिया, तो वहीं समाजवाद ने मनुष्य तथा उसके श्रम को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तथा इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए वर्तमान संस्थागत ढांचे में परिवर्तन करने की आवश्यकता पर बल दिया।

मार्क्स एक ऐसे प्रमुख चिंतक थे जिन्होंने मनुष्य की स्वतंत्रता को उस समय तक स्थगित करने की बात कही जब तक वर्तमान शोषणकारी व आधिपत्यकारी पूंजीवादी व्यवस्था का अंत नहीं हो जाता। वहीं गाँधीजी ने इन सबसे अलग माना कि मानववाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता न तो संस्थाओं पर निर्भर करती है और न ही भौतिकता से संचालित होती है। गाँधीजी ने व्यक्ति को सम्मान का पात्र इसलिए माना कि उसमें सत्य को आत्मसात करने की, अहिंसा पर चलने व धर्म का निर्वाह करने की पूर्ण क्षमता है। गाँधीजी व्यक्ति को अधिकारों के धारक के रूप में नहीं वरन् अधिकारों के निर्माता के रूप में देखते थे। गाँधीजी की दृष्टि में मानव अधिकार उसके कर्तव्यों के अनुगामी है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने मानवीय कर्तव्यों का पालन करे तो उसके अधिकार स्वमेव संपुष्ट हो जाएँगे।

गाँधीजी के मानवाधिकार की दार्शनिक पृष्ठभूमि सत्य, अहिंसा व धर्म पर आधारित है। सत्य, अहिंसा व धर्म मानव की वैयक्तिक स्वार्थपरक विचारों से ऊपर उठाकर समाज व समूह के हित से संबद्ध कर देता है। गाँधीजी ने प्रस्थापित किया कि मनुष्य में निहित नैतिकता और सत्य के प्रति निष्ठा का संयोग जब अहिंसात्मक व्यवहार से होता है, तब व्यक्ति मानव धर्म का पालन करता है, इसका प्रभाव व्यक्ति के अंतःसंबधों का मिश्रण है अतएव उसमें आवेश, संवेग व उद्वेग आदि का होना स्वाभाविक है लेकिन आध्यात्म पक्ष प्रधानता से व्यक्ति में शुभत्व को जाग्रत किया जा सकता है और अपूर्ण मानव व मानवता को पूर्णता की ओर अग्रसर किया जा सकता है। गाँधीजी का विश्वास था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का समुचित पालन करे तो सामाजिक समरसता के साथ–साथ अधिकार भी प्रतिफलित होंगे।

गाँधीजी के चिंतन में अधिकार कर्तव्यों से संबंधित है। उन्होंने कर्तव्यों को अधिकारों का स्त्रोत बताया। गाँधीजी ने गीता के निष्काम कर्मयोग की नयी व्याख्या की। वे इच्छा की स्वतंत्रता पर बल देते हैं और कहते हैं कि व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य नैतिक नहीं हो सकता यदि वह स्वैच्छिक नहीं हो। अतः नैतिक कार्य

* शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

का प्रथम आधार यह है कि वह स्वैच्छिक हो और नैतिक इच्छाओं से प्रेरित हो। साधन की पवित्रता अपेक्षित है वे ही साध्य पवित्र माने जाएँगे जिनकी प्राप्ति हेतु पवित्र साधन अपनाये गये हों। गाँधीजी के अनुसार कोई भी कार्य तब नैतिक माना जाएगा जब अहम् के भाव से मुक्त हो और निस्वार्थ इच्छा पर आधारित हो एवं सर्वजनहिताय की कामना से युक्त हो।

गाँधीजी के अनुसार मानवीय उत्तरदायित्व मानवीय कर्तव्य से संबंधित है और उसका मानवीय क्षमता के अनुरूप अनुपालन से ही मानवाधिकार का जन्म होता है। गाँधीजी का मानना था कि यदि व्यक्ति मानवाधिकार प्राप्त करना चाहता है तो उसे उन कर्तव्यों का पालन करना होगा जिससे अधिकार प्रस्फुटित होते हैं। गाँधीजी व्यक्ति के कर्तव्य व दायित्व पर बल देने के साथ व्यक्ति की अस्मिता और गरिमा को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति की स्वातंत्र्य पर बल देते हैं। मानवाधिकार प्राप्ति हेतु व्यक्ति का कर्तव्यपरायण होना आवश्यक है और स्वतंत्र व्यक्ति कर्तव्यपरायण हो सकते हैं। गाँधीजी की स्वतंत्रता व्यक्ति के मध्य तथा व्यक्ति व प्रकृति के मध्य एकता में प्रतिफलित होती है। गाँधीजी की स्वतंत्रता संबंधी संकल्पना नैतिकता पर आधारित है। व्यक्ति की स्वतंत्रता मर्यादित व नैतिक होनी चाहिए जिससे नैतिक सामाजिक व्यवस्था बनी रहे।

गाँधीजी ने स्थापित करने का प्रयास किया कि उद्‌विकासीय संरचना में व्यक्ति के विकास के जो चरण होंगे वे समस्त स्तरों से गुजरते हुए सार्वभौमिक विकास की दशाओं के अनुरूप व्यक्तिगत विकास को सुनिश्चित करेंगे। इस प्रकार संपूर्ण का संतुलित व स्वतंत्र विकास हो पायेगा। स्वतंत्रता ऐसी नैतिक शक्ति व नैतिक अधिकार है जिसके द्वारा समाज का नैतिक विकास संभव है। इसके द्वारा समाज के वर्तमान ढांचे में परिवर्तन लाया जा सकता है। गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता सिर्फ व्यक्ति के विकास के लिए नहीं वरन् संपूर्ण समाज के विकास के लिए अपरिहार्य है जिसमें व्यक्ति का विकास अंतर्निहित हैं। गाँधीवादी अवधारणा मानवतावादी चिंतन पर आयामों के निकट है जिनमें राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप और व्यक्ति के अधिकतम समग्र विकास के लिए अधिकतम अवसरों की उपलब्धता की बात कही। गाँधीजी के चिंतन में स्वतंत्रता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं वरन् एक सामाजिक आवश्यकता है।

गाँधीजी मनुष्य की क्षमताओं के समग्र विकास के लिए स्वतंत्रता की भांति समानता को भी अपरिहार्य मानते हैं। गाँधीजी की स्वतंत्रता की अवधारणा में समानता की अवधारणा अंतर्निहित है क्योंकि समानताविहीन स्वतंत्रता मूल्यहीन हो जाती है। गाँधी समानता के उस आधारभूत तत्व के पक्षधर थे जो पारस्परिक प्रेम, सहयोग, दया आदि पर निर्भर हो, उनके अनुसार किसी पर किसी का वर्चस्व नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से समानता का अधिकार रखता है। गाँधी प्रत्येक मनुष्य के प्रति आत्मवत प्रेम की आवश्यकता पर बल देते थे। उनका मानना था कि आत्मवत् प्रेम का मूल आधार जाति, धर्म, वर्ण, संप्रदाय, लिंग भेद आदि से मुक्त प्रेम है। गाँधी ने यह विचार स्थापित किया कि इस मानव समाज में जाति, प्रजाति या वर्ण में निहित असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए तथा इस आधार पर किसी व्यक्ति को दूसरे की तुलना में असमान स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

गाँधी आर्थिक समानता का विचार देते हुए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य लिया जाये और उसकी आवश्यकतानुसार उसे दिया जाए। गाँधी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति के पास रहने के लिए मकान, पहनने के लिए वस्त्र और भोजन के लिए पर्याप्त अन्न होना चाहिए। इस प्रकार गाँधी समानता के माध्यम से समाजिक न्याय की बात करना चाहते थे, उनका मानवतावादी चिंतन एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ समाज का सबसे अंतिम व्यक्ति भी एक सम्मानपूर्ण व प्रतिष्ठापरक जीवन व्यक्ति कर सके।

गाँधी भौतिक आववश्यकताओं को सीमित कर न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की बात करते हैं चूँकि सीमित भौतिक आवश्यकताओं से गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है। अतः जो कुछ भी व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक है उसे समाज के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

इस प्रकार गाँधी का मानवाअधिकारवादी दर्शन उस सर्वोदय की कामना करता है जहाँ मानवीय संबंध सत्य, अहिंसा और धर्म पर आधारित होंगे और सभी की क्षमताओं का पूर्ण विकास व सदुपयोग होगा। सर्वोदय बहुसंख्यक के कल्याण की नहीं वरन् सबके कल्याण की बात करता है। वे चाहते थे कि सबका सह विकास हो, सबका सब प्रकार से उत्थान हो। गाँधी का सर्वोदयी दर्शन अहिंसा पर आधारित ऐसी सामाजिक संरचना की बात करता है जहाँ व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक होंगे और दोनों समन्वित रूप से एक आदर्श राज्य की स्थापना करेंगे।

पूर्ण स्वराज्य की बात करते हुए गाँधी कहते हैं कि वह जितना किसी राजा के लिए होगा, उतना ही किसानों के लिए, जितना धनवान जमींदार के लिए होगा, उतना ही खेतिहर मजदूर के लिए, उतना ही हिन्दुओं के लिए होगा, उतना मुसलमानों के लिए जितना जैन, यहूदी, सिख, इसाईयों के लिए। उसमें जाति–पाँति, धर्म अथवा दर्जे का भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा। गाँधी अपने मानवतावादी चिंतन में विचार देते है कि कोई भी अस्पृश्य पैदा नहीं होता। मानव प्राणियों को जन्म से अस्पृश्य मानना गलत है। गाँधीजी ने चरखे को अपने सर्वोदयी मानवाधिकारवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में मानते हुए कहा कि चरखे का संदेश उसकी परिधि से कहीं ज्यादा व्यापक है। उसका संदेश सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन तथा गरीब और अमीर, पूंजी और धर्म, राज्य और किसान के बीच अविच्छेद संबंध स्थापित करने का संदेश है।

इसी प्रकार गाँधी मानवाधिकार के वृहद् आयाम के सम्पुष्ट करते हैं। गाँधीजी एक ऐसी शासन व्यवस्था की कल्पना करते हैं जहाँ सबल व निर्बल दोनों को समान अवसर मिल सके। सांप्रदायिकता को समाज की शांति और सह–अस्तित्व के लिए घातक मानते हुए, हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल दिया। गाँधी के अनुसार साम्प्रदायिकता का विचार मानव–मानव के बीच, धर्म–धर्म के बीच और वर्ग–वर्ग के बीच गहरी खाई पैदा करता है इसलिए वे हिन्दू–मुस्लिम एकता से ही राष्ट्र के विकास की बात करते थे। वे कहते थे कि ये दोनों संस्कृति मिलकर राष्ट्र के निर्माण में सहायक सिद्ध होंगे।

गाँधीजी अपने विचारों में लोकतांत्रिक शासन पद्धति की विकेन्द्रित व्यवस्था पर बल देते हुए ग्रामीण गणतंत्रों की संघीय व्यवस्था की स्थापना पर जोर देते हैं। वे लोकतंत्र में संपूर्ण व्यक्तियों के अधिकतम हित की अपेक्षा करते हैं। गाँधी की लोकतंत्र की अवधारणा में मानवीय हित निहित है गाँधी ऐसे लोकतंत्र की कामना करते हैं जिसमें त्याग, सेवा व समर्पण आदि मानवीय मूल्य निहित हो। उनके अनुसार लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासन करने वाला त्याग और सेवा भाव की भावना से पूर्ण होगा, तभी वह मानव जाति का कल्याण करेगा और ऐसी व्यवस्था में ही लोगों को समान अधिकार तथा सुखमय जीवन का अवसर प्राप्त होगा। इस प्रकार गाँधीजी का मानवाअधिकारवादी दर्शन कए समग्र दर्शन है। यह अहंवादी व्यक्ति के अधिकारों की वकालत नहीं करता वरन् कर्तव्यशील व्यक्ति की निष्ठा से उद्‌भूत दर्शन है। गाँधी का मानवाअधिकारवादी दर्शन परंपरागत, जातीय, धार्मिक स्वातंत्र्य, समानता, सर्वोदय समाजिक न्याय व जनसहभागिता वाली शासन व्यवस्था के द्वारा मानवाधिकार को सुलभ बनाने का प्रयास है।

गाँधी के अनुसार जब एक व्यक्ति का उत्थान होता है तो बहुतों के लिए अधिकार का सृजन करता है, जबकि एक व्यक्ति का नैतिक पतन बहुतों को उनके अधिकारों से वंचित करता है। वास्तव में गाँधी कर्तव्य पर बल देकर मानवाधिकार की प्राप्ति को संभव बनाते हैं। गाँधी का मानवाधिकारवादी दर्शन इस सत्य को स्थापित करता है कि यदि किसी व्यक्ति को मानवाधिकार अवधारित करना हो तो उसे अपने उन सभी कर्तव्यों का पालन करना होगा जिससे वे अधिकार निगमित होते हैं, तभी समाज में संघर्ष समाधान का मार्ग प्रशस्त होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

⇒ चन्द्रा विपिनः "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, (1984), पृ.सं. 169

⇒ मेहता एवं पटवर्धनः "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इण्डिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान (1942), पृ.सं. 19

⇒ कोठारी रजनीः "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988), पृ.सं. 241–253

⇒ कृष्ण गोपालः "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली एन.ए. पब्लिशर, (1981), पृ.सं. 29

⇒ श्रीनिवास एम.एन.: "आधुनिक भारत में जातिवाद" (भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987), पृ. सं. 159

⇒ डी. स्मिथ विलफ्रेडः "मार्डन इस्लाम इन इण्डिया", लाहौर, पेंगविन बुक हाऊस, (1943), पृ.सं. 41

⇒ दीक्षित प्रभाः "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन, (1980), पृ.सं. 41

⇒ आजाद मौलानाः "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली ओरियन्टलोंगमैन, प्रेस, (1958), पृ.सं. 131

⇒ माथुर, पी.सी.: "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984)

⇒ वर्मा, एस.एल.: "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया"

⇒ माथुर, वाई.वी.: "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", न्यू दिल्ली त्रिमूर्ति पब्लिशिंग, (1972)
⇒ महात्मा गाँधीः "दी वे टू कम्यूनल हारमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958)
⇒ जैन, एम.एस.: "आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक", दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 27
⇒ अवस्थी, डॉ. अमरेश्वरः "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", पृ.सं. 313
⇒ अन्सारी, एम.ए.: "मुस्लिम एण्ड दी काँग्रेस", दिल्ली विकास पब्लिशिंग, (1979)
⇒ इंजीनियर, अली असगरः "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू आवर पेज", बम्बई इस्लामिक स्टैडिज, (1984)
⇒ सूरि सुरेन्द्रः "साइक्लोजी ऑफ कम्यूनोलीजी", टाइम्स ऑफ इण्डिया, (जून 13, 1984)
⇒ नायर कुलदीपः "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, (नवम्बर, 5, 1982)
⇒ लुबरा बी.पी.: "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", सेमिनार इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967), पृ.सं. 20
⇒ श्री निवासन, एस.: "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", इण्डिया टूडे, (फरवरी 8, 2017)
⇒ डेका, कौशिकः "बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)
⇒ मेनन के. अपरनाथः "दलित गौरव के नाम पर", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

❖◆❖

INSPIRA

Reg. No. SH-481 R- 9-V P-76/2014
www.inspirajournals.com

Dated : 15–05–2020

Certificate of Publication

This certifies that research paper / article titled

Paper titled : **साम्प्रदायिकता और राज्यः भारत के संदर्भ में**

authored by : ***प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह एवं सरोज मीना***

शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

has been published in **Volume 06 No. 01** Issue **January - March, 2020** of INSPIRA JOURNAL OF COMMERCE, ECONOMICS AND COMPUTER SCIENCE (JCECS), ISSN : 2395-7069, COSMOS IMPACT FACTOR 4.9640.

Indexing Status: Inspira-JCECS is Indexed and Included in:
COSMOS Foundation & Electronic Journal Library EZB, Germany || Directory of Journals indexing (DOJI)
International Institute of Organised Research (I2OR) || Global Society for Scientific Research (JIF)
International Accreditation and Research Council (IARC) || Research Bible || Academic Keys
International Society for Research Activity (ISRA) || Open Academic Journals Index (OAJI)
Directory of Research Journal Indexing (DRJI) || International Scientific Indexing (ISI)
Journal Factor (JF) || General Impact Factor (GIF) || Scientific World Index (SCIWIN)
International Innovative Journal Impact Factor (IIJIF).

(A National Quarterly Double Blind Peer Reviewed Refereed Journal of IRA)

Prof. (Dr.) S.S. Modi
Chief Editor

Inspira- Journal of Commerce, Economics & Computer Science(JCECS) Vol. 06 No. 01 January - March, 2020

ISSN: 2395-7069
COSMOS Impact Factor 4.9640

India

Inspira-

Journal of Commerce, Economics & Computer Science(JCECS)

A National Quarterly Double Blind Peer Reviewed Refereed Journal of Inspira - IRA
Vol.06 | No.01 | January – March, 2020

Journal of Inspira Research Association

Indexing Status: Inspira - JCECS is Indexed and Included in:
COSMOS Foundation & Electronic Journal Library EZB, Germany || Directory of Journals indexing (DOJI)
International Institute of Organized Research (I2OR) || Global Society for Scientific Research (JIF)
International Accreditation and Research Council (IARC) || Research Bible || Academic Keys
International Society for Research Activity (ISRA) || Open Academic Journals Index (OAJI)
Directory of Research Journal Indexing (DRJI) || International Scientific Indexing (ISI)
Journal Factor (JF) || General Impact Factor (GIF) || Scientific World Index (SCIWIN)
International Innovative Journal Impact Factor (IIJIF).

ISSN : 2395-7069 (Print) || COSMOS Impact Factor: 4.964

INSPIRA- JOURNAL OF COMMERCE, ECONOMICS AND COMPUTER SCIENCE

(A National Quarterly Double Blind Peer Reviewed Refereed Journal of Inspira-IRA)

VOLUME 06 **NO. 01** **JANUARY–MARCH, 2020**

CONTENTS

1	FINANCIAL STATEMENT ANALYSIS OF SELECTED PAPER COMPANIES IN INDIA ***Dr. Sunil Kumar Goyal***	01-07
2	A STUDY OF EXPENDITURE AND INCOME LEVEL OF SMALL AND MARGINAL FARMERS IN SOUTH HARYANA ***Savita & Vikas Batra***	08-12
3	IMPACT OF GST ON INDIAN ECONOMY ***Yashpal Meena & Dr. Deepak Shah***	13-16
4	CHALLENGES AND PROSPECTS OF HUMAN DEVELOPMENT IN BIHAR ***Dr. Pratyush Chandra Mishra***	17-20
5	CYBER CRIME AND CYBER SECURITY IN INDIAN BANKING SECTOR ***Dr. C.Mallesha***	21-27
6	A STUDY OF INPUT TAX CREDIT IN GOODS AND SERVICE TAX AND ITS IMPACT ON BUSINESSES ***Rameshwar Prashad Karal***	28-30
7	IMPLEMENTATION OF GOODS & SERVICES TAX IN INDIA: EMERGING OPPORTUNITIES AND CHALLENGES ***Ruchi Garg***	31-37
8	MARKET VALUE ADDED ANALYSIS OF SELECTED CEMENT COMPANIES IN RAJASTHAN ***Gajendar Kumar Jangir***	38-42

9	TRAINING AND DEVELOPMENT SCENARIO OF VARIOUS SECTORS IN INDIA ***Rajeshwar Kumar***	43-50
10	A STUDY OF ONLINE AND OFFLINE SHOPPING WITH SPECIAL REFERENCE TO WOMEN IN RAJASTHAN ***Akanksha Chawla***	51-57
11	SPECIAL ECONOMIC ZONES IN INDIA: PERFORMANCE, ISSUES & CHALLENGES AND WAY FORWARD ***Dr. Shanti Rai***	58-64
12	CASHLESS ECONOMY IN INDIA-PRESENT SCENARIO AND CHALLENGES ***Anjali Agarwal***	65-69
13	ANALYSIS OF TRIPLE BOTTOM LINE REPORTING PRACTICES (WITH SPECIAL REFERENCE TO SELECTED FAST MOVING CONSUMER GOODS COMPANIES IN INDIA) ***Rekha Naruka***	70-74
14	A REVIEW OF THE FRUITS DETECTION AND COUNTING IN AGRICULTURE USING DEEP LEARNING ***Nidhi Kundu***	75-78
15	SECTOR-WISE INVESTMENT OF PUBLIC HEALTH INSURANCE COMPANIES: AN ANALYSIS ***Dr. Shib Pada Patra***	79-84
16	ROLE OF EDUCATION AND INCOME GENERATING ACTIVITIES FOR EMPOWERING TRIBAL WOMEN COMMUNITIES IN RURAL ASSAM, NORTH-EAST INDIA ***Dr. Diganta Kumar Das***	85-94
17	FINANCIAL PERFORMANCE OF TSRTC OWNED BUSES AND PRIVATE HIRED BUSES – A STUDY ON HYDERABAD REGION ***Dr. Durdana Begum***	95-99
18	A STUDY ON ‘e-WASTE: MAJOR CHALLENGE FOR e-WORLD’ ***Surbhi Birla***	100-104

19	A STUDY TO ASSESS THE KNOWLEDGE REGARDING EXCLUSIVE BREAST FEEDING AMONG PRIMIPARA MOTHERS IN POSTNATAL UNITS OF SELECTED HOSPITALS IN JAIPUR ***Gianta Devi***	105-108
20	A STUDY ON THE STATUS OF SHG- BANK LINKAGE PROGRAMME IN JAGANNATH PRASAD BLOCK OF GANJAM DISTRICT IN ODISHA ***Dr. Jyoti Prakash Mohanty & Dasarathi Tripathy***	109-112
21	COMPARATIVE STUDY ON INCOME TAX PLANNING IN SLAB RATE 2019-20 & 2020-21 ***Dr. Dolly Kumar & Mr. Vishwajeet Roy***	113-119
22	EFFECTS OF ONLINE SHOPPING ON CONSUMER BUYING BEHAVIOUR OF COLLEGE STUDENTS ***Ms. Smriti Khanna & Mr. Ajay Baghel***	120-124
23	IMPACT OF GST ON INDIAN ECONOMY ***Mr. Sandeep Dubey & Ms. Priyanka***	125-129
24	IMPACT OF GREEN MARKETING ON CONSUMER BUYING BEHAVIOUR ***Ms. Sonali Gaur & Ms. Nikita Kapoor***	130-134
25	REVEALED COMPARATIVE ADVANTAGE AND TRADE INTENSITY: AN ANALYSIS OF INDIA’S TRADE WITH ASEAN ***Dr. Sadhna***	135-143
26	A CONCEPTUAL FRAMEWORK FOR CASHLESS ECONOMY: IN INDIA ***Dr. Ritu Sharma***	144-150
27	AUDIT OF THE COMPUTERIZED ACCOUNTING IN BUSINESS INDUSTRIES ***Dharmpal Yadav***	151-154
28	IMPACT OF e-COMMERCE ON CONSUMER BUYING BEHAVIOUR ***Dr. L.S. Bansal***	155-158

29	IMPLEMENTATION OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE AND ITS IMPACT ON E-COMMERCE ***Mrs. Neelam Sunda & Mrs. Rajani Kumari Gora***	159-162
30	साम्प्रदायिकता और राज्यः भारत के संदर्भ में *प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह एवं सरोज मीना*	163-168
31	बुद्ध कालीन समाज का धार्मिक विश्लेषण *डॉ. सतीश कुमार*	169-172
32	भारत के आर्थिक विकास में बैंकों की भूमिका *हेमलता शाक्य*	173-176
33	कृत्रिम बुद्धिमता–लेखांकन एवं अंकेक्षण के क्षेत्र में नया आयाम *डॉ मांगूराम*	177-180

◆◆◆

Inspira-Journal of Commerce, Economics & Computer Science (JCECS)
ISSN : 2395-7069 COSMOS Impact Factor: 4.964, Volume 06, No. 01, January-March, 2020, pp. 163-168

साम्प्रदायिकता और राज्यः भारत के संदर्भ में

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह*
सरोज मीना**

परिचय

साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है और किसी हद तक राजनीति इस विचारधारा के चारों ओर संगठित है। इस एक स्पष्ट तथ्य के बारे में अत्यंत साधारण सा कथन प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसका अर्थ बहुत गहरा है। ''विचारधारा'' शब्द का प्रयोग यहाँ उस अर्थ में नहीं किया जा रहा है जिस अर्थ में मार्क्स ने इसका प्रयोग किया था, यहाँ इसका अर्थ एक विचार–प्रणाली है अथवा एक ऐसी विचार–प्रणाली जो समाज, अर्थव्यवस्था तथा राज्यव्यवस्था से सम्बन्धित कुछ परिकल्पनाओं पर आधारित है।

साम्प्रदायिकता समाज तथा राजनीति को देखने समझने का एक तरीका है। यदि ऐसा है तो इसके कुछ राजनैतिक तथा दूसरे परिणाम सामने आते हैं। आज हम अपने चारों तरफ साम्प्रदायिक विचारधारा के जिन तत्वों को देखते हैं, वे इस साम्प्रदायिक विचारधारा के पिछले सौ वर्षों से अधिक के अस्तित्व तथा प्रसार का परिणाम है। इसलिए केवल आज की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अर्थों में इसकी व्याख्या करना संभव नहीं है और जैसा कि मार्क्स ने कहा था, अपने स्थायित्व के कारण यह अपने आप ही एक भौतिक शक्ति बन चुकी है।

सम्प्रदायवादियों का मुख्य कार्य साम्प्रदायिक विचार–प्रणाली अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करना है। सम्प्रदायवादी गतिविधि के दूसरे पहलू गौण है और उसी का अनुकरण करते हैं। हमें साम्प्रदायिकता को साम्प्रदायिक हिंसा, दंगे इत्यादि के साथ नहीं उलझना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि साम्प्रदायिक हिंसा को साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार के एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है, यह भी सही है कि साम्प्रदायिक विचारधारा ही साम्प्रदायिक हिंसा की ओर ले जाती है। लेकिन किसी भी परिस्थिति में हमें दोनों को बराबर नहीं समझना चाहिए। साम्प्रदायिक हिंसा साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार का परिणाम है। परन्तु यह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक स्थिति का मूल प्रश्न नहीं है। हिंसा का रूप धारण करने से पहले साम्प्रदायिक विचारधारा न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखती है, बल्कि दशकों तक विकसित भी होती रही है।

यद्यपि 1830 के दशक से भारत में, प्रारंभ में इतिहास लेखन द्वारा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार एक हल्के ढंग से किया गया, परंतु 1870 तथा 1880 के दशकों में यह एक सुव्यवस्थित विचारधारा के रूप में उभरकर सामने आई। एक अथवा दो स्थानों पर छोटी–मोटी हिंसक झड़पों, जैसे 1893 में पूना और कलकत्ता में, को छोड़कर भारत में साम्प्रदायिक हिंसा एक शक्ति के रूप में 1920 के दशक में बन पाई।

इसी प्रकार 1939 से 1945 तक, दूसरे महायुद्ध के दौरान व्यवहारिक रूप में साम्प्रदायिक हिंसा का कोई अस्तित्व नहीं था, फिर भी निश्चित रूप ये यही वह समय था जब भारत में बड़ी तेजी से हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों में साम्प्रदायिकता विकसित हो रही थी। पंजाब इस समस्या का बहुत अच्छा उदाहरण है। यह विश्वास किया जाता था कि विभाजन ने पंजाब में साम्प्रदायिक समस्या का समाधान कर दिया है, क्योंकि 1947 से पूर्व हिन्दू तथा सिक्ख सम्प्रदायवादी एक ओर थे जो मुस्लिम विरोधी थे, और मुस्लिम

* शोध निदेशक, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

साम्प्रदायवादी दूसरी ओर थे जो हिन्दू और सिक्ख विरोधी थे। इसलिए, यह मान लिया गया कि पंजाब से मुसलमानों के वास्तविक लोप के कारण साम्प्रदायिकता का अंत हो जाएगा। जब लोग पंजाब में साम्प्रदायिकता की बात करते थे तो ऐसा वे मुस्लिम विरोधी भावना के तहत ही करते थे, जिससे पश्चिमी पंजाब से उत्तरी पंजाब और वहाँ से दिल्ली इत्यादि की ओर हुए प्रवजन से बल मिलता था। परंतु वास्तव में 1947 के बाद से ही हिन्दू तथा सिक्ख साम्प्रदायिकता बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। 1950 के दशक में दूरदर्शी, पर्यवेक्षक, मुख्य रूप से कम्युनिस्ट, पंजाब में साम्प्रदायिकता के प्रसार के विरुद्ध चेतावनी दे रहे थे।

साम्प्रदायिक विचारधारा तथा साम्प्रदायिक हिंसा में अंतर किया जाना चाहिए क्योंकि उनके राज्य से अलग ढंग के संबंध होते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिए तात्कालिक राजनैतिक तथा प्रशासनिक कार्यवाही की आवश्यकता होती है। सम्भवतः इसके लिए शांति यात्राओं, शांति कमेटियों तथा दूसरी बातों की आवश्यकता होती है। जब साम्प्रदायिक हिंसा फैलती है तब वैचारिक संघर्ष का बहुत कम महत्व रह जाता है। परंतु साम्प्रदायिक विचारधारा से लड़ने के लिए एक लम्बे संघर्ष की आवश्यकता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक बार जब साम्प्रदायिक विचारधारा एक लम्बे समय तक अपने पैर जमाये रहती है तो वह एक भौतिक शक्ति बन जाती है इसलिए इसका मुकाबला भी बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। दूसरी अप्रत्यक्ष कार्यवाहियों की वजह से इस क्षेत्र में परिणाम यंत्रवत् सामने नहीं आते। 1930 के दशक में यह विश्वास किया जाता था कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का विकास साम्प्रदायिकता से छुटकारा दिला देगा, या फिर वर्ग संघर्ष से साम्प्रदायिकता समाप्त हो जायेगी। 1947 के पश्चात् भी बहुत से लोगों का विश्वास था कि आर्थिक विकास अथवा शिक्षा के प्रसार के साथ ही साम्प्रदायिक विचारधारा लुप्त हो जायेगी। लेकिन तथ्य यह है कि जब साम्प्रदायिक विचारधारा स्पष्ट रूप से उभर आये, तो इसके विरुद्ध सचेत साम्प्रदायिकता विरोधी वैचारिक संघर्ष छेड़ना आवश्यक हो जाता है। चाहे आप दूसरे कोई भी कदम उठाये, साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं होगी।

इस संबंध में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि वह साम्प्रदायिक विचारधारा को बढ़ावा दे सकता है या फिर उसके विरुद्ध वैचारिक संघर्ष का समर्थन कर सकता है अथवा साम्प्रदायिक विचारधारा के मुकाबले में कमजोर साबित हो सकता है। एक बार जब हम विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर स्पष्ट हो जाये तो फिर एक साम्प्रदायिक दल को परिभाषित करने की दिशा में कदम उठा सकते हैं। यह देखने में बड़ी साधारण बात लगती है, परन्तु मुझे याद है कि कुछ सप्ताह पूर्व समाजशास्त्रियों द्वारा आयोजित एक सेमिनार में मेरा कुछ मित्रों से इसी बात पर वाद–विवाद हुआ, जो यह दलील दे रहे थे कि कांग्रेस एक साम्प्रदायिक दल है, इन्दिरा गांधी भी एक साम्प्रदायिक नेता थी, क्योंकि उन्होंने दिल्ली तथा जम्मू के चुनावों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से गुप्त समर्थन लिया था। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि जब चुनावों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने एक–दूसरे धर्मनिरपेक्ष दल, जनता दल का खुल्लम–खुल्ला समर्थ किया तब उन्हीं लोगों ने जनता दल को साम्प्रदायिक दल नहीं कहा।

वास्तव में, जनता दल को एक साम्प्रदायिक दल कहना उसी प्रकार गलत होगा जिस प्रकार पहले कांग्रेस को एक साम्प्रदायिक दल कहना गलता था, या अब है। मेरा विचार है कि एक बार जब हम साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा मान लेते हैं तब इसकी परिभाषा भी स्पष्ट हो जाती है कि साम्प्रदायिक दल क्या है ? साम्प्रदायिक दल तथा घटक वे हैं जिनका गठन साम्प्रदायिक विचारधारा को आधार बनाकर किया गया है। यदि उनसे साम्प्रदायिक विचारधारा छीन ली जाये या उनसे इस विचारधारा को छोड़ने को कह दिया जाये, तो फिर उनके पास कुछ नहीं बचेगा, वे घटक अथवा दल भंग हो जाएँगे। 1937 में मुस्लिम लीग नेतृत्व तथा जिन्ना को भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। उन्हें साम्प्रदायिक विचारधारा, धर्म, उग्रता इत्यादि को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करना पड़ा, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मुस्लिम लीग तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विघटन हो जाता। 1981 में जब अकाली पंजाब में चुनाव हार गये, तब अकाली नेतृत्व को भी इसी दुविधा का सामना करना पड़ा।

इस संबंध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह तथाकथित नरमपंथी नेतृत्व ही था जिसने यह नारा बुलंद किया था कि भारत में सिखों का जातिसंहार हो रहा है तथा पंजाब में सिख धर्म खतरे में है। यह भिंडरवाला ही थे जिन्होंने 1981 और 1982 में यह नारा दिया था। हम भाजपा में सुधार लाने तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से मुस्लिम विरोधी दृष्टिकोण छोड़ने की अपीलों के संबंध में सुनते और पढ़ते रहते हैं। कुछ व्यक्तियों का मत है कि यदि भाजपा से साम्प्रदायिकता हटा दी जाये, तो वह एक अच्छी पार्टी बन सकती है जो कि वर्तमान में है। यहाँ एक बात और कही जानी चाहिए, यदि कोई साम्प्रदायिक दल सत्ता प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिकता का प्रयोग करता है और यदि वह साम्प्रदायिकता को यह सोचकर छोड़ना भी चाहे कि इस आधार पर समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता, तो भी वह ऐसा नहीं कर सकेगा। यह विश्वास कि वह दल ऐसा कर सकेगा, एक भ्रम है, क्योंकि जब साम्प्रदायिक विचारधारा एक लंबी अवधि तक अपना अस्तित्व बनाये रखती और विशेष रूप से जब वह नेतृत्व, जिसने सत्ता प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रयोग किया है। हमें इसका बहुत अच्छा उदाहरण मुहम्मद अली जिन्ना में मिलता है, जिसने 1931 से 1947 तक साम्प्रदायिक विचारधारा को उसके अत्यधिक गंदे रूप में प्रयोग किया। उसने घोषणा की कि अब पाकिस्तान एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होगा, जहाँ राजनीति का निर्धारण धर्म के द्वारा नहीं होगा, जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के साथ समान व्यवहार किया जायेगा तथा नागरिकों के रूप में उनकी स्थिति की धर्म से कोई प्रासंगिकता नहीं होगी। परंतु स्वयं जिन्ना भी साम्प्रदायिक विचारधारा के सैलाब को नहीं रोक पाया, जिसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार था।

एक बार जब हम साम्प्रदायिकता को एक विचारधारा के रूप में समझ लेते हैं तो हम यह भी महसूस करते हैं कि कोई भी विचारधारा एक विचार पर आधारित नहीं होती। विचारप्रणाली भी परिकल्पनाओं, परिणामों तथा दलीलों से मिलकर बनती है। परिकल्पनाएँ भी ऐसी होती हैं। इसलिए साम्प्रदायिक विचारधारा भी बहुत से साम्प्रदायिक तत्वों से मिलकर बनती है। यह तथ्य किसी भी विचारधारा के संबंध में सही है कि ये साम्प्रदायिक तत्व विशेष रूप से जब वे एक लंबी अवधि तक एक समाज में रहें तो हममें से अधिकांश लोगों में मौजूद रहते हैं।

इसलिए यह सोचना गलत होगा कि केवल एक अथवा थोड़े से साम्प्रदायिक तत्व साम्प्रदायिक विचारधारा के बराबर होते हैं। जिन्हें हम धार्मिकता और रूढ़िवाद कहते हैं वे साम्प्रदायिकता जैसे नहीं होते। केवल जब विशेष साम्प्रदायिक तत्वों को एक विशेष तरीके से जोड़ दिया जाता है अथवा संगठित कर दिया जाता है तभी एक सम्पूर्ण साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म होता है। साम्प्रदायिक दलों का एक प्रमुख कार्य यह होता है कि वे धर्मनिरपेक्ष व्यक्तियों में इन साम्प्रदायिक तत्वों को हवा देते हैं, उनके व्यक्तियों में उनकी वृद्धि करके दूसरे साम्प्रदायिक तत्वों को स्वीकार करने के लिए विवश करते हैं। धर्मनिरपेक्ष विचारधारा का कार्य पहले से मौजूद इन तत्वों का विरोध करना है, यह संकेत करना भी है कि यदि कोई पहले से मौजूद इन तत्वों से छुटकारा नहीं पा सकता तो उसे उन तत्वों को स्वीकार नहीं करना चाहिए, जिन्हें सम्प्रदायवादी प्रचारित कर रहे हैं।

वर्तमान समय में, बहुत से मध्यवर्गीय व्यक्ति, जो पहले धर्मनिरपेक्ष थे, हिन्दू साम्प्रदायिक नारों से प्रभावित हो रहे हैं। उदाहरण के लिए इस धारणा को लीजिए जनवरी–फरवरी, 1978 से प्रचारित किया जा रहा है कि एक मुस्लिम अपने आपको मुस्लिम कहता है और वह सम्माननीय है, एक सिख अपने आपको सिख कहता है और वह सम्माननीय है, परंतु जब एक हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहता है तो उस पर साम्प्रदायवादी की छाप लगा दी जाती है। यह दृष्टिकोण एक पूर्व–प्रचलित धारणा पर आधारित है और अब इसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

साम्प्रदायिकता अथवा अवसरवाद में भेद करना आवश्यक है। इसका उस तरीके से बहुत घनिष्ठ संबंध है जिससे साम्प्रदायिकता विकसित की जा रही है और भारतीय राज्य के ढांचे को प्रभावित करने लगी है। साम्प्रदायिक विचारधारा पर आधारित साम्प्रदायिक दलों तथा साम्प्रदायिकता के प्रति अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाने वाले धर्मनिरपेक्ष अथवा कमजोर धर्मनिरपेक्ष दलों में गहरा अंतर है।

यह कहा जाता है कि नेहरू भी मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में मुस्लिम तथा ब्राह्मण प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में ब्राह्मण उम्मीदवारों को खड़ा करते थे। इसलिए वे भी साम्प्रदायवादी अथवा जातिवादी थे और वे लोग भी सम्प्रदायवादी या जातिवादी है जो ऐसा करते हैं। वास्तविकता यह है कि यह केवल चुनावी अवसरवाद है, और यद्यपि अवसरवाद का भी विरोध करना चाहिए, परंतु केवल अवसरवाद के रूप में ही, न कि साम्प्रदायिकता के रूप में। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अवसरवाद सभी राजनैतिक दलों में पाया जाता है, जिनमें वामपंथी दल भी सम्मिलित हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता फासीवाद का एक रूप है। यदि हम साम्प्रदायिकता को केवल एक दूसरी अपर्याप्त अथवा हानिकारक विचाराधारा के रूप में देखें तो हम उसे नहीं समझ पाएँगे। प्रादेशिक अथवा भाषाई विचारधाराएँ अपनी सीमाओं को लांघने के बाद भी, अपने चरित्र में साम्प्रदायिक विचारधारा से भिन्न होती है। यह कोई संयोग नहीं है कि शिवसेना ने दक्षिण भारतीयवाद के विरोध के आधार पर एक फासीवाद विचारधारा को विकसित करने का प्रयत्न किया और उसने प्रादेशिकता को छोड़कर फासीवाद के भारतीय रूप अर्थात् हिन्दू साम्प्रदायिक विचारधारा को अपना लिया। साम्प्रदायिक तर्कहीन है और उसका आधार घृणा होती है, वह हिंसा का गुणगान करती है। इसलिए, हमें साम्प्रदायिकता को फासीवाद का भारतीय रूप ही समझना चाहिए। जहाँ तक अल्पसंख्यों का संबंध है फासीवादी रूप केवल अलगाववाद का ही रूप ले सकता है। पंजाब में सिख साम्प्रदायिकता भारत की विजय का रूप नहीं ले सकती है। दूसरी ओर, हिन्दू साम्प्रदायिकता पृथकवादी रूप नहीं ले सकती है, वह अनिवार्य रूप से फासीवाद रूप धारण करेगी।

यदि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है तो शिक्षा का महत्व बहुत बढ़ जाता है चाहे वह औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक या उसे समाचार पत्रों से प्राप्त किया जाये। भारत में आजतक इस पहलू पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वैज्ञानिक विचारों पर आधारित सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने में बहुत समय लगता है। परन्तु उनका भी कामोबेश सीमित प्रचलन है। उन्हें केवल थोड़े से केन्द्रीय और निजी स्कूलों में ही प्रयोग किया जाता है। यदि साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है, तो एक दूसरा पहलू भी सामने आता है जो राज्य सत्ता के प्रश्न से सम्बन्धित है। वह पहलू यह है कि साम्प्रदायिकता के साथ कोई समझौता नहीं होना चाहिए। यह विचार कि आप इससे किसी प्रकार का समझौता कर सकते हैं, अव्यावहारिक है।

यहाँ मैं साम्प्रदायिकता तथा राज्य सत्ता की समस्या की ओर आती हूँ। मेरा मूल विचार एकबार फिर बहुत सरल है, साम्प्रदायिक दलों तथा गुटों को राज्य–सत्ता के निकट नहीं आने देना चाहिए। राज्य सत्ता से मेरा अभिप्राय केवल केन्द्र नहीं है। मेरा यह विचार नहीं है कि राज्य सत्ता केवल केन्द्र में अथवा केन्द्र की कार्यपालिका के पास होती है। राज्य सत्ता का एक विस्तृत चरित्र है। भारतीय संविधान में राज्यों के पास भी राज्य सत्ता होती है और यदि पंचायती बिल लाया जाता है, यद्यपि विभिन्न स्तरों पर राज्य सत्ता का महत्व भी भिन्न हो सकता है।

इसलिए मेरा मूल प्रस्ताव यह है कि हमें साम्प्रदायिक दलों तथा गुटों को राज्य सत्ता के निकट नहीं आने देना चाहिए और यह केवल इसलिए नहीं कि राज्य सत्ता द्वारा, उनका पुलिस तथा नौकरशाही पर नियन्त्रण हो जाता है। वास्तव में राज्य सत्ता पर नियन्त्रण रखने वाले सम्प्रदायवादी कुछ समय तक हिंसा को प्रोत्साहन नहीं देते। वे हिंसा को बढ़ावा भी नहीं देते और अपनी सतह पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जहाँ साम्प्रदायवादियों का शासन है वहाँ साम्प्रदायिक दंगे तथा साम्प्रदायिक हिंसा कम होते हैं, साम्प्रदायिक हिंसा केवल कांग्रेस शासित अथवा जनता दल शासित राज्यों में ही होती है और इसलिए भाजपा नहीं, बल्कि कांग्रेस साम्प्रदायिक है। यह हो सकता है क्योंकि हिंसा साम्प्रदायिकता का लक्ष्य नहीं है। साम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक हिंसा के स्तर को कम कर सकते हैं और विभिन्न उपकरणों द्वारा साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रसार करते हुए साम्प्रदायिक हिंसा के विरूद्ध कार्यवाही भी नहीं कर सकते हैं। यह भी सम्भव है कि वे श्रमिक संघों पर आक्रमण न करें, किसान सभाओं पर आक्रमण न करें, कम्यूनिस्ट दलों पर भी आक्रमण न करें, परन्तु वे निश्चय ही धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों पर आक्रमण करेंगे।

यह भी सम्भव है कि सम्प्रदायवादी सामूहिक हत्याकाण्डों और नजरबंदी– शिविरों का सहाना न लेकर स्वयं को केवल साम्प्रदायिक विचारधारा के प्रसार तक ही सीमित रखें। इसका एक कारण यह भी है कि साम्प्रदायिकता अभी तक भारतीयों के मन पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकी है। जहाँ कहीं भी साम्प्रदायवादी सत्ता में आए हैं जहाँ भी पिछले सत्तर वर्षों में साम्प्रदायिक दलों ने चुनाव जीते हैं, वे जानते हैं कि जिन लोगों ने उन्हें वोट दिये हैं उन्होंने अभी तक एक वृहद पैमाने पर साम्प्रदायिक विचारधारा को नहीं अपनाया है। भारतीय अभी भी बुनियादी तौर पर धर्म निरपेक्ष है।

साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध, किसी प्रकार भी राष्ट्रवाद से न तो था और न ही यह राष्ट्रवाद के एक विकल्प के रूप में उत्पन्न हुई और कार्य करती रही। जैसा कि इंडोनेशिया और बहुत से पश्चिमी एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी देशों में हुआ, भारत में साम्प्रदायिकता धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद भी नहीं थी। भारत में साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद के विरोध के रूप में विकसित हुई और इसमें साम्राज्यवाद विरोधी विषयवस्तु का अभाव था।

वास्वत में, लोक चेतना साम्प्रदायिक प्रचार के रास्ते में एक मुख्य बाधा रही है और इसी के कारण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरों के अधिकांश भागों में अभी तक साम्प्रदायिक हिंसा नहीं फैली। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत के अधिकांश भागों में साम्प्रदायिकता की जड़े अधिक गहरी क्यों नहीं है तथा अपनी वर्तमान शक्ति को प्राप्त करने में उसे इतना अधिक समय क्यों नहीं लगा जबकि साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग में हो गया था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

~ चन्द्रा विपिनः "कम्यूनलिज्म इन मॉर्डन इण्डिया", नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, (1984), पृ.सं. 169

~ मेहता एवं पटवर्धनः "दी कम्यूनल ट्राइंगल इन इण्डिया", इलाहाबाद, किताबिस्तान (1942), पृ.सं. 19

~ कोठारी रजनीः "कम्यूनलिज्म दी न्यू फेस ऑफ इण्डियन डेमोक्रेसी", दिल्ली, अजन्ता पब्लिकेशन, (1988), पृ.सं. 241–253

~ कृष्ण गोपालः "रिलीजन इन पॉलिटिक्स", दिल्ली एन.ए. पब्लिशर, (1981), पृ.सं. 29

~ श्रीनिवास एम.एन.: "आधुनिक भारत में जातिवाद" (भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, (1987), पृ. सं. 159

~ डी. स्मिथ विलफ्रेडः "मार्डन इस्लाम इन इण्डिया", लाहौर, पेंगविन बुक हाऊस, (1943), पृ.सं. 41

~ दीक्षित प्रभाः "साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ", बम्बई, मेकमिलन, (1980), पृ.सं. 41

~ आजाद मौलानाः "इण्डिया विन्स फ्रिडम", दिल्ली ओरियन्टलोंगमैन, प्रेस, (1958), पृ.सं. 131

~ माथुर, पी.सी.: "सोशियल बेस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स", जयपुर, आलेख प्रकाशन, (1984)

~ वर्मा, एस.एल.: "प्रॉब्लम ऑफ मेजरिंग कम्यूनलिज्म इन इण्डिया"

~ माथुर, वाई.वी.: "मुस्लिम एण्ड चेन्जिंग इण्डिया", न्यू दिल्ली त्रिमूर्ति पब्लिशिंग, (1972)

~ पुंताम्बेकरः "दी सैक्यूलर स्टैट", दिल्ली, राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, (1949)

~ महात्मा गाँधीः "दी वे टू कम्यूनल हारमनी", अहमदाबाद, कलेक्टेड वर्क दिल्ली, (1958)

~ जैन, एम.एस.: "आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक", दिल्ली, मनोहर प्रकाशन, (1980), पृ.सं. 27

~ सर सैय्यद अहमद खाँः "दी कॉज ऑफ दी इण्डिया रिवोल्ट", पृ.सं.12

~ शर्मा, जी.एन.: "राजस्थान का इतिहास", नई दिल्ली, कृष्णा प्रकाशन, (1983), पृ.सं. 12

~ कालूरामः "राजस्थान का इतिहास", जयपुर पंचशील प्रकाशन, (1984), पृ.सं. 226

~ अवस्थी, अमरेश्वरः "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", दिल्ली, नन्दा प्रकाशन, (1980)

~ अमिसाज, अहमदः "परस्पैक्टिव ऑन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वाटेरटली, (अक्टूबर, 1972)

~ चटर्जी, पी.सी.: "सेक्यूलर वेल्यू और सैक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985)

~ सोमरा, कर्णसिंहः "साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना", प्रिन्टवैल, (1992)

~ मोहम्मद, चाँदः "राजस्थान में साम्प्रदायिकता जहर के विरूद्ध आह्वान", दैनिक नवज्योति, (मार्च 27, 1987)

~ सिन्हा, बी.के.: "सेक्यूलरिज्म इन इण्डिया", बम्बई, लालवानी पब्लिशिंग हाऊस, (1968)

~ राणदेवे, बी.टी.: "जाति और वर्ग", नई दिल्ली, नेशनल बुक सेन्टर, (1983)

~ चटर्जी, पी.सी.: सेक्यूलर वैल्यू ऑर सेक्यूलर इण्डिया", दिल्ली कन्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, (1985)

~ अमिसाज, अहमदः "परस्पैक्टिव आन दी कम्यूनल प्रॉब्लम", दिल्ली, रिसर्च असेक्ट क्वार्टरली, (1972)

~ इम्तियाज अहमदः "सैक्यूलर स्टेट, कम्यूनल सोसायटी", फैक्टशीट 2, कम्यूनीलज्म दी रेंजर्स एज, बम्बई फॉकिस्ट कलेक्टर वर्क, (1983)

~ अवस्थी, डॉ. अमरेश्वरः "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन", पृ.सं. 313

~ अन्सारी, एम.ए.: "मुस्लिम एण्ड दी कॉंग्रेस", दिल्ली विकास पब्लिशिंग, (1979)

~ इंजीनियर, अली असगरः "इस्लाम एण्ड इट्स रिलेवेंस टू आवर पेज", बम्बई इस्लामिक स्टैडिज, (1984)

प्रमुख लेख एवं जनरल

~ सूरि सुरेन्द्रः "साइक्लोजी ऑफ कम्यूनोलीजी", टाइम्स ऑफ इण्डिया, (जून 13, 1984)

~ नायर कुलदीपः "साम्प्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति", राजस्थान पत्रिका, (नवम्बर, 5, 1982)

~ लुबरा बी.पी.: "रिलीजियस इम्पार्शलिटी", सेमिनार इलाहाबाद विश्वविद्यालय, (1967), पृ.सं. 20

~ श्री निवासन, एस.: "उपराष्ट्रवाद की उग्र अभिव्यक्ति", इण्डिया टूडे, (फरवरी 8, 2017)

~ डेका, कौशिकः "बीजेपी का हिन्दू सिरदर्द", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

~ मेनन के. अपरनाथः "दलित गौरव के नाम पर", इण्डिया टूडे, (मार्च 22, 2017)

~ श्रीवास्तव अमिताभः "पटरियों पर बिछी साजिश", इण्डिया टूडे, (मार्च 15, 2017)

~ कोठारी रजनीः "क्लास एण्ड कम्यूनलिज्म इन इण्डिया", जनरल ऑफ इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक 23, क्रमांक 49, (दिसम्बर 3, 1989)

~ तालत, कमलः "सेक्यूलरजिम इन इण्डिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशनल डाइमेन्शन", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन, (जनवरी–जून, 1983), पृ.सं. 1–18

~ विजय, एस.: आवर सेक्यूलर अरेटाइज

~ गर्ग, बी.एल.: "सिक्यूलरिजम इन इण्डिया", जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन वॉल्यूम 1/1 नं. 1 (जनवरी–जून, 1983)

❑❑❑